गांधी की शहादत

जगन फडणीस

गांधी की शहादत

लेखक

जगन फडणीस

हिन्दी-अनुवाद

वासंती सोर

प्रकाशक

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी २२१ ००१

फोन: ०५४२- २४४०३८५

Email: sarvodayavns@yahoo.co.in

समर्पण

स्वाधीनता आन्दोलन में

सहभागी सभी

ज्ञात-अज्ञात,

अबाल, वृद्ध एवं महिला

स्वाधीनता

सेनानियों को

प्रकाशकीय

गांधी की हत्या किन कारणों से हुई, इस बारे में देश का जनमानस आज भी काफी भ्रमित है। गांधी की हत्या के पीछे कुछ हिन्दुत्ववादियों द्वारा दो ही कारण सामने रखे जाते हैं कि गांधी देश के बँटवारे के लिए तथा पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये दिलवाने के लिए जिम्मेवार थे। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने मुसलमानों को सिर पर चढ़ा रखा था। नाटकों के माध्यम से गांधी की हत्या के झूठे साजिशों से युवा पीढ़ी को दिग्भ्रमित करने का प्रयास भी किया जाता रहा है।

इस तरह तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर षड्यंत्रपूर्वक पेश किया जाता रहा है। जिन मूलभूत कारणों से गांधी की हत्या हुई उनको प्रकाश में न लाकर ऐसा माना जाता रहा है कि गांधी की हत्या के कारण गांधी द्वारा की गयी राजनीति की अन्तिम घटनाओं पर आधारित है, लेकिन यह सच नहीं है, क्योंकि उनकी हत्या के प्रयास अनेकों बार १९३४ से किये जा रहे थे। जबकि उस समय न तो देश के बँटवारे का सवाल था न ५५ करोड़ रुपये देने का सवाल सामने आया था।

श्री जगन फडणीस मराठी के जाने-माने पत्रकार थे। अपनी मराठी पुस्तक में स्वयं लेखक ने स्पष्ट लिखा है—"१९६६-६७ में गांधी-हत्या के षड्यंत्र की जाँच करने के लिए नया. जे. एल. कपूर की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया। आयोग के कामकाज की तफसील लेने के लिए मैं वहाँ हाजिर रहने लगा।...आयोग के कामकाज के समाचार लेनेवाला मैं अकेला ही पत्रकार था।"

इस अमूल्य छोटी-सी पुस्तक में गांधी की हत्या के मूलभूत तथ्यों को लेखक श्री फडणीस ने अपनी मराठी पुस्तक "महात्म्याची अखेर" (गांधी की शहादत) में उजागर करने का सफल प्रयास किया है। मराठी से हिन्दी में अनुवाद करने का भगीरथ पुरुषार्थ विद्वान् अनुवादिका सुश्री वासन्ती सोर ने किया है। लेखक श्री जगन फडणीस के निधन के बाद मराठी पुस्तक को हिन्दी में सजाने-सँवारने के लिए सुश्री वासन्ती सोर ने अपनी लगन के कारण इस अनुवाद के कर्म को, गीता की भाषा में कहें तो, विकर्म और अकर्म में बदल दिया है। श्री जगन फडणीस की पत्नी

श्रीमती सुचेता फडणीस ने सर्व सेवा संघ-प्रकाशन को हिन्दी संस्करण छापने का प्रकाशनाधिकार दिया, हम उनके आभारी हैं।

यह पुस्तक पाठकों के विशेष आकर्षण का कारण बनेगी, क्योंकि इसमें गांधी-हत्या के उन मूल कारणों को खोजकर सामने लाया गया है जिनको आज की युवा पीढ़ी जानती ही नहीं। सही तथ्यों को जानने पर युवा पीढ़ी वास्तविकता को समझेगी और अन्धेरे से प्रकाश की ओर बढ़ेगी, सच को सच कहेगी और झूठ को झूठ। वह यह भी समझ सकेगी कि किसी झूठ का हजारों बार धुआँधार प्रचार करने पर भी वह सच नहीं बन सकता।

इस देश में आज गांधी की हत्या के मूल कारणों को समझने की बहुत जरूरत है, जिसे यह पुस्तिका बहुत व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करती है। सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, लेखक स्व. श्री जगन फडणीस तथा विद्वान् अनुवादिका सुश्री वासन्ती सोर का बहुत आभारी है कि उन्होंने अथक परिश्रम कर दुर्लभ तथ्य सामने रखे हैं। इससे पाठकों के भ्रम टूटेंगे। इस कृति को प्रकाशित करने में सर्व सेवा संघ-प्रकाशन अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है।

दिनांक : १८.१.२००६

राजघाट, वाराणसी

अविनाश चन्द्र

संयोजक

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

प्रस्तावना

'गांधी की शहादत' (महात्मा का अन्त) मेरी चौथी पुस्तक है। महात्मा गांधी के जीवन का अन्त एवं उनकी राजनीति की अन्तिम घटनाओं पर आधारित यह पुस्तक है, इसीलिए पुस्तक का शीर्षक 'गांधी की शहादत' (महात्मा का अन्त) रखा गया है। यह महात्मा गांधी का चरित्र नहीं है। भारत तथा दुनिया के अनेक विद्वानों ने आज तक गांधी पर काफी लिखा है। पर उनमें महात्मा गांधी की हत्या किन कारणों से हुई यह विचार छूट गया है, ऐसा मुझे लगता है। गांधी के खून से जिनके हाथ सने हैं वे अपराधी और गांधी-हत्या तथा हत्या करनेवालों का समर्थन करनेवाले कभी कहते हैं कि गांधी के ही कारण पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये गये, इसलिए हत्या की गयी। कभी कहते हैं गांधी के कारण विभाजन हुआ, इसलिए हत्या की गयी। पर गांधी-हत्या इन्हीं दो कारणों से नहीं हुई। इन कारणों से भिन्न कुछ अन्य मूलभूत कारणों की वजह से गांधीजी की हत्या की गयी। १९३४ से १९४६ तक की घटनाओं के सबूतों के आधार पर उन कारणों का विश्लेषण करने का प्रयास मैंने किया है। वह कितना सफल हुआ, यह मैं नहीं कह सकूँगा! वह काम पाठकों का है। 'गांधी की शहादत' (महात्मा का अन्त) में लिखी कोई भी घटना निराधार नहीं है। परन्तु यह शोधकार्य मेरा नहीं है। विभाजन या पचपन करोड़ रुपये गांधी-हत्या के कारण नहीं हैं, यह दिखाने के लिए देश के कुछ विद्वानों के विचार देने का प्रयास भी मैंने किया है।

महात्मा गांधी के सम्बन्ध में इस दृष्टिकोण से पुस्तक लिखने का मैं कई वर्षों से सोच रहा था। १९८८ से इस विषय पर पुस्तक लिखने की मेरा विचार प्रबल इच्छा बनकर उभरा। कई लोगों से इस विषय पर चर्चा करता रहा। स्वाधीनता आन्दोलन में सहयोगी कुछ नेता भी यह नहीं जानते थे कि कितनी बार गांधी-हत्या के प्रयास हुए। मेरी जानकारी उन्हें नयी लगती थी। तब मुझे प्रतीत होता था कि ऐसी पुस्तक का लिखा जाना आवश्यक ही है। मन में यह विचार भी आता था कि गांधीजी पर इतना कुछ लिखा जा चुका है फिर भी ऐसी पुस्तक क्या आवश्यक है? पर इधर दो-चार वर्षों से गांधी-हत्या का खुला समर्थन किया जाने लगा। हत्या के कारणों को लोग सच मानें, इस दृष्टि से झूठा प्रचार किया जाने लगा। गांधी को 'राष्ट्रपिता' नहीं मानने की विरोधी कार्यवाही शुरू हुई। जो झूठे कारण सामने रखे जाने लगे, उन्हें ही युवा वर्ग सच मानने लगा। तब सबूतों के

आधार पर पुस्तक लिखने की आवश्यकता जोर पकड़ती गयी। बड़े-बड़े ग्रंथ अकसर पढ़े नहीं जाते। इसलिए पुस्तक छोटी रखना ही मैंने उचित समझा। उसमें केवल विभाजन सम्बन्धी गांधीजी की भूमिका और पचपन करोड़ का मामला अस्तित्व में भी नहीं था तब से अर्थात् १९३४ से गांधी-हत्या के हुए प्रयास एवं गांधी की हत्या होनेवाली है, इसकी जानकारी १५ दिन पहले ही मिलने के बावजूद महात्मा के प्राण क्यों नहीं बचाये जा सके ? यही सीमित विषय हाथ में लिया गया है। 'दैनिक पुढारी' के लिए सम्पादकीय लिखने का उत्तरदायित्व ३ वर्ष पहले मैंने सम्हाला। तब प्रसंगानुसार गांधीजी पर जो सम्पादकीय लिखे गये, उन्हें पढ़कर कई लोग कहते कि ये बातें तो हमें मालूम ही नहीं थीं। तब किताब की आवश्यकता महसूस हुई। 'गावकरी' के दीपावली विशेषांक के लिए मेरे मित्र दत्ता सर्राफ ने लेख मँगवाया तब मैंने गांधी-हत्या से सम्बन्धित लेख लिख भेजा। 'महाराष्ट्र टाइम्स' ने मेरे लेख की समालोचना करते हुए लिखा था कि लेख मूलरूप से पढ़ने योग्य है। गावकरी के लेख पर भी अच्छी प्रतिक्रियाएँ आयीं। 'यह सब हम जानते ही नहीं थे' ऐसा कइयों ने मुझे लिखा। इन्हीं प्रतिक्रियाओं के कारण 'गांधी की शहादत' (महात्मा का अन्त) पुस्तक तैयार हुई।

पुस्तक लिखने का निर्णय होते ही मित्रों ने तुरन्त मदद करना शुरू किया। प्रो॰ ओमप्रकाश कलमे, डॉ॰ अशोक चौसालकर, बाल पोतदार, प्रो॰ सुरेश शिरोडकर ने अपना सन्दर्भ साहित्य मुझे सौंप दिया। शिवाजी विश्वविद्यालय के जर्नालिज्म विधा विभाग के प्रमुख प्रो॰ कलमे के कारण मेरा काम काफी आसान हुआ। व्यावहारिक दृष्टि से सोचें तो उनकी दूरदृष्टि से मेरा खर्च भी बचा। प्रो॰ कलमे ने टाइम्स ऑफ इण्डिया, हिन्दू, हितवाद, सकाल आदि समाचार-पत्रों की १९३० से लेकर सारी फाइलें जहाँ-तहाँ से इकट्ठी कर अपने विभाग में रखी हैं। अन्यथा वह सब देखने के लिए मुझे पुणे, मुम्बई, मद्रास जाना पड़ता। प्रो॰ कलमे की दूरदृष्टि से १९३० से लेकर सब समाचार-पत्र मुझे कोल्हापुर में ही उपलब्ध हो गये। प्रो॰ कलमे का काम कितना बड़ा है, यह तो देखने पर ही पता चलेगा। प्रो॰ पोतदार तो मेरे लिए पठान की भूमिका निभाते रहे। कर्जा वसूल करने के लिए जिस तरह पठान दरवाजे पर आ खड़ा होता है, उसी तरह प्रो॰ पोतदार रोज मेरे घर आते और कितना लिखा इसका हिसाब माँगते। प्रो॰ शिरोडकर ने पाण्डुलिपि जाँचने का और

मार्गदर्शन का काम किया। तीन साल पहले डॉ॰ गोखले ने मुझे मौत के मुँह से बचा लिया। एक बड़ा ऑपरेशन डॉक्टर गोखले ने किया। सलाइन और खून की कई बोतलें चढ़ायी गयीं। थोड़ा भी अधिक काम होने पर 'हाथों' में सूजन आ जाती। लिखना असम्भव हो जाता। मेरे युवा मित्र सुभाष पवार ने लिखने का काम किया। वे अगर लिखने का जिम्मा न उठाते तो शायद यह पुस्तक बन ही नहीं पाती। सबके प्रति जितने भी आभार मानूँ, कम ही होंगे। सबकी सहायता से ही पुस्तक बन पायी है। सहायता का मैं उचित उपयोग कर सका या नहीं, यह कहना मेरे लिए असम्भव है।

महात्मा गांधी पर पुस्तक लिखने की बात करते ही अनिल मेहता ने 'पाण्डुलिपि कब देंगे'? यही प्रश्न किया। मेरी पहली दो किताबें श्री मेहता ने ही प्रकाशित की थीं। उन्हींके कारण यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी। हालाँकि उन्हें दी हुई समय-सीमा के भीतर मैं पाण्डुलिपि नहीं दे सका। पुस्तक की त्रुटियों की जिम्मेदारी मेरी है। परन्तु पुस्तक में अगर कुछ अच्छा हो तो उसका श्रेय सभी मित्रों का है, मेरा नहीं।

कोल्हापुर **– जगन फडणीस**

२ अक्तूबर, १९९४

मन की बात

श्री जगन फडनीस की मराठी पुस्तक 'महात्म्याची अखेर' मैंने करीब सात साल पहले पढ़ी थी। उसमें लिखे तथ्यों को पढ़कर मन कई दिनों तक अस्वस्थ रहा। पुस्तक सभी भारतीयों तक पहुँचनी चाहिए, ऐसा लगता रहा।

गांधीजी के ही कारण भारत का विभाजन हुआ। गांधीजी ने मुस्लिमों का पक्ष लिया, या आम लोगों की भाषा में कहूँ तो गांधीजी ने मुसलमानों को सिर चढ़ाये रखा। गांधीजी के ही कारण पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये गये। इन्हीं सब कारणों से नाथूराम ने गांधीजी की हत्या की सो अच्छा ही हुआ। इस तरह की धारणाएँ जनमानस में गहरे पैठ गयी हैं, यह सब आये दिन अनुभव करती थी। दुख होता था। सबूतों के आधार पर प्रतिवाद कर सकूँ, इतनी जानकारी मेरे पास नहीं थी। श्री जगन फडणीस की पुस्तक पढ़ने पर इस विषय की सारी वास्तविकताएँ उभरकर सामने आयीं। मन में बार-बार प्रश्न उठता कि "बापू द्वारा शुरू किये हुए वर्धा के महिलाश्रम में पली हो। 'गांधीजन' होने के नाते ये सारे तथ्य अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाना क्या तुम्हारा परम कर्तव्य नहीं है?" पर कया किया जाय समझ में नहीं आ रहा था। एक अपराध-बोध मन को कचोटता रहा। दिन बीतते गये। अस्वस्थता और अपराध-बोध मन के तल में जा बैठा।

'मी नाथूराम बोलतोय' (मैं नाथूराम बोल रहा हूँ) नाटक के बहाने गांधी-हत्या के झूठे कारणों को फिर से समाज के सामने रखने का प्रयास शुरू हुआ। युवा पीढ़ी उन्हीं कारणों को सच मानने लगी। महाविद्यालय के मेरे छात्र भी कभी मुझसे चर्चा छेड़ देते। अन्तस्तल में सिमटा घनीभूत अपराध-बोध फिर से सतह पर आया। अस्वस्थता और विषाद से मन उदास रहने लगा। उदास मन बार-बार प्रश्न करता कि क्या तुम कुछ नहीं कर सकती? व्याकुलता ने ही मार्ग सुझाया। कभी-कभार स्कूलों, कॉलेजों में, महिला-मण्डलों एवं वरिष्ठ नागरिकों के बीच मुझे व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया जाता है। तब क्यों न यही विषय लोगों के सामने रखा जाय! और फिर 'गांधीजी के विषय में लोगों की धारणाएँ और वास्तविकता' विषय मैं लोगों के सामने रखने लगी। अपने मार्ग की मर्यादाएँ भी मैंने बहुत जल्दी अनुभव की। सुननेवालों की संख्या सीमित होती है और व्याख्यान के अवसर भी कम ही आते हैं। और जब आते हैं तब आयोजक विषय के प्रति अरुचि

दिखाते हैं। विषय बदलने का आग्रह करते हैं। फिर भी प्रभु रामचन्द्रजी के सेतुबंध की गिलहरी तो मैं बन रही हूँ, यह सोचकर थोड़ा सन्तोष होता था।

पिछले नवम्बर में राजस्थान की सैर करने गयी थी, तब जयपुर में आदरणीय सिद्धराजजी से मिलने गयी। बातों ही बातों में गांधीजी के विषय में हिन्दुत्ववादियों का सरासर झूठा और जहरीला प्रचार एवं सचाई के विषय में लोगों की अनभिज्ञता आदि विषयों पर चर्चा शुरू हुई। मैंने अपने 'गिलहरी-कार्य' के विषय में बताया। मेरी बड़ी बहन श्रीमती विजया वेले ने 'महात्म्याची अखेर' पुस्तक की जानकारी दी। इस तरह की पुस्तक हिन्दी में आनी चाहिए, ऐसी सभी की राय रही। 'पुस्तक का अनुवाद वासंती कर सकेगी' बहन ने सुझाया। आ॰ श्री सिद्धाजजी को बात जँच गयी। मैं अनुवाद करूँ और सर्व सेवा संघ-प्रकाशन पुस्तक प्रकाशित करे, यह तय हुआ। अपराध-बोध से मुक्ति पाने का अवसर आदरणीय श्री सिद्धराजजी ने प्रदान किया। मैं उनकी अत्यधिक ऋणी हूँ। श्रीमती सुचेताबहन फडणीस ने हिन्दी अनुवाद की अनुमति दी, और सर्व सेवा संघ-प्रकाशन के संयोजक श्री अविनाशभाई ने प्रकाशन सम्बन्धी पूरी जिम्मेदारी स्वीकार की। दोनों की मैं हृदय से आभारी हूँ।

प्रवास से नासिक लौटने पर अनुवाद के काम में जुट गयी। अनुवाद का मुझे जरा भी अनुभव नहीं। यह पहला ही अवसर है। पहले ही प्रयास में पूरी पुस्तक का अनुवाद करने जा रही हूँ, यह सोचकर कुछ बोझ भी महसूस हुआ। पर काम के प्रति अत्यधिक लगन के कारण कर्म, विकर्म में और फिर अकर्म में परिणत हुआ। यह काम मैं ठीक तरह से कर सकूँगी, ऐसा सकारात्मक दृष्टिकोण सदैव ही रहा। अनुवाद के मुल्यांकन के लिए मेरी बहन और जीजाजी श्री दामोदर वेले जैसे चिकित्सक और समीक्षक मुझे मिले। हिन्दीभाषी पाठक मेरी हिन्दी किस हद तक पसन्द करेंगे, यह तो मैं नहीं कह सकती, पर पूरी लगन, सतर्कता और परिश्रम से मैंने यह अनुवाद किया है, इसका सन्तोष मुझे है।

– वासंती सोर

५, अनुराधा अपार्टमेण्ट
२३, नयी पण्डित कॉलोनी
नासिक (महाराष्ट्र)- ४२२ ००२; १ जुलाई, २००४

अनुक्रम

क्र.	**विषय**
१.	वर्चस्व कि आशा
२.	विभाजन और गांधी
३.	विभाजन के बीज
४.	पचपन करोड़ का मामला
५.	आजादी से पहले हत्या के प्रयास
६.	लापरवाही
७.	विभाजन : विरोध और आन्दोलन
८.	हिंसा की राजनीति
९.	विचारधारा

वर्चस्व की आशा

भारत का सार प्रकाश अपने साथ लेकर ही उस दिन का सूरज डूबा और भारत पर अँधेरी रात का साम्राज्य छा गया। अगर वह रात न आती तो भारत की राजनीति एक अलग मोड़ लेती। दिन उदित होता है और ढलता है। यह क्रम कोई रोक नहीं सकता। दिन भले ही रोका न जा सके, परन्तु ३० जनवरी, १९४८ की शाम की दिल दहलानेवाली घटना टालना क्या सम्भव नहीं था? क्या उस घटना को रोकना सर्वथा असम्भव था? महात्मा को अपने प्राण गँवाने पड़े! एक युगपुरुष का शरीर धरती पर गिर पड़ा। क्या महात्मा की आत्मा को उसीके शरीर में सुरक्षित रखना कठिन था? 'महात्मा गांधी की हत्या की जानेवाली है, यह खबर मुझे भी मेरे सूत्रों से पता चली है।" यह बात भारत के गृहमंत्री लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल ने मुम्बई के गृहमंत्री श्री मोरारजी देसाई को गांधी-हत्या के दस दिन पहले ही बता दी थी। हत्या की साजिश का पता सरदार पटेल को १५ दिन पहले ही लग गया था। उसके बाद २० जनवरी, १९४८ को गांधीजी की प्रार्थना-सभा में बम फटा। बम का विस्फोट करनेवाले मदनलाल पहवा को पुलिस ने हिरासत में लिया था। उसके बयान से हत्या की साजिश में शामिल व्यक्तियों के नाम मालूम हुए थे। उनका अता-पता भी मालूम हो गया था। परन्तु पुलिस उन्हें पकड़ न सकी। मदनलाल पहतवा द्वारा दी गयी जानकारी के आधार पर लौहपुरुष पटेल के गृहमंत्रालय की पुलिस कार्रवाई करती तो ३० जनवरी, १९४८ को महात्मा गांधी की हत्या न होती। इसलिए सवाल खड़ा होता है कि क्या नाथूराम गोडसे और उसके साथी ही गांधी-हत्या के लिए जिम्मेदार हैं, या इसके लिए और भी कोई जिम्मेदार है? गांधी-हत्या के पीछे कुछ कारण थे या वह एक विचार-प्रणाली का परिणाम है? देश का विभाजन, पाकिस्तान को दिये गये पचपन करोड़ रुपये तथा गांधीजी द्वारा किया गया मुस्लिमों का तुष्टिकरण आदि कारण सामने रखकर हिन्दुत्ववादी गांधी-हत्या का समर्थन करने का प्रयास करते हैं। गांधी-जीवन की कुछ घटनाओं को देखें तो देश का विभाजन, पचपन करोड़ रुपये तथा मुस्लिमों का तुष्टिकरण आदि हिन्दुत्ववादियों द्वारा सामने रखे जानेवाले हत्या के ये कारण केवल कमजोर ही नहीं, बल्कि असत्य हैं, यह बात समझ में आ जाती है। इन कारणों से भी अधिक प्रभावशाली कारण है हत्या के पीछे की विचारधारा तथा प्रवृत्ति। यही कारण है कि विभाजन से सम्बन्धित

तथ्य तथा पचपन करोड़ रुपयों की असलियत सामने आने पर और वह बुद्धि को तर्कसंगत लगने के बावजूद हत्या के समर्थकों को पश्चात्ताप नहीं होता। अपितु वे उसे गौरवान्वित करते रहते हैं। नयी पीढ़ी की इतिहास के प्रति अनभिज्ञता तथा पुराणी पीढ़ी विस्मरण के कारण विभाजन, पचपन करोड़ रूपये एवं मुस्लिमों का अनुनय इन्हीं बातों को गांधी-हत्या का कारण मानते हैं। कांग्रेस के लोग केवल सत्ता हथियाने के लिए गांधी के नाम का उपयोग कर रहे हैं। उन्हें गांधीजी के प्रति प्रेम (आस्था) नहीं। गांधीजी के विषय में जो गलत प्रचार होता रहता है उससे न उनका कोई लेना-देना है न ही उसकी उन्हें परवाह है। इसीलिए गांधीजी के प्रति सत्य उजागर किया जाय, ऐसा गत ५० वर्षों में कांग्रेसजनों को कभी लगा ही नहीं। चुनाव जीतकर आना यही कांग्रेस उम्मीदवारों की एकमेव कसौटी बन गयी। अगर कोई अपराधी इस कसौटी पर खरा उतरता है तो उसे भी टिकट थमा दिया जाता है। इसी कसौटी को सामने रखकर सिने अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों को उम्मीदवार बनाया जाता है। गांधीजी की तत्त्व-प्रणाली तथा ध्येय आदि से कोई सम्बन्ध न हो पर चुनाव जीतने का जिन्हें पूरा विश्वास हो ऐसे जमींदारों और सामन्तों को कांग्रेस का उम्मीदवार बनाया जाता रहा है। कांग्रेस का ध्येय लोगों के सामने रखने की तथा गांधीजी के विषय में गलत प्रचार कर हिन्दुत्ववादी जो विषाक्त माहौल बना रहे हैं उसका प्रतिवाद करने के लिए सत्य सामने रखने की आवश्यकता कभी ऐसे लोगों को प्रतीत नहीं हुई। इसी वजह से हिन्दुत्ववादी गोबेल्स के प्रचारतंत्र की तरह जो कहते गये उसे ही आम आदमी सच मानने लगा। पुरोगामी विचार के पक्षों ने गांधीजी को कभी अपना नहीं माना। इसलिए गांधीजी के विरोध में हिन्दुत्ववादियों द्वारा किये जानेवाले प्रचार का झूठापन लोगों के सामने स्पष्ट करने की आवश्यकता ही इन पक्षों ने महसूस नहीं की। पण्डित जवाहरलाल नेहरू जातिवाद के विरोध में लड़ रहे थे। उनके व्यक्तित्व के कारण, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उनके प्रभाव के कारण तथा उनके वैचारिक दृष्टिकोण के कारण नेहरूजी के समय में साम्प्रदायिक ताकतें दबी हुई थीं, पर वे जड़ से उखड़ी नहीं थीं। परन्तु धर्मनिरपेक्षता को माननेवालों ने ऐसा मान लिया कि ये ताकतें समूल उखड़ गयी हैं। इन्दिरा गांधी के कार्यकाल में कांग्रेस में तानाशाही शुरू हुई। इस एकाधिकार को छुपाये रखने के लिए आर्थिक कार्यक्रम तथा गरीबों की राजनीति की भाषा चलती रही। फलत:

उनके कार्यकाल में भी साम्प्रदायिक शक्तियाँ सिर न उठा सकीं। राजीव गांधी का नेतृत्व अपरिपक्व था। उनमें दूरदृष्टि का अभाव था। इसी कारण से तात्कालिक लाभों को ध्यान में रखते हुए कुछ मूलभूत बदलाव वे जल्दबाजी में करते गये। इसीलिए शहाबानो केस के माध्यम से तलाक पीड़ित मुस्लिम महिलाओं के हित में न्यायालय ने जो महत्त्वपूर्ण निर्णय दिया था वह मुल्ला-मौलवी तथा धनी मुस्लिमों के प्रभाव में आकर तलाक पीड़ित गरीब मुस्लिम महिलाओं को न्याय दिलानेवाला कानून ही राजीव गांधी ने बदलवा डाला। साम्प्रदायिक शक्तियों के हाथ में एक हथियार (मुद्दे) ही आ गया। मुस्लिमों का तुष्टिकरण हो रहा है, यह बवण्डर उन्होंने उठाया। हिन्दू-मुस्लिमों के बीच द्वेष की दरारें बढ़ाना शुरू किया। अब हिन्दुओं को खुश करने के लिए राजीवजी ने विवादित बाबरी मस्जिद के बन्द दरवाजे का ताला खोलवाया और शिलान्यास की इजाजत दे दी। इस परिस्थिति की पृष्ठभूमि पर गांधी-हत्या का जोर-शोर से समर्थन किया जाने लगा। विभाजन तथा पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को दिये जाने के लिए गांधी जिम्मेदार हैं, यह लोगों के मन में पूरी तरह बैठ जाय, इसकी बाकायदा कोशिश शुरू हुई। इसी कारण अबतक दबी हुई साम्प्रदायिक ताकतें आज बिना किसी संकोच के खुलेआम गांधीजी के हत्यारों को सम्मानित कर रही हैं।

भारत का विभाजन तथा पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को दिये जाना ये गांधी-हत्या के कारण हैं ही नहीं। महात्मा गांधी ने १३ जनवरी, १९४८ से उपवास शुरू किया था। वह पचपन करोड़ दिये जाने के लिए था ही नहीं। भारतीय स्वाधीनता का सूरज कब उगेगा, कैसे उगेगा इस सम्बन्ध में सबकुछ अन्धकारमय था। विभाजन और पचपन करोड़ रुपये देने का कोई प्रश्न ही नहीं था, ऐसे समय में गांधी-हत्या के प्रयत्न हुए थे। कुछ प्रसंगों में नाथूगाम गोडसे का नाम भी आ चुका था। उसे पुलिस-हिरासत में भी रखा गया था। फिर उस समय हत्या के प्रयास क्यों हुए? गांधीजी की हत्या का कलंक महाराष्ट्र के माथे पर ही क्यों लगा? विभाजन, पचपन करोड़ रुपये, मुस्लिमों की अनुनय ये ही अगर हत्या के सही कारण होते तो देश के अन्य हिस्सों में भी गांधीजी के प्रति तिरस्कार की भावना होती। इस भावना से देश के अन्य हिस्सों के किसी गुट द्वारा हत्या का एकाध प्रयास तो हुआ होता! पर नहीं हुआ। हत्या के प्रयास महाराष्ट्र के लोगों ने ही किये।

हत्या का कलंक भी महाराष्ट्र के माथे पर ही लगा। आजादी के बाद गांधी-हत्या के दो प्रयास हुए थे। उनमें से एक सफल हुआ। पर आजादी से पहले गांधी-हत्या के चार असफल प्रयास हुए। इन सब घटनाओं का अगले अध्यायों में विस्तार से विवरण किया गया है। परन्तु पुणे की एक जानलेवा घटना से बचने के बाद गांधीजी ने ही कहा था, "ईश्वरकृपा से सात बार मृत्यु के मुँह से मैं सही-सलामत बचा हूँ। गांधी-हत्या के १४ वर्ष पहले जून, १९३४ में पुणे में उन पर जानलेवा हमला हुआ। सात लोग जख्मी हुए, दैववशात् गांधीजी बच गये। उस समय न विभाजन था, न पचपन करोड़ का मामला था। फिर उस समय हिन्दुत्ववादी उनकी जान क्यों लेना चाहते थे? पंचगणी, सेवाग्राम तथा पुणे के पास गांधीजी को ट्रेन से गिराने का प्रयास कर उनकी जान लेने की कोशिश क्यों की गयी? गांधीजी के अपहरण की साजिश का पता तत्कालीन पुलिस उपायुक्त जे॰ डी॰ नगरवाला को लगा था। इन सभी प्रयासों का काल अगर देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि ये प्रयास विभाजन एवं पचपन करोड़ के कारण नहीं हुए थे। पुस्तक का विषय पूरी तरह मर्यादित है। गांधी-चरित्र तथा उनकी महानता का वर्णन पुस्तक का हेतु नहीं है। विभाजन के विषय में गांधीजी की भूमिका, विभाजन कैसे हुआ? किसकी वजह से हुआ? पचपन करोड़ रुपयों का मामला क्या है? आजादी की सम्भावना भी नजर में नहीं थी, उस समय से गांधी-हत्या के प्रयास हो रहे थे। उसके पीछे कौन-से कारण थे? महाराष्ट्र के हिन्दुत्ववादी विचारकों ने ही गांधी-हत्या के प्रयास क्यों किये? ये सब बातें स्पष्ट होना आज जरूरी हैं।

गांधी-हत्या की प्रवृत्ति या विचार महाराष्ट्र में ही उपजा और बढ़ता गया। इसकी जड़ में महाराष्ट्र की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ हैं। इन परिस्थितियों या कारणों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी की हत्या विभाजन और पचपन करोड़ के कारण नहीं हुई। मदनलाल पहवा को छोड़ खूनी तथा उसके सभी साथी महाराष्ट्र के हैं। पहवा पाकिस्तान से आया निर्वासित था। देश के अन्य कुछ हिस्सों में भी गांधी-विरोधी वातावरण था। परन्तु वहाँ के विरोधी महाराष्ट्र जैसे कट्टर और प्रक्षोभक विचारों के थे। ऐसा क्यों? व्यापार के लिए आये ब्रिटिश व्यापारियों ने डेढ़ सौ वर्ष भारत पर अपनी सत्ता चलायी। ब्रिटिश व्यापारी, ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा ब्रिटिश सत्ताधारियों को बंगाल के हिन्दू साहूकार तथा जमींदारों ने सहायता की! (आधुनिक

भारत : आचार्य शं॰ द॰ जावडेकर, '१९५६-५७ साल का बंगाल' : एस॰ सी॰ हिल॰, ब्रिटिश हिन्दुस्थानचा इतिहास : पी॰ ई॰ राबर्ट, इतिहास संशोधक शेजवलकर के भारत इतिहास संशोधन मण्डल की पत्रिका के लेख)। अंग्रेजों ने पहले मुसलमानों से बंगाल हथिया लिया। फिर अन्य रियासतें तथा प्रदेश राजपूत तथा जाटों से जीत लिये। महाराष्ट्र में संभाजी महाराज की हत्या के बाद से पुणे के शनिवार वाड़ा पर अंग्रेजों का यूनियन जैक सन् १९१८ में फहराया गया, तब तक महाराष्ट्र की सत्ता ब्राह्मणों के हाथ में थी। महाराष्ट्र में अंग्रेजों ने ब्राह्मणों से सत्ता अपने हाथ में ली। महाराष्ट्र एक ही राज्य है जहाँ ब्राह्मणों से सत्ता ली गयी। लोकहितवादी गोपाल हरि देशमुख द्वारा अप्रैल, १९४९ में लिखे गये लेख से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना उचित होगा। "···ब्राह्मणों का हाहाकार ईश्वर के कानों तक कब पहुँचेगा? तब कोई पुराने जमाने का ब्राह्मण कहता अरे भाई, यादव कैसे मरे? रावण ने क्या कम प्रलय मचाया था ! सभी देवताओं को बन्दी बनाया था! बाद में रामचन्द्रजी ने वानरों की मदद से लंका ली या नहीं? पानी पर पत्थर तैरे न? उसी तरह अंग्रेज भी एक दिन डूबेंगे। धर्म-प्रस्थापना होगी। ब्राह्मण सुखी होंगे।" इस तरह की चर्चाएँ ब्रिटिश सत्ता महाराष्ट्र में स्थापित होने पर ब्राह्मण लोग करते रहते थे। ऐसा उल्लेख लोकहितवादियों के प्रस्तुत लेख में है। एक न एक दिन अंग्रेजों के हाथों से फिर ब्राह्मणों के हाथों में सत्ता आयेगी। धर्म-संस्थापना होगी और ब्राह्मण सुखी होंगे, ऐसा ब्राह्मण सोचा करते थे।

ब्राह्मणों की यह सोच महत्त्वपूर्ण है। पुणे में अंग्रेजी शासन स्थापित होने के बाद अंग्रेजों ने कुछ ब्राह्मणों को रायबहादुर और सरबहादुर बनाया। कुछ ब्राह्मण इस कृपा-दृष्टि से अछूते रह गये। उनमें असन्तोष पनपने लगा। विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने इस असन्तोष को अंग्रेज-विरोधी असन्तोष का रूप दिया, राष्ट्राभिमान जगाने का प्रयास किया। आगे चलकर चिपलूणकरजी को बाल गंगाधर तिलक और गोपाल गणेश आगरकर का सहयोग मिला। १८७६ के अकाल में किसानों का दंगा हुआ। उसका लाभ उठाते हुए वासुदेव बलवंत फड़के ने बगावत का झण्डा फहराया। इस पृष्ठभूमि में बाल गंगाधर तिलक ने आजादी का मंत्रोच्चार किया। तिलकजी के आन्दोलन के कारण जो आजादी मिलेगी उसमें सत्ता फिर ब्राह्मणों के हाथ में आयेगी, इस आशा से ब्राह्मण तिलकजी के आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए। उनमें से कई लोग तो तिलकजी के

आन्दोलन का अर्थ ही नहीं समझ सके। आन्दोलन का गलत अर्थ इन लोगों ने लगाया। तिलकजी स्वयं गरम (उग्र) विचार के थे। तिलकजी की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायी और भी गरम विचारोंवाले बने। तिलकजी के अनुयायियों में से कुछ हिन्दुत्ववादी बने और कुछ गांधीजी के साथ गये। इससे पहले सन् १९४० में बालशास्त्री जांभेकर ने सामाजिक सुधारों की बात की तो ब्राह्मणों ने उनपर हमला करके उन्हें सताया। ब्राह्मणों का वर्चस्व (महत्ता) प्रस्थापित करने की आशा इसके पीछे थी। जो भी बातें ब्राह्मण-विरोधी थीं, उन्हें नष्ट करना ही एक उद्देश्य इन पुराणमतवादी लोगों का था। आगे भी यह उद्देश्य बना रहा।

अंग्रेजों के आने के बाद सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में ब्राह्मणों का अधिकार ढीला पड़ने लगा। समाज-व्यवस्था में बदलाव आने लगे। वरिष्ठ जातियों के हाथों से नियंत्रण निकल गया। उनके सामने चुनौती खड़ी हुई थी। खेती की समस्याओं को महत्त्व प्राप्त होने लगा था। भारत की कृषि-व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए यूरोप के कृषितज्ञ डॉ॰ ओल्कर ने किसानों के खेती-विषयक अज्ञान की ओर ध्यान आकर्षित कर शिक्षा में खेती सम्बन्धी विषयों को समाविष्ट करने की सिफारिश की। अगर वह मंजूर हुई होती तो मध्यम वर्ग के साथ ही बहुजन समाज पर भी शिक्षा का अच्छा परिणाम होता। और वह समाज भी आगे बढ़ता। यही कारण है कि समाज के ऊँचे वर्ग ने इस सिफारिश को लागू नहीं होने दिया। महात्मा फुले का भी आग्रह था कि निम्न जातियों को शिक्षा मिले और शिक्षा में खेती विषय समाविष्ट हो। फुलेजी की शिकायत थी कि शासन प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान नहीं देता है, उच्च शिक्षा पर अधिक खर्च करता है। इसका लाभ ब्राह्मण तथा ऊँची जाति के लड़कों को ही प्राप्त होगा। ग्रामीण इलाकों में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध हो तथा निम्न जातियों के लिए स्कूल खोले जायें, यह उनकी माँग थी। इसके विपरीत लोकमान्य तिलक तथा आगरकरजी ने माध्यमिक तथा महाविद्यालयीन शिक्षा की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। सन् १८८३ के न्यू इंग्लिश स्कूल के इतिवृत्त में माध्यमिक तथा महाविद्यालयी शिक्षा की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए इन दो महान् नेताओं ने कहा कि "धार्मिक, नैतिक तथा भौतिक शिक्षा के जरिये भारत की अधोगति रोकी जा सकेगी।" तिलकजी तथा आगरकरजी ने माध्यमिक स्कूल खोलकर उच्चवर्णीय तथा ऊँची जाति के लड़कों के लिए

आगे की शिक्षा की सुविधा दिलायी। बहुजन समाज के लिए प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता थी। प्राथमिक शिक्षा के अभाव में तिलकजी, आगरकरजी के माध्यमिक स्कूलों तथा कॉलेजों का लाभ बहुजन समाज के लड़कों को मिलता ही नहीं था। इस पृष्ठभूमि पर ध्यान दें तो ऐसा लगता है कि लोकमान्य तिलक ने जो राजनैतिक जागृति की तथा अंग्रेजों के खिलाफ जो असन्तोष जगाया, वह प्रमुखतया उच्चवर्णियों के ही हित में था। शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद जिनकी नौकरी का प्रश्न हल नहीं हो पाया था तथा अंग्रेजों की सत्ता के कारण जिनकी महत्ता को ठेस लगी थी, ऐसे मध्यम वर्ग में असन्तोष पैदा होता गया। लोकमान्य तिलक ने देश का नेतृत्व किया। लोगों के मन में राष्ट्रीयता की भावना जगायी। सरकार के विरोध में आन्दोलन के लिए लोगों को प्रेरित किया। परन्तु उनके कार्यकाल में आन्दोलन देहातों तक कम ही पहुँच पाया। बहुजन समाज भी आन्दोलन में शरीक न हो पाया। उनके आन्दोलन को अनायास ही शहरी मध्यम वर्ग के असन्तोष का स्वरूप प्राप्त हुआ। प्रस्थापित वर्ग के हाथ से सामाजिक नियंत्रण छूटने लगा। सत्यशोधक समाज के कार्य से इस प्रक्रिया को गति मिल रही थी। तिलकजी के आन्दोलन में शरीक होने से, उनकी शक्ति बढ़ाने से परिवर्तन की गति रोकी जा सकेगी और अपनी श्रेष्ठता पुनःस्थापित की जा सकेगी। यह भाव शहरी मध्यम वर्ग के युवकों में उत्पन्न हुआ। परिणामत: ऊँची जाति के मध्यम वर्ग का तिलक के आन्दोलन के प्रति लगाव बढ़ता गया। महाराष्ट्र में तिलकजी के अनुयायी अधिक थे। तिलक महाराष्ट्र से थे, इसी कारण ऐसा हुआ, यह मानना सही न होगा। बदलती राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति के कारण यह होता गया। तिलकजी के आन्दोलन का गलत अर्थ मध्यमवर्गियों ने लगाया। उनके आन्दोलन की व्यापक परिधि कइयों के आकलन-शक्ति से परे की बात थी। परिणामत: अपनी दृष्टि से सुविधाजनक अर्थ लगाकर मध्यम वर्ग ने तिलकजी के आन्दोलन की ओर देखा। तिलकजी के आन्दोलन के परिणामस्वरूप जो स्वराज्य आयेगा उसमें अपनी सामाजिक और राजनैतिक सत्ता अबाधित रहेगी, ऐसा ऊँची जातियों ने मान लिया। इसलिए ये लोग तिलकजी के आन्दोलन के प्रति आस्था रखते थे तथा आन्दोलन में अपनी शक्ति के अनुसार भाग भी लेते थे। ऐसे समय १ अगस्त, १९२० के दिन तिलकजी का देहावसान हुआ।

लोकमान्य तिलक के निधन के बाद मोहनदास करमचन्द गांधी का भारतीय राजनीति में उदय हुआ। राजनीति को एक नयी दिशा और गति मिली। महात्मा गांधी ने राजनीति में नये आयाम दाखिल किये। अहिंसा, सत्याग्रह और असहयोग को गांधीजी ने लड़ाई के नये हथियार बनाये। राजनैतिक आन्दोलन के साथ सामाजिक सुधारों के प्रश्न भी हाथ में लिये। उनकी लड़ाई की तकनीक नयी थी। अफ्रीका का अनुभव साथ था। परन्तु केवल उस अनुभव के आधार से ही गांधीजी ने नयी तकनीक नहीं दी। इस देश का मानस जितना गांधीजी ने जाना-समझा उतना अन्य किसीने नहीं जाना। अंग्रेजों को खदेड़ने के प्रयास गांधीजी के पहले भी हुए थे। १८५७ का प्रयास तो काफी बड़ा था। अपनी सामर्थ्य से अंग्रेजों ने उस प्रयास को कुचल डाला। बल का, शस्त्रों का प्रयोग कर अंग्रेजों को भगाने की ठानते तो अंग्रेज भी अपनी सत्ता मजबूत बनाने के लिए बल का प्रयोग करते और ऐसे प्रयासों को असफल बनाते। ऐसी हालत में आजादी और अधिक दूर जाती। सशस्त्र क्रान्ति के लिए निरन्तरता, ध्येयनिष्ठा और प्रयत्नों की पराकाष्ठा आवश्यक होती है। वैसी तैयारी भारत की नहीं है, सशस्त्र प्रतिकार के लिए भारतभूमि अनुकूल नहीं, यह देश शान्ति से अधिक प्यार करता है, यह गांधीजी ने अच्छी तरह पहचान लिया था। इसीलिए गांधीजी ने लड़ाई की नयी तकनीक अपनायी। आजादी अपने लिए लानी है, यह भावना आम आदमी में जागृत होगी, उसे वैसा भरोसा रहेगा तभी यह लड़ाई व्यापक बनेगी, यह पहचानकर गांधीजी ने आम आदमी की आशा-आकांक्षाओं से राजनीति को जोड़ा। जन-जीवन के मूलभूत प्रश्नों से आन्दोलन को जोड़ा। गांधीजी के नेतृत्व के परिणामस्वरूप कांग्रेस का अर्थात् आजादी का आन्दोलन देहातों तक पहुँचा। अधिकतम लोगों का सहयोग गांधीजी ने प्राप्त किया। यदि आजादी का आन्दोलन विशिष्ट समाज तक सीमित रहा तो कभी यशस्वी नहीं होगा यह गांधीजी ने पहचाना और सभी जाति-धर्म के लोगों को कांग्रेस अपनी लगे, ऐसा मोड़ राजनीति को दिया। तिलक महाराज की राजनीति इससे भिन्न थी। अत: तिलकजी के आन्दोलन के प्रति आकृष्ट वर्ग अपनी प्रभुता फिर प्रस्थापित होगी, इस भावना से आन्दोलन में शरीक हुआ था।

महात्मा गांधी की राजनीति का परिणाम, उनके तत्त्वज्ञान, उनके आन्दोलन का प्रभाव देहातों के सामान्य लोगों पर पड़ता गया। 'अपना वर्चस्व पुनःस्थापित होगा', इस अपेक्षा से

तिलकजी के आन्दोलन में शामिल वर्ग की आशाओं पर पानी फिर गया। तिलकजी की राजनीति में धर्म की प्रधानता थी। तिलक-प्रेम की ढाल सामने रखकर यह वर्ग हिन्दुत्ववादी राजनीति अपनाता गया। अपनी श्रेष्ठता पुनः प्रस्थापित करनी हो तो गांधी-विचार, उनकी तत्त्व-प्रणाली, उनके आन्दोलन के तरीके इन सबका प्रभाव न फैले, इस दिशा में प्रयास करने का इस वर्ग ने ठान लिया। गांधीजी की राजनीति में सब धर्मों, पंथों तथा जातियों का स्थान था। अत: गांधीजी के आन्दोलन की वजह से मिलनेवाली आजादी में ये सभी वर्ग सत्ता में सहभागी होंगे। यह भान इस वर्ग को था। इसीलिए गांधी प्रवर्तित आन्दोलन में वे शामिल नहीं हुए। डॉ॰ श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसे हिन्दू महासभा के नेता अंग्रेजों के शासनकाल में मुस्लिम लीग हक-मंत्रिमण्डल में अर्थमंत्री थे। तब २६ जुलाई, १९४२ को उन्होंने गवर्नर को पत्र लिखकर जताया था कि अंग्रेजों के युद्ध प्रयत्नों को उनका पूरा समर्थन है। साथ ही बंगाल में चल रहे कांग्रेस के आन्दोलन को किस तरह नष्ट किया जा सकता है, यह भी लिखा था—"युद्ध प्रयत्न के समय सामूहिक आन्दोलन की भावना निर्माण कर अशान्ति फैलाना, असुरक्षा निर्माण करना आदि को किसी भी सरकार को रोकना चाहिए। बंगाल का यह आन्दोलन कैसे दबाया जाय, यह प्रश्न है। कांग्रेस के आत्यंतिक प्रयासों के बावजूद बंगाल में कांग्रेस का आन्दोलन जोर न पकड़े तथा वह असफल हो, इस दृष्टि से मैं सुझाव दे रहा हूँ।" इस तरह की चिट्ठी डॉ॰ श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने सर जॉन हर्बर्ट को लिखी थी। (क्विट इण्डियाज अपोनंट अन्मास्कड : सुमित गुहा : इण्डियन एक्सप्रेस १७ अगस्त, १९९२)। श्यामाप्रसाद मुखर्जी तब हिन्दू महासभा के नेता थे। आजादी का आन्दोलन चरम उत्कर्ष पर था। ऐसे समय श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसों ने इस तरह की चिट्ठी क्यों लिखी, इस प्रश्न के उत्तर के बीज भी हिन्दुत्ववादियों ने स्वयं को आजादी के आन्दोलन से अलग क्यों रखा, इन्हीं कारणों में देखे जा सकते हैं। हिन्दुत्व तथा हिन्दू राष्ट्रवाद जैसे सम्बन्ध सँजोये रखनेवाला राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ इसी कारण से आन्दोलन से दूर रहा; क्योंकि गांधीजी के नेतृत्व से मिलनेवाली आजादी केवल उच्चवर्णियों को लाभ देखनेवाली नहीं थी। इसीलिए १५ अगस्त, १९४७ के स्वाधीनता दिवस को हिन्दुत्ववादियों ने मातमदिन माना। आज भी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक न्याय और समता का पक्ष लेनेवाला भारतीय संविधान उन्हें मान्य नहीं है। वे प्रजातंत्र के स्थान पर

धर्मराष्ट्र का पक्ष लेते हैं। इसका कारण भी यही है। धर्मराष्ट्र में धर्म पर नियंत्रण रखनेवालों का कब्जा रहेगा। और धर्म-नियंत्रण का कार्य या कर्तव्य धर्मशास्त्र ने उच्चवर्णियों को ही सौंप रखा है। गांधी-युग में हिन्दुत्ववादियों ने धर्म तथा धर्मराष्ट्र की भावनाओं को उभारा भी था, फिर भी आम आदमी गांधीजी के आन्दोलन से दूर नहीं हुआ। उल्टे पूरे देश में गांधीजी का प्रभाव बढ़ रहा था। संक्षेप में गांधी के विचार, उनका नेतृत्व अपनी राह का रोड़ा है, ऐसा हिन्दुत्ववादियों को लगता था। अपनी विचार-प्रणाली की ताकत से अर्थात् धर्मराष्ट्र की अवधारणा के आधार पर गांधीजी का आन्दोलन रोका जाना असम्भव है, यह स्पष्ट होने पर गांधी को खतम किया जाय, यह विचार हिन्दुत्ववादियों में जोर पकड़ता गया और गांधी-हत्या के प्रयास शुरू हुए। हिन्दुत्ववादी लगातार गांधी-हत्या के प्रयास करते रहे। गांधीजी का प्रभाव कम करने के लिए पहले इस गुट ने मुस्लिमों के प्रति द्वेष बढ़ाया। फिर इस तरह का प्रचार शुरू किया कि गांधीजी मुसलमानों का समर्थन करते हैं, उनसे ज्यादा लगाव रखते हैं। गांधी मुस्लिमपरस्त हैं, ऐसा आरोप वे लगाने लगे।

महाराष्ट्र से होनेवाले गांधी-विरोध का विश्लेषण गांधीजी के निजी सचिव प्यारेलाल ने भी किया है : "महाराष्ट्र उग्र और कर्मठ ब्राह्मणों का गढ़ है। साथ ही निःस्वार्थ वृत्ति से, समर्पण की भावना से तथा निष्ठापूर्वक कार्य करनेवाले देशभक्तों का भी आदर्श है। कभी-कभी वहाँ की ध्येयवादिता आत्यंतिक सिरे पर पहुँच जाती है। यह ध्येयवादिता अन्य लोगों के जीवन के सम्बन्ध में तथा उनकी राजनीति के सम्बन्ध में तुच्छता की भूमिका लेनेवाली होती है। यह भूमिका महात्मा गांधी की विचार-प्रणाली की विरोधी भूमिका है। महात्मा गांधी के उदय से लोकमान्य तिलक की स्मृतियाँ धूमिल हो गयी हैं। गांधीजी की विचार-प्रणाली तथा उनके आन्दोलन का तरीका तिलक का महत्त्व कम करनेवाला है। देश की राजनीति में तिलकजी का स्थान तथा महाराष्ट्र का स्थान गांधीजी की वजह से कम हुआ है, ऐसी गलत धारणा कुछ लोगों ने अपनायी है। परिणामस्वरूप गांधीजी के विचारों का प्रभाव जब बढ़ता गया, उनका अहिंसक आन्दोलन फैलता गया तब इस गुट ने गांधीजी के विषय में, उनके विचारों के विषय में, आन्दोलन की तकनीक के विषय में शत्रुत्व शुरू किया। उनकी निराशा और विफलता की भावना ने गांधी-निन्दा का आन्दोलन चलाया। फिर भी गांधीजी का प्रभाव बढ़ता ही गया। गांधीजी का आन्दोलन जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे

हिन्दूत्ववादियों की निराशा भी बढ़ती गयी।"[१] प्यारेलालजी द्वारा किये हुए महाराष्ट्र के गांधी-विरोध के विश्लेषण से मेरे विश्लेषण को बल ही मिलता है।

महाराष्ट्र के सभी ब्राह्मण इस गुट के नहीं हैं। गांधी-युग के प्रारम्भिक काल में महाराष्ट्र के अनेक ब्राह्मण गांधीजी के अनुयायी बने। सामाजिक सुधारों में भी ब्राह्मणों ने सहयोग दिया। गांधी-विचार आगे ले जाने में महाराष्ट्र के ब्राह्मणों का बड़ा हिस्सा है। परन्तु गांधी-विचार के पीछे ब्राह्मणों की बड़ी संख्या थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनका झुकाव गांधी-विरोधी ब्राह्मण गुट की ओर था। कुछ ब्राह्मण खुलकर तो कुछ छिपकर इस गुट के साथ थे। गांधीजी का आन्दोलन बढ़ता गया, इसलिए बदले की भावना से वे गांधी-विरोधी बने। इतनी सरल कारण-मीमांसा सही न होगी। प्यारेलाल गांधीजी के शिष्य थे इसलिए विरोधियों के बारे में कड़वाहट पैदा न हो, ऐसे शब्दों में उन्होंने विश्लेषण किया होगा। गांधीजी के आन्दोलन के कारण अपना सामाजिक और राजनैतिक नियंत्रण ढीला पड़ जायेगा, इसी भावना से हिन्दुत्ववादी गुट गांधीजी को कट्टर दुश्मन मानने लगा। महात्मा गांधी ने न कभी किसी को शत्रु माना न दुश्मन ! तिलकपंथियों में मतभेदों के बावजूद अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की और सहिष्णुता की वृत्ति का अभाव है। शायद वे लोकमान्य तिलक का अनुकरण करते हों। आगरकरजी से मतभेद होते ही 'केसरी' के सम्पादकीय लेखों में तिलकजी ने आगरकरजी को 'हाट का कुत्ता' तक कहा है। तिलकजी जैसा बड़ा नेता जब अपने वैचारिक विरोधियों के प्रति इस तरह की भाषा का प्रयोग करता है तब तिलक का नाम लेनेवाले भाषा के सम्बन्ध में एक कदम आगे ही होंगे। इसीलिए कुछ हिन्दुत्ववादी नेताओं को छोड़ अन्य कार्यकर्ताओं से लेकर नेताओं तक सभी बड़ी अशिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं। विचार एवं दलीलों के बल पर गांधी-विचार का पराभव असम्भव है। गांधीजी की ओर से जनता को अपनी ओर मोड़ना भी असम्भव है, इसीलिए गांधीजी को ही खतम करने का उन्होंने तय किया। गांधीजी के कारण लोकमान्य तिलक भुला दिये जायेंगे, ऐसा मानना मूर्खता है। लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी का कार्य महान् ही समझा जाता है तथा आगे भी समझा जायेगा।

हिन्दुत्ववादियों की भूमिका कांग्रेस-विरोधी थी। उनमें महाराष्ट्र के हिन्दुत्ववादियों की संख्या अधिक थी। देश के अन्य हिस्सों में भी गांधी-विरोधी लोग थे परन्तु उनकी कट्टरता तथा महाराष्ट्र

के हिन्दुत्ववादियों की कट्टरता में फर्क है। देश के अन्य हिन्दुत्ववादियों द्वारा गांधीजी को मारने का प्रयास हुआ, ऐसा नहीं दीखता। उनकी भाषा जरूर कभी-कभी भड़काऊ होती थी। तथापि पुणे के हिन्दुत्ववादियों ने गांधी-हत्या के प्रयास बार-बार किये, ऐसा लगता है। गांधीजी मुस्लिमों का समर्थन करते हैं। इस कारण उनकी राजनीति का जिस तरह कड़ा विरोध महाराष्ट्र के हिन्दुत्ववादियों ने किया, वैसा कड़ा विरोध अन्य राज्यों के हिन्दुत्ववादियों ने क्यों नहीं किया? गांधीजी को खतम किये बिना उनकी मुस्लिम समर्थन की राजनीति में रुकावट नहीं आयेगी, ऐसा उन्हें क्यों नहीं लगा? गांधीजी की जान लेने के कई प्रयास हुए। स्वयं गांधीजी ने कहा है कि मृत्यु के मुख से मैं सात बार बच निकला हूँ। गांधी-हत्या के प्रयासों में महाराष्ट्र के हिन्दुत्ववादी ही आगे थे। गांधी की राजनीति से ब्राह्मण-हित की राजनीति में बाधा या रुकावट आयी। गांधीजी की राजनीति से बहुजन समाज की राजनीति की हवा बहने लगी। गांधीजी की राजनीति से हिन्दुत्ववादियों की राजनीति में रुकावट आयी। इन सबका गुस्सा, चिढ़ तथा ईर्ष्या महाराष्ट्र के मध्यम वर्ग में अधिक थी। गांधीजी के उदय से तिलकपक्षीय राजनीति पिछड़ गयी। यह कारण शुरू में लिखा ही है। इसीमें गांधी-हत्या के प्रयास के बीज हैं। इसीलिए महाराष्ट्र के हिन्दुत्ववादी तथा शेष भारत के हिन्दुत्ववादी दोनों में थोड़ी भिन्नता आयी।

महाराष्ट्र के इतिहास संशोधक न. र. फाटक का इस विषयक विश्लेषण मेरे मत को पुष्ट करता है। फाटक गांधीवादी न थे, न ही ब्राह्मण-विरोधी थे। वे स्वयं ब्राह्मण थे तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे महान् इतिहास संशोधक थे। अत: उनके विश्लेषण का विशेष महत्त्व है। वे लिखते हैं, "रानडेजी के प्रयास के फलस्वरूप पुणे को राजनैतिक स्थान प्राप्त हुआ। सन् १८९१ में तिलकजी का राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश हुआ। दो साल बाद रानडेजी मुम्बई चले गये, और वह क्षेत्र तिलकजी ने अपने हाथों में लिया। सन् १८९३ की हिन्दुओं की सभा, फिर सार्वजनिक सभा पर अधिकार, इस तरह के उनकी प्रगति के सोपान सहज दृष्टिगोचर होते हैं। गोखलेजी पुणे में ही थे, परन्तु धर्म के नाम से चलनेवाली राजनीति की ओर वे कभी नहीं मुड़े। उनकी राजनीति धर्म, पंथ, जाति, अवतार, आचार्य इनमें से किसी का भी आधार लिये बिना चल रही थी। धर्म और ब्राह्मणों की साँठ-गाँठ सनातन है। सम्मति-कानून के सम्बन्ध में भाण्डारकर,

तेलंग और आगरकर से तिलकजी ने संघर्ष किया, इसलिए धर्मरक्षक के नाते तिलकजी का नाम हुआ। कांग्रेस के मण्डप में सामाजिक परिषद् न हो, इस तरह के प्रयास करके तिलकजी ने अपनी अलग पहचान बनाये रखी। सामाजिक सुधारों का रुख ब्राह्मणों के विरोध में था। सामाजिक सुधारों का कार्य ब्राह्मणों को मंजूर नहीं था। इस कार्य को करनेवाले रानडे-भाण्डारकर जैसे बड़े नेताओं का प्रखर विरोध करनेवाले तिलकजी जैसे नेता के सामने आते ही ब्राह्मण-समाज का उनकी जयजयकार करते हुए उनके चारों ओर इकट्ठा होना स्वाभाविक था। **सामाजिक सुधारों का आन्दोलन पिछड़ने पर मानवीय समता के तत्त्व के कारण ब्राह्मणों के वर्चस्व को लग रहा ग्रहण टलेगा, ऐसा ब्राह्मण समाज का अनुमान होने में कोई आश्चर्य नहीं। जिले, तहसीलों, तालुकों आदि स्थानों पर वकील, डॉक्टर तथा सरकारी अधिकारी ब्राह्मण ही होते थे। महाराष्ट्र में खासकर ब्राह्मणों में तिलकजी की विशेष तारीफ होती थी।** राज्य सुधार अर्थात् आजादी की पूर्व तैयारी पहचानकर अपने अधिकारों का विचार न करनेवाले नेताओं के पीछे जाने से मक्खन तो वे हथिया लेंगे और अपने हिस्से में छाछ ही रह जायेगी, यह डर अब्राह्मण बहुजन समाज के मन में उत्पन्न हुआ। यह तिलकजी के नेतृत्व का परिणाम था। गांधीजी के नेतृत्व ने उस परिणाम में रुकावट डाली।"[२] न. र. फाटक के विश्लेषण पर गौर करें तो हिन्दुत्ववादी गांधी-विरोधी क्यों थे, इस सम्बन्ध का मेरा कथन अधिक स्पष्ट हो जाता है।

महात्मा गांधी के विषय में हिन्दुत्ववादियों में द्वेष था और है। यह किसी व्यक्ति विशेष के द्वेष जैसा नहीं था। गांधी-विचार ने हिन्दुत्ववादी विचारों को रोका। उनकी राजनीति में रुकावटें आयीं, इसीलिए गांधीजी के प्रति उनमें द्वेष था। समाज के जिस वर्ग से हिन्दुत्ववादी आये हैं, वह वर्ग पेशवाई समाप्त होने पर सत्ता से वंचित हो गया था। तिलकजी की राजनीति से इस वर्ग की आशाएँ पुनः पल्लवित हुई थीं जो गांधीजी की राजनीति से मुरझा गयीं। इसलिए हिन्दुत्ववादियों का गांधीजी की विचार-प्रणाली से द्वेष था। हिन्दुत्ववादियों का पुणे का गुट ही अधिक कट्टर था। ऐसा क्यों था? मुम्बई में भी ब्राह्मण थे। उनमें भी कुछ हिन्दुत्ववादी थे। फिर मुम्बई के हिन्दुत्ववादियों का गांधी-द्वेष पूना के हिन्दुत्ववादियों से कम क्यों? इसका भी विचार करना चाहिए और तभी समझ में आयेगा कि संभाजी की हत्या के बाद महाराष्ट्र की राजनीति ब्राह्मणों के हाथ

में आयी जो पेशवाई के अन्त तक उन्हींके हाथों में रही। तिलक-युग में भी राजनीति का सूत्र ब्राह्मणों के ही हाथों में था। इसीलिए पुणे के ब्राह्मण समयानुरूप परिवर्तन न कर सके। पेशवाई के अन्त के बाद राजनीति का केन्द्र मुम्बई बना। मुम्बई में हिन्दू-मुस्लिम और पारसियों में आपसी व्यवहार चलता था। पुणे की तरह मुम्बई में ब्राह्मणों का प्रभाव नहीं था। मुम्बई के ब्राह्मण पुणे के ब्राह्मणों की तरह एकजुट नहीं थे। तिलकजी जैसे नेता के उदय के बाद पुणे की ब्राह्मणी वृत्ति के लोगों की जो आशा थी, उसी को धक्का लगा। उसीसे गांधी-द्वेष की राजनीति शुरू हुई। ऐसा मुम्बई में नहीं हुआ। सभी ब्राह्मण गांधी-द्वेषी नहीं थे। केलकर, खापड़ें जैसे लोग गांधीजी से दूर रहे, पर कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, शंकरराव देव, काकासाहब गाडगिल, आचार्य जावडेकर, आचार्य स. ज. भागवत जैसे कई ब्राह्मण गांधीजी के प्रभाव में आये। इससे हिन्दुत्ववादी और भड़क गये। ब्राह्मणों में से कुछ ने गांधी-विचारधारा को स्वीकार किया। पर नये बदलाव को जो स्वीकार न कर सके वे कट्टर हिन्दुत्ववादी बने, और गांधी-द्वेष में अन्धे हो गये। नया विचार तथा नयी राजनीति के प्रखर प्रकाश को स्वीकार करने के बजाय उन्होंने अपनी आँखें ही मूँद लीं। जिस गांधी की वजह से यह प्रकाश फैला था, उस प्रकाश के ही वे विरोधी बन गये और गांधी को मारे बगैर उनके विचारों को रोका नहीं जा सकता, इस निर्णय पर पहुँचे। विचारों का मुकाबला विचारों से करने योग्य प्रभावशाली विचार हिन्दुत्ववादियों के पास नहीं था और न प्रभावशाली नेतृत्व था। पुराना विचार टिक नहीं सकता और नये विचारों को स्वीकार करने के लिए मन तैयार नहीं होता, तब इसी तरह की विकृति पैदा होती है। इसीलिए हिन्दू-धर्मान्धों में जो विकृति है वही मुस्लिम-धर्मान्धों में भी है। दोनों धर्मान्ध नये विचारों तथा नये सुधारों को स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हैं। विचारों का मुकाबला करने की वैचारिक शक्ति हिन्दुत्ववादियों में न होने से व्यक्ति की हत्या का मार्ग उन्होंने चुना, और उसीके पीछे पड़ गये। इस सन्दर्भ में इतिहास संशोधक न. र. फाटक ने भी प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं, “आखिरी साँस तक मैं अपना कर्तव्यक्षेत्र नहीं छोड़ूँगा, ऐसा गांधी द्वारा स्पष्ट होते ही गांधीजी के विषय में वैरभाव रखनेवालों के सामने बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी। न वे राजनीति से बाहर होते हैं न ही जल्दी मरने की कोई सम्भावना दीखती है। ऐसी परिस्थिति में उनकी जान लेने का उपाय महाराष्ट्र में अनेकों को सूझा। महाराष्ट्र में तिलकजी से

तालीम प्राप्त वर्ग गांधीजी के आन्दोलन से असहयोग कर 'सुखम् च मे शयनम् च मे' इस वृत्ति से व्यवहार करता रहा। परन्तु इसी समय इस वर्ग के कुछ लोग गांधी-हत्या के हृदयरोग से पीड़ित हो गये।"[३]

लोकमान्य तिलक के आन्दोलन का सनातनियों—हिन्दुओं ने गलत अर्थ लगाया और वे गांधीजी के कट्टर शत्रु बन गये। वस्तुत: गांधीजी के कई आन्दोलनों का मूल तिलकजी के आन्दोलन में था। पर यह बात हिन्दुत्ववादी कभी समझ न सके। गांधीजी के आन्दोलन से हिन्दुत्ववादियों की आशाएँ धूल में मिल गयीं। अत: गांधीजी को वे अपने मार्ग का रोड़ा समझने लगे। आचार्य जावडेकरजी अपनी पुस्तक 'लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी' में लिखते हैं, "महात्मा गांधी के कार्य के विषय में जिन लोगों के मन में असन्तोष था वे सब स्वयं को तिलकभक्त समझने लगे। जो खादी पहनना नहीं चाहते थे, जिन्हें अस्पृश्यता-निवारण का कार्य पसन्द नहीं था, हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास जिन्हें अच्छे नहीं लगते थे, या कानूनभंग और कर न चुकाना इस तरह के आन्दोलन में जो शरीक नहीं होना चाहते थे, ऐसे सब लोग तिलकभक्ति की ओट में इन सबका विरोध कर सकते हैं। ऐसे असन्तुष्ट तिलकभक्त अभी भी महाराष्ट्र में बहुत हैं।" तिलक-पंथियों को गांधीजी की राजनीति समझ में ही नहीं आयी। और तिलक-पंथी न तो स्वयं तिलक हैं न तिलकजी की राजनीति को सही अर्थ में चलानेवाले नेता या कार्यकर्ता हैं। लोकमान्य तिलक ने देशकार्य का रथ जहाँ लाकर छोड़ा था, वहाँ से गांधीजी ने उसे आगे बढ़ाया। स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग, हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास तिलकजी की राजनीति का ही अंग था। उसी को महात्मा गांधी ने व्यापक नींव पर बढ़ाया। लोकमान्य तिलक ने जनता में असन्तोष निर्माण किया। उसे गांधीजी ने सत्याग्रह और आत्मबल की सामर्थ्य से अंग्रेजी साम्राज्य को दहला दिया। अंग्रेजों ने ७०० रियासतों से सत्ता हासिल को थी। एक राष्ट्र की अवधारणा उसके बाद ही इस देश में निर्माण हुई और कांग्रेस के नेतृत्व में आजादी का आन्दोलन शुरू हुआ। यह आन्दोलन गांधीजी के कारण व्यापक बना। सारे देश में आन्दोलन की आग फैलती गयी। गांधीजी के कारण एक झण्डे के नीचे आन्दोलन आगे बढ़ा। इसीलिए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने ६ जुलाई, १९४४ को सबसे पहले गांधीजी को 'राष्ट्रपिता' (Father of the Nation) के नाम से सम्बोधित किया। 'हमने

जिन ७०० रियासतों के राजाओं से सत्ता ली थी उन्हीं को सत्ता सौंपकर हम चले जाते हैं, ऐसा अंग्रेज कह रहे थे। गांधीजी ने इसका विरोध किया और अंग्रेजों का इरादा असफल कर दिया। इसीलिए गांधी 'राष्ट्रपिता' सिद्ध होते हैं। एक झण्डे के नीचे सभी जातियों और सम्प्रदायों को साथ लेकर आजादी की लड़ाई लड़ी गयी और आजादी हासिल हुई। इसीलिए गांधीजी 'राष्ट्रपिता' कहलाते हैं। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसे संगठन आजादी की लड़ाई में शामिल ही नहीं थे। वे ही केवल ऐसे हैं जो गांधी को राष्ट्रपिता मानने को तैयार नहीं हैं।

गोपाल कृष्ण गोखले को गांधीजी अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। पर गांधीजी की नैतिकता से गोखलेजी भी प्रभावित हुए। सिद्धान्तत: गांधीजी की राजनीति की नींव नैतिकता थी और आन्दोलन का मार्ग साधनशुचिता का था। मनुष्य के आन्तरिक परिवर्तन पर वे बल देते थे। हृदय-परिवर्तन द्वारा मत-परिवर्तन कर उसके आधार पर सारे सुधार और बदलाव वे लाना चाहते थे। सामनेवाला व्यक्ति अनीति से व्यवहार कर रहा हो तब भी हमें नीति से ही व्यवहार करना चाहिए। सत्ताधारियों के बारे में भी गांधीजी की यही भूमिका थी। शान्तिपूर्ण मार्ग का अनुसरण, सामनेवाले से नजदीकी सम्बन्ध बढ़ाना, उसे अपने आन्दोलन की पूर्व सूचना देकर आन्दोलन छेड़ना ये गांधीजी के सूत्र थे। किस दिन, कितने बजे, किस स्थान पर वे सत्याग्रह करनेवाले हैं, यह घोषित करके वे सत्याग्रह करते थे। अपने अनुयायियों का नैतिक बल बनाये रखने के लिए आत्मक्लेश के लिए उन्होंने उपवास किये। उपवास के फलस्वरूप सिद्धान्त स्वीकृत होने पर तफसील के विषय में अनाग्रही रहना और लेन-देन का मार्ग अपनाना इन बातों पर वे बल देते थे। राजनैतिक आन्दोलन की ओर देखने का गांधीजी का दृष्टिकोण तिलकजी के दृष्टिकोण से भिन्न था। तिलकजी ने राजनीति के क्षेत्र में नैतिकता की अपेक्षा परिणामकारकता को अधिक महत्त्व दिया। शत्रु नैतिकता का पालन न करता हो तो हमें भी पालन करने की आवश्यकता नहीं। 'शठं प्रति शाठ्यम्' ऐसी तिलकजी की मान्यता थी। गांधीजी ने इस मार्ग का अनुसरण नहीं किया। वे साधनशुचिता के आग्रही थे। गांधीजी भगवान् कृष्ण की गीता से भी उदाहरण देते थे। परन्तु कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि साधनशुचिता का आग्रह रखनेवाले गांधीजी भगवान् कृष्ण की कूटनीति को कैसे पसन्द करते थे? वस्तुत: गांधीजी ने साध्य की पवित्रता जितना ही महत्त्व

साधनों की पवित्रता को दिया है। कृष्ण ने सूरज के सामने हाथ धरकर अँधेरा फैलाया। अँधेरा हो जाने से धर्मयुद्ध के नियमानुसार युद्ध बन्द हुआ। तब फिर सूरज के सामने से हाथ हटाकर कौरवों के साथ फिर युद्ध करने की चाल चली। यह साधनशुचिता नहीं है। गांधीजी ने कभी ऐसी चालों का समर्थन नहीं किया, क्योंकि गांधीजी के आन्दोलनों में साध्य जितना ही साधनों का महत्त्व है। एक इसी बात पर विचार करें तो कृष्ण दुनिया के पहले कम्यूनिस्ट कहे जायेंगे।

गांधीजी ने शान्ति का अहिंसक मार्ग अपनाया। विरोधियों से सम्पर्क रख उनमें परिवर्तन लाने में विश्वास, जिसके विरुद्ध लड़ना है, उसे भी सावधान करना, यह सत्याग्रह का तंत्र था। दुनिया की आज तक की लड़ाई की तकनीक से वह भिन्न था। गांधीजी के सिद्धान्तों का, दृष्टिकोण का, लड़ाई की नयी तकनीक का प्रभाव सामान्य लोगों के मन पर पड़ रहा था। वह प्रभाव ही लोगों को आन्दोलन की ओर खींचता था। तिलकजी की राजनीति प्रमुखतःमध्यम वर्ग की राजनीति थी। गांधीजी ने किसान, मजदूर, दलित और स्त्रियों के प्रश्नों पर विचार किया। उनके प्रश्न हाथ में लिये। सभी धर्मों के लोगों के सहयोग बिना आन्दोलन सफल नहीं हो सकता, यह गांधीजी समझ चुके थे। इसलिए उनका आन्दोलन और विचार ग्रामीण क्षेत्रों में फैलता गया। गांधीजी धर्म को मानते थे पर साथ ही सामाजिक सुधारों के भी हिमायती थे।

लोकमान्य तिलकजी की श्रेष्ठता कौन नकार सकता है; किन्तु तिलकजी की राजनीति की कुछ मर्यादाएँ थीं। सामाजिक सुधारों का विरोध करने के प्रसंग तिलकजी के जीवन में काफी दिखायी देते हैं। इसी कारण ब्राह्मण वर्ग प्रमुखत: तिलकजी का अनुयायी बना। उस समय का मध्यमवर्ग तिलकजी की राजनीति का मेरुदण्ड बना। गांधीजी के उदय के बाद उनकी राजनीति में अपने वर्ग का हित अलग पड़ रहा है यह दुःख इस वर्ग को था। यह दुःख इस वर्ग ने कभी खुलेआम प्रकट नहीं किया। पर वह गांधीजी की राजनीति से दूर ही रहा। मध्यमवर्ग गांधीजी का विरोधी बनता गया और बहुजन समाज गांधीजी की ओर आकृष्ट होता गया। जाति के नाम पर ब्राह्मणों को राजनीति में स्थान मिलने की सम्भावना नहीं थी। अतः उन्होंने धर्म के नाम से राजनीति चलायी। तिलकजी ने राष्ट्रजागृति का महान् कार्य किया। उसमें उन्होंने स्वधर्म, स्वभाषा और स्वसंस्कृति का उपयोग कर अभिमान जगाया। तिलकजी बहुजन समाज की आशा-आकांक्षाओं

से कभी एकरूप नहीं हो पाये। ऊँची जातियों का पक्ष लेकर वर्ण-व्यवस्था, रुढ़ियों और परम्पराओं का समर्थन करते रहे। इसके विपरीत गांधी खुद को सनातनी हिन्दू कहते थे, पर उन्होंने सामाजिक सुधारों का कभी विरोध नहीं किया। इसीलिए तिलकजी के अनुयायियों ने गांधीजी को शत्रु ही समझा। हिन्दुत्ववादियों ने ऊँची जातियों के हित का विचार मन में रखकर ही राजनीति चलायी, इसलिए वे संकुचित राजनीति में ही उलझे रहे। अन्य लोगों को उन्होंने गौण ही माना। अथणी में ११ नवम्बर, १९१७ को तिलकजी का दिया भाषण उदाहरण के तौर पर उल्लेखनीय है, "किसान विधानसभा में जाकर क्या हल चलायेंगे ? दर्जियों को वहाँ जाकर क्या सिलाई मशीन चलानी है और बनिया क्या तराजू पकड़ेंगे?" लोकमान्य तिलक के अन्तिम दिनों का यह भाषण है। क्या बहुजन समाज के सम्बन्ध में उनके ये विचार उस समाज को गौण समझनेवाले नहीं हैं? सामान्य ब्राह्मण भी विधानसभा में जाकर क्या दीप जलानेवाला था? परन्तु उनके सम्बन्ध में तिलकजी ने कभी इस तरह की भाषा का प्रयोग नहीं किया। २४ मार्च, १९१८ को मुम्बई में भारत की पहली अस्पृश्यता-निवारण परिषद् हुई। केसरी के सम्पादक के नाते नहीं, व्यक्तिगत रूप से मैं इस परिषद् में भाग लूँगा, ऐसा कहकर तिलकजी परिषद् के लिए आये थे। इस परिषद् का वर्णन कर्मवीर विठ्ठल रामजी शिंदे ने अपनी 'धर्म, जीवन आणि तत्त्वज्ञान' पुस्तक में किया है। परिषद् में सुबह भाषण देते हुए तिलकजी ने कहा, "पेशवा के काल में भी अस्पृश्यों का भरा हुआ पानी ब्राह्मणों ने पिया। अस्पृश्यता ईश्वर को मान्य होगी तो मैं उसे ईश्वर ही नहीं कहूँगा।" लोकमान्य के इस वाक्य पर इतनी तालियाँ बजीं और ऐसा लगा कि अब पाण्डाल ही टूट जायेगा। यह संस्मरण कर्मवीर विठ्ठल रामजी शिंदे ने लिखा है। अस्पृश्यता समाप्त करने के उद्देश्य से एक पत्रक तैयार कर उस पर तिलकजी के हस्ताक्षर लेने कर्मवीर शिंदे गये। उस प्रसंग का विवरण भी कर्मवीर शिंदे ने लिखा है। उन्होंने लिखा है, "जब हस्ताक्षर लेने मैं गया तब तिलकजी आनाकानी करने लगे। एक बार वे आगे भी बढ़े तो दादासाहब करंदीकर ने उन्हें रोक दिया। अन्त में अत्यन्त व्याकुल होकर तिलकजी ने अपने दोनों हाथ मेरे कन्धे पर रखे और विनती करने लगे कि मेरे इंग्लैण्ड से लौटने तक आप यह आग्रह छोड़ दें। परन्तु इस व्यवहार के कारण लोकमान्य के विरोध में जनमत तैयार हुआ। और वे १ दिसम्बर, १९१९ को इंग्लैण्ड से लौटे तब उन्हें बहुजन समाज का और

प्रगतिशील लोगों का विरोध सहना पड़ा। पुणे में लोकमान्य को मानपत्र देने में भी बड़ा विरोध हुआ।" बहुजन समाज के मन में तिलकजी के प्रति कैसी भावनाएँ निर्माण होती गयीं, यह स्पष्ट करने के लिए कर्मवीर शिंदे की बात मैंने यहाँ कही है। साथ ही सनातनी लोग तिलकपन्थी क्यों बनते गये यह स्पष्ट होने में भी इससे मदद मिलेगी। लोकमान्य तिलक की राजनीति से तथा उनके मार्ग से आजादी मिलेगी तो ब्राह्मणों का प्रभाव पुन: प्रस्थापित होगा, ऐसा बहुजन समाज को क्यों लगता था, यह भी समझ में आयेगा। गांधीजी के उदय से तिलकपंथीय राजनीति पिछड़ गयी। और गांधी-विचार तथा उनका आन्दोलन सामान्य लोगों तक पहुँचा तथा ब्राह्मण-वर्चस्व की आशा ही गांधी-विचार की वजह से उखड़ गयी। यही हिन्दुत्ववादियों के गांधी के प्रति क्षोभ का कारण था। प्रो॰ नलिनी पण्डित ने 'जातिवाद आणि वर्गवाद' पुस्तक में लोकमान्य तिलक के विषय में लिखा है, "तिलकजी जैसा महान् नेता भी मध्यमवर्ग की राजनीति की मर्यादाएँ आखिर तक लाँघ न सका। शहरों के सुशिक्षित लोग ही उस समय राजनीति में आगे थे।" इन लोगों के हितों में गांधीजी की राजनीति से वाधा आयी। नलिनी पण्डित आगे लिखती हैं, "तात्कालिक राजनैतिक प्रश्नों को अधिक महत्त्व देकर कट्टर राष्ट्रवादी पक्ष ने भी उच्च मध्यमवर्ग का ही समर्थन किया तथा बहुजन समाज की भावनाएँ एवं हितों की उपेक्षा की। 'सत्य-शोधक समाज' की समानता की माँग का विरोध कर बहुजन समाज के मन को दुख पहुँचाया। अस्पृश्यता समाप्त करने के पत्रक पर हस्ताक्षर न करके दलित नेताओं की नाराजगी तिलकजी ने मोल ली। साहूकारों का पक्ष लेकर किसानों की सहानुभूति वे गवाँ बैठे। इसलिए तिलकजी का कठोर व्यक्तित्व, उत्कट देशभक्ति, निर्भयता और निस्पृह वृत्ति तथा अतुलनीय स्वार्थ-त्याग के कारण सभी उनका असीम आदर करते हैं, उनके प्रति गौरव भाव है। फिर भी महाराष्ट्र के ब्राह्मणेतर बहुजन समाज के लोग उनके आन्दोलन में उत्साह से शरीक नहीं हुए।" यही भेद आगे चलकर तिलकपंथी तथा गांधीजी का नेतृत्व स्वीकार करनेवाले समाज में कायम रहा। तिलकजी का अनुयायी बना हुआ एक गुट सनातनी प्रवृत्ति का ही रहा। तथा गांधीजी का विरोध करने में ही खुद को धन्य समझने लगा।

गांधी-विचार से इस वर्ग के हितों को धक्का लगा। एक ओर यह धक्का और दूसरी ओर गांधी का आन्दोलन आँधी की तरह फैलने का सिलसिला। इनसे उत्पन्न द्वेष और ईर्ष्या के कारण

हिन्दुत्ववादी गांधीजी को पहले नम्बर का शत्रु मानने लगे। गांधीजी की सर्वसमावेशक राजनीति के कारण उनके नेतृत्व में शुरू हुए आजादी के आन्दोलन में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ सम्मिलित नहीं हुआ। गांधीजी के नेतृत्व में चलनेवाले आन्दोलन से अगर आजादी मिली तो वह अपनी विचार-प्रणाली के लिए घातक होगी और आजादी का आन्दोलन स्वयं चलानेवाला बड़ा नेता उनके पास नहीं था, इसलिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ आजादी के आन्दोलन में शरीक नहीं हुआ। आम लोगों के हित की राजनीति चलाने की विचारधारा हिन्दुत्ववादियों के पास नहीं थी। गांधी खुद को सनातनी हिन्दू कहते थे, इसलिए गांधी-विरोध की राजनीति चलाने के लिए और लोगों को अपनी ओर खींचने के लिए गांधी मुस्लिमों का तुष्टिकरण करते हैं, ऐसा प्रचार ये लोग करते थे। परन्तु मुस्लिमों का तुष्टिकरण करने से गांधीजी को कौन-सा लाभ मिलनेवाला है, यह बात वे स्पष्ट रूप से लोगों को समझा न सके। आम आदमी को सचाई, प्रामाणिकता के प्रति आस्था होती है। हिन्दुत्ववादियों में इसीका अभाव है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के बगैर अंग्रेजों को खदेड़ा नहीं जा सकता, यह बात तिलकजी की ही तरह गांधीजी भी मानते थे। इसलिए मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए मुसलमानों के कुछ दोषों को तिलकजी की ही तरह गांधीजी ने भी हेतुत: नजरअन्दाज किया। पर इसे मुस्लिमों का तुष्टिकरण नहीं कहा जा सकता। और अगर इसे मुस्लिमों का तुष्टिकरण कहना हो तो तिलकजी भी इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते।

महात्मा गांधीजी ने विभाजन का भरसक विरोध किया था और अब यह बात देश जान चुका है कि गांधीजी के कारण विभाजन नहीं हुआ। गांधीजी का राजनीति का काल बहुत पुराना नहीं, यह तो अभी कल-परसों का काल है। जिन लोगों ने गांधीजी को देखा है, उनकी राजनीति में साथ दिया है, उनके साथ रहे हैं ऐसे कुछ लोग अभी जीवित हैं। आँखों के सामने गांधीजी की राजनीति होने के बावजूद गांधीजी की ही वजह से देश का विभाजन हुआ, ऐसा मानना राजनीति के सम्बन्ध में अनभिज्ञता ही दर्शाता है। विभाजन गांधीजी के कारण नहीं हुआ। परन्तु भारत में मोहनदास करमचन्द गांधी नामक कोई आदमी है, यह जब भारत जानता भी नहीं था तब विभाजन के बीज बोये गये थे। १८८८ के आसपास लॉर्ड डफरिन ने विभाजन के बीज बोये। १९०९ में विभक्त मतदाता संघ की स्थापना हुई तब ये बीज अंकुरित हुए। गांधीजी ने विभाजन

का विषैला वृक्ष समूल नष्ट करने का प्रयास किया था, परन्तु वे सफल नहीं हुए। गांधीजी अकेले पड़ गये थे। विभाजन को रोकने की सामर्थ्य देश में केवल गांधीजी में थी। पर सामर्थ्य कम पड़ी। इसका कारण गांधी नहीं, सारा देश इसके लिए दोषी है। विभाजन का विरोध करने के लिए देश तत्पर है, ऐसा अगर गांधीजी देखते तो वे निश्चित ही विभाजन टाल सकते थे। गांधी अकेले ही अन्त तक विभाजन के विरोध में थे।

१. *महात्मा गांधी : दी लास्ट फेज* : खण्ड २, प्यारेलाल।

२. *भारतीय राष्ट्रवादाचा विकास : इतिहास संशोधक* : न. र. फाटक।

३. *भारतीय राष्ट्रवादाचा विकास* : न. र. फाटक।

विभाजन और गांधी

विभाजन के बीज अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति में हैं। उसी तरह मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा की धर्म और द्वेष की राजनीति में भी विशेष रूप से हैं। साथ ही साथ कांग्रेस के नेताओं के अहंभाव में तथा गलत समय पर गलत विधान करने में भी है। इसलिए विभाजन का पाप किसी एक के मत्थे मढ़ना अप्रामाणिकता होगी। १८५७ की क्रान्ति तथा उससे भी पहले १७६३ में दक्षिण में हुए किसानों और साहूकारों के आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम साथ मिलकर लड़े थे। तब हिन्दू-मुस्लिम में फूट डालकर अपने साम्राज्य की नींव पक्की करने की नीति अंग्रेजों ने अपनायी और लॉर्ड कर्जन ने १९०५ में बंगाल का विभाजन किया। हिन्दू और मुस्लिम दोनों ने एक होकर विभाजन का विरोध किया। फरवरी, १९०५ में लॉर्ड कर्जन ने भारत मंत्री को विभाजन की योजना भेजी और उसे मंजूरी मिलने तक पूरी गुप्तता रखी गयी। विभाजन को मंजूरी मिलते ही १९ जुलाई, १९०५ को उसकी घोषणा की गयी। और १६ अक्तूबर, १९०५ को कार्यान्वित की गयी। उस समय बंगाल में ८ करोड़ आबादी थी। उनमें से ४ करोड़ ३० लाख बंगाली और २ करोड़ १० लाख बिहारी तथा उड़ीसा के थे। राजकाज की सुविधा की दृष्टि से बंगाल जैसे बड़े प्रान्त का विभाजन कर बंगालीभाषियों का अलग प्रान्त बनाया जाता तो विरोध न होता। पर लॉर्ड कर्जन ने राजकाज की सुविधा का झूठा कारण सामने रखकर बंगाल का विभाजन इस तरह किया कि पूर्व बंगाल के मुस्लिमबहुल प्रदेश का एक प्रान्त बने और बचा हुआ हिस्सा भी हिन्दू बहुसंख्यक न हो पाये। हिन्दू-मुस्लिमों में फूट डालकर राज करने की नीयत से यह विभाजन किया गया था। लेकिन उस समय 'फूट डालो और राज करो' नीति कारगर न हो पायी। हिन्दू-मुस्लिम हाथ में हाथ डाले कन्धे से कन्धा मिलाकर अंग्रेजों के विरोध में खड़े हुए और विभाजन रद्द करवाया। हिन्दू-मुस्लिमों की एकता बंगाल का विभाजन रोक सकी, यह देखकर अंग्रेजों ने सोचा कि साम्राज्य बचाये रखने के लिए दोनों में फूट डालने की नीति गतिशील करना आवश्यक है।

बंगाल के विभाजन से पहले लॉर्ड डफरिन यह समझ गया था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता साम्राज्य के लिए खतरा है। १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई। उसके बाद के तीन वर्षों की कांग्रेस

की सदस्य संख्या का लॉर्ड डफरिन ने अध्ययन किया। उसने पाया कि कांग्रेस में हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से अधिक है। इसका आधार लेकर भारत में हिन्दू और मुस्लिम दो राष्ट्र हैं, ऐसा डफरिन ने द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त का पहला बीज १८८८ में बोया। राजनीति का प्रवाह बह रहा था। हिन्दू-मुस्लिमों के बीच फूट डालना अंग्रेजों ने शुरू किया था। उसी समय हिन्दू और मुसलमान दोनों में धर्म की राजनीति चलानेवाले छोटे-छोटे प्रवाह निर्माण हो रहे थे। पाकिस्तान के जनक समझे जानेवाले बैरिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना १९४० तक अखण्ड हिन्दुस्तान के समर्थक थे। शुरू में वे मुस्लिम लीग के सदस्य होने के लिए भी राजी नहीं थे। मुस्लिम लीग राजनैतिक दृष्टि से पिछड़ी हुई है, ऐसा उनका मत था। (स्वातंत्र्य चकवकीची विचारधारा : मधु लिमये)।

जिन्ना मुस्लिम जमात को भी राष्ट्रवाद की परिधि में ला रहे थे। १९१६ में लखनऊ में हुए मुस्लिम लीग के अधिवेशन में जिन्ना ने कहा था, "इस समय हम सबके एकजुट होने की एक प्रबल प्रक्रिया शुरू हुई है। अलग-अलग धर्म, वंश तथा जातियों से बना नया हिन्दुस्तान अपने उज्ज्वल भविष्य की ओर चल पड़ा है।" आगे जिन्ना ने कहा कि, "मुसलमानों को केवल अपने सामूहिक हित का और संकुचित स्वार्थ का विचार छोड़ देना चाहिए। ७ करोड़ मुसलमानों को निर्भय बनकर यह सिद्ध करना होगा कि काया, वाचा, कर्मणा हम राष्ट्रीय एकता के निर्माण में शामिल हैं।" (ॲन ॲम्बॅसिडर ऑफ यूनिटी : जिन्ना) ।

पहले मुस्लिम लीग का प्रतिनिधि कांग्रेस के अधिवेशन में और कांग्रेस का प्रतिनिधि मुस्लिम लीग के अधिवेशन में उपस्थित रहता था। १९१७ के कांग्रेस-अधिवेशन में बैरिस्टर जिन्ना उपस्थित थे। उस समय अपने भाषण में जिन्ना कहते हैं, "हिन्दू समाज बहुमत की शक्ति से विधानसभा में कोई कानून हम पर थोपेगा और जबरन हिन्दू सरकार की स्थापना करेगा, ऐसा समझना निरर्थक और निराधार है। हिन्दू श्रेष्ठतव का नारा केवल एक हौवा है। आप लोगों के शत्रु आपका मन विचलित करने के लिए यह डर दिखा रहे हैं। आजादी के आन्दोलन में हिन्दू और मुस्लिम परस्पर सहयोग न करें, यह लालसा इस तरह का हौवा खड़ा करने के पीछे है। इस देश पर हिन्दुओं का राज आप न चाहते हों तो उसी भावना और उसी आवाज में मैं कहूँगा कि इस देश पर मुसलमानों

का राज न हो और ब्रिटिशों का तो बिलकुल न हो। सत्ता का हस्तान्तरण होना जरूरी है। (ॲन ॲम्बेसिडर ऑफ यूनिटी : मुहम्मद अली जिन्ना, पृष्ठ १६० से १६६)।

१९४० तक बैरिस्टर जिन्ना अपने इसी मत पर कायम थे। १९४० में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में पाकिस्तान की माँग करनेवाला प्रस्ताव मंजूर हुआ। जिन्ना की इस भूमिका में परिवर्तन का एक कारण यह बताया जाता है कि भारतीय जनता का नेतृत्व करने की जिन्ना की आकांक्षा थी। परन्तु गांधीजी के उदय के बाद नेतृत्व गांधी की ओर मुड़ गया। सामान्य लोगों में धार्मिक भावना जगाकर महात्मा गांधी ने अपना नेतृत्व प्रस्थापित किया, ऐसी जिन्ना की धारणा हुई। इस निराशा से जिन्ना ने ऐसा सोचा कि सारे राष्ट्रीय आन्दोलन का नेता व कम-से-कम गांधीजी की ही श्रेणी का मुस्लिम समाज का नेता मैं बनूँ। जिन्ना बहुत स्वाभिमानी और महत्त्वाकांक्षी थे। इसलिए गांधीजी का उदय और उनके नेतृत्व को बढ़ावा मिलना उन्हें अखरता रहा। जिन्ना की भूमिका बदलने का यह भी एक प्रमुख कारण है।

स्वातंत्र्यवीर वि॰ दा॰ सावरकर ने १८५७ के स्वातंत्रता संग्राम के विषय में अपनी पहली अंग्रेजी पुस्तक में लिखा है कि 'मुसलमान हिन्दुओं की ही तरह प्रखर राष्ट्रवादी हैं।' अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति का प्रभाव मुस्लिम लीग के नेताओं पर पड़ा, उसी तरह हिन्दुत्ववादियों पर भी पड़ा। कल जिन्हें राष्ट्रवादी कहा जाता था, उन्हें राष्ट्रद्रोही कहने में ही राष्ट्रभक्ति समझी जाने लगी। इसीलिए १९३७ के अहमदाबाद के हिन्दू महासभा के अधिवेशन के अध्यक्ष के नाते भाषण देते हुए सावरकर कहते हैं, "आज हिन्दुस्तान एक दिल और एकात्म राष्ट्र है, ऐसा मानने की गलती हम न करें। बल्कि इस देश में मुख्यतया हिन्दू और मुस्लिम ये दो राष्ट्र हैं, ऐसा ही मानना होगा। (महाराष्ट्र हिन्दू महासभे च्या कार्याचा इतिहास-शंकर रामचन्द्र दाते)। शंकर रामचन्द्र दाते अर्थात् मामाराव दाते जो सावरकर के कट्टर भक्त और अनुयायी थे। प्रस्तुत वाक्य उन्हींके लिखे 'हिन्दू महासभे च्या कार्याचा इतिहास' पुस्तक से लिये गये हैं।

भारत के विभाजन के लिए महात्मा गांधी जिम्मेदार हैं। उन्हीं के कारण विभाजन हुआ, ऐसा प्रचार किया जाता है। महात्मा गांधी की राजनीति को मुस्लिम तुष्टिकरण की राजनीति के रूप में ही हमेशा सामने रखा गया, जिससे गांधी ही विभाजन के लिए जिम्मेदार हैं, ऐसा आम

जनता में भ्रम फैला। इसी कारण विभाजन सम्बन्धी गांधीजी की भूमिका क्या थी, इसका विस्तार से विश्लेषण आवश्यक है। हिन्दू धर्मवादी, मुस्लिम धर्मवादी और जिन्ना में काफी समानताएँ नजर आती हैं। विभाजन के सन्दर्भ में गांधीजी की भूमिका का विचार करने से पहले इन दोनों धर्मांध विचारधाराओं की समानता का मामूली-सा लगनेवाला उदाहरण विषयान्तर के बावजूद सामने रखना आवश्यक है। गांधीजी महात्मा कहे जाते थे, पर मुस्लिम लीग के नेता बैरिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना ने गांधीजी को महात्मा कहना अस्वीकार किया। विभाजन के सम्बन्ध में गांधीजी से चर्चा करने के लिए जब जिन्ना राजी हुए तब ५ अगस्त, १९४४ को अखबारों को दिये वक्तव्य में जिन्ना ने गांधीजी को 'महात्मा' कहा। सुविधाजनक हो तभी जिन्ना गांधीजी को महात्मा कहते थे। हिन्दुत्ववादियों की नीति भी वही है। १९९१ में उत्तर के चार राज्यों में भारतीय जनता पार्टी के हाथों में सत्ता आयी तब भाजपा ने गांधीजी को महात्मा एवं राष्ट्रपिता मानने से इनकार किया। भारतीय जनता पार्टी की स्थापना के समय भाजपा ने गांधीजी का गांधीवाद स्वीकार किया था। यह धर्मवादी राजनीति का अवसरवादी तरीका है।

विभाजन टालने के लिए गांधीजी ने वायसराय को एक ९ मुद्दोंवाली योजना प्रस्तुत की थी। वह इस प्रकार है :

(१) मंत्रिमण्डल बनाने का विकल्प जिन्ना को दिया जाय।

(२) मंत्रियों को चुनने का पूरा अधिकार जिन्ना को हो। फिर वे मंत्रिमण्डल में सब मुसलमान मंत्री समाविष्ट करें, या मुसलमानों के सिवाय मंत्रिमण्डल बनावें या सब जाति-धर्मों को मंत्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व दें।

(३) सब भारतीयों के हितों के कार्यक्रम में, अगर जिन्ना चाहें तो, कांग्रेस सभी प्रकार से सहयोग करने की हामी भरेगी।

(४) किन बातों में भारतीयों का हित है और किन बातों में हित नहीं है यह व्यक्तिगत तौर पर लॉर्ड माउण्ट बेटन एक पंच की तरह तय करेंगे।

(५) पूरे भारत में शान्ति रहे, इसके लिए जिन्ना स्वयं लीग के नाम से या जिन्ना जिस पक्ष की सरकार बनायेंगे, उस पक्ष के नाम से प्रयत्न करेंगे।

(६) इस सीमा में रहकर पाकिस्तान विषयक अपनी अवधारणा जिन्ना सत्ता-हस्तान्तरण से पहले सामने रखेंगे।

(७) नेशनल गॉर्ड या खानगी सेना नहीं रहेगी।

(८) विधानसभा में कांग्रेस का बहुमत हो तब भी इस बहुमत का उपयोग कांग्रेस मुस्लिम लीग के विरोध में नहीं करेगी। सब भारतीयों के हित और कल्याण की जो योजनाएँ लीग की सरकार बनायेगी, उन सभी योजनाओं और कार्यक्रमों को कांग्रेस मंजूरी देगी। |

(९) अगर जिन्ना इस योजना को स्वीकार न करें तो यही योजना कांग्रेस के सामने रखी जायेगी।

गांधीजी की यह योजना वाइसराय ने पसन्द की थी। गांधीजी इस योजना के सम्बन्ध में सेना प्रमुख लॉर्ड इस्मे से चर्चा करें, जिससे लॉर्ड इस्मे गांधीजी की योजना को तकनीकी दृष्टि से आवश्यक रूप दें, ऐसा सुझाव वाइसराय ने दिया था। विभाजन टालने के लिए गांधीजी ने किस सिरे तक जाकर जिन्ना के सामने विकल्प रखा था, इसकी कल्पना उनकी उक्त ९ मुद्दोंवाली योजन से की जा सकती है। गांधीजी ने राजाजी की योजना को मान्यता दी थी। उस योजना में विभाजन के तत्त्व को पूर्णतया मान्यता नहीं दी गयी थी। उसमें काफी अगर-मगर थे। अत: पहले राजाजी की योजना को समझना आवश्यक है :

(१) आजाद भारत के संविधान के विषय में आगे दी गयी शर्तें मान्य होने पर मुस्लिम लीग हिन्दुस्तान की आजादी को मान्यता देगी और संक्रमणकाल में अन्तरिम सरकार की स्थापना में कांग्रेस से सहयोग करेगी।

(२) युद्ध समाप्त होने पर वायव्य और ईशान्य भारत के एक-दूसरे से सटे हुए मुस्लिम बहुल जिलों की पुनर्रचना के लिए एक समिति नियुक्त की जायेगी। पुनर्रचित जिलों में प्रौढ़ मतदान द्वारा या अन्य किसी व्यावहारिक तरीके से सर्वसम्मतिपूर्वक हिन्दुस्तान से अलग होने के विषय में निर्णय लिया जायेगा। बहुमत से स्वतंत्र सार्वभौम राज्य-स्थापना का निर्णय हुआ

तो किस राज्य में शामिल होना है, इसका निर्णय लेने का अधिकार सीमावर्ती जिलों को रहेगा।

(३) सार्वमत लेने से पहले सभी पक्ष अपनी भूमिकाएँ स्पष्ट कर सकेंगे।

(४) अलग होने का तय हुआ तो सुरक्षा, व्यापार, आवागमन और अन्य आवश्यक मुद्दों पर दोनों राष्ट्रों में करार किये जायेंगे।

(५) जनसंख्या की अदला-बदली वहाँ के लोगों पर निर्भर रहेगी।

(६) अंग्रेजी शासन पूर्ण स्वाधीनता देनेवाला हो तथा हिन्दुस्तान के शासन की जिम्मेदारी संक्रमित करनेवाला हो तो ही ये शर्तें बन्धनकारक रहेंगी।

इस योजना के सम्बन्ध में १७ अप्रैल को राजाजी ने जिन्ना को चिट्ठी लिखी और गांधीजी की योजना को स्वीकृति है, यह तार द्वारा ३० जून को सूचित किया। योजना स्वीकृत नहीं है, यह २ जुलाई को तार द्वारा जिन्ना ने राजाजी को सूचित किया। राजाजी की योजना के तहत आज ही को तरह विभाजन होनेवाला होता तो योजना अस्वीकृत करने का कोई कारण ही न था। मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी के समक्ष जिन्ना ने ३० जुलाई को राजाजी की योजना रखी। उस समय जिन्ना ने कहा कि, "गांधीजी असंदिग्ध शब्दों में पाकिस्तान की माँग स्वीकार करें और पाकिस्तान से हाथ मिलायें। इससे हिन्दी लोगों की आजादी समीप आयेगी। हिन्दू-मुस्लिमों के एकमत हुए बगैर आजादी नहीं मिलेगी। राजाजी की योजना का अर्थ है लँगड़ा-लूला टुकड़ों का पाकिस्तान। गांधी ऐसा ही पाकिस्तान देना चाहते हैं। यह योजना सामने रखकर राजाजी और गांधीजी घोड़े के आगे गाड़ी जोत रहे हैं। अंग्रेज अगर सत्ता छोड़े तभी यह योजना अमल में आ सकती है। इसलिए मुस्लिम लीग को यह योजना मंजूर नहीं।"[४] तात्पर्य यह कि गांधीजी द्वारा मान्य राजाजी की योजना जिन्ना ने फेंक दी। अत: हिन्दुत्ववादियों की यह बात निराधार हो जाती है कि गांधीजी ने राजाजी की योजना को मान्यता दी, इसलिए विभाजन हुआ। स्वयं गांधीजी ने जो ९ मुद्दोंवाली योजना रखी थी वह भी जिन्ना को मंजूर न थी। गांधीजी को विभाजन मंजूर न था यह बात तो ये दो घटनाएँ सिद्ध करती ही हैं। साथ ही विभाजन टालने के लिए गांधीजी ने

जिन्ना के सामने विविध विकल्प रखे थे, यह बात भी स्पष्ट होती है। कुछ भाग भारत से अलग कर पाकिस्तान बनाने के सपने क्यों देखते हैं? पूरे भारत को 'पाकिस्तान' मानकर उसका कारोबार सम्हालिए। आप प्रधानमंत्री बनिए। पूरा मंत्रिमण्डल मुस्लिम लीग का बनाइए। आपकी इच्छानुसार जैसा चाहें वैसा मंत्रिमण्डल बनाइए, पर पाकिस्तान की माँग छोड़ दीजिए। ऐसी विनती गांधीजी जिन्ना से करते थे। मुस्लिमों को खुश करने के लिए वे यह विनती नहीं कर रहे थे, अपितु हर कीमत पर वे भारत की अखण्डता कायम रखना चाहते थे। यही बात यहाँ स्पष्ट होती है। परन्तु इन बातों पर विचार की जिम्मेदारी किये बगैर ही हिन्दुत्ववादी विभाजन की जिम्मेदारी गांधीजी के मत्थे मढ़ते हैं। जिन्ना के साथ हुई बातचीत का वृत्तान्त सुविस्तृत रूप में गांधीजी ने राजाजी को बताया। गांधीजी ने राजाजी से कहा, "आपकी योजना का जिन्ना ने अनादर ही किया है। और आप व्यर्थ टाँग अड़ा रहे हैं, ऐसा माना। मैंने जिन्ना से कहा कि राजाजी की योजना को मेरी मंजूरी है। आप भी उसे मंजूरी देकर पाकिस्तान यह नाम दीजिए।" लाहौर के प्रस्ताव के विषय में (पाकिस्तान की माँग का प्रस्ताव) जिन्ना मुझसे बात करने लगे। तब मैंने कहा, "हम राजाजी के प्रस्ताव पर बात करेंगे। आप मुझे उसकी त्रुटियाँ दिखा दीजिए। परन्तु जिन्ना कुछ भी मानने के लिए राजी न थे।" चर्चा के प्रारम्भिक भाग के सम्बन्ध में राजाजी को इस तरह बताने के बाद चर्चा का अगला अंश बताते हुए गांधीजी कहते हैं, "उन्हें तुरन्त पाकिस्तान चाहिए, आजादी के बाद नहीं। (अगर विभाजन ही होना है तो वह कैसे किया जाय, यह भारतीय नेता और जिन्ना आपस में चर्चा से तय करेंगे। राजाजी का प्रस्ताव इस बात का विरोध करता था कि भारत के विभाजन के बाद अंग्रेज सत्ता छोड़ेंगे)। भारत और पाकिस्तान को एक ही साथ आजादी मिले, ऐसा जिन्ना का आग्रह था। हम एक मत से प्रस्ताव बनाकर उसे अंग्रेजों के सामने रखेंगे। हमारा प्रस्ताव वे मंजूर करें, ऐसा उनसे कहेंगे।" इस तरह गांधीजी जिन्ना से कहते थे। "अंग्रेज विभाजन की योजना बनावें, विभाजन करें। वह विभाजन हम पर बन्धनकारक रहेगा। ऐसा मैं अंग्रेजों से कभी नहीं कहूँगा।" यह बात आग्रहपूर्वक गांधीजी ने जिन्ना से कही थी। पर जिन्ना इसी जिद पर अड़े रहे कि हम हमारा पाकिस्तान अलग चाहते हैं। "मुस्लिम लीग मुस्लिमों का बड़ा संगठन है। आप उसके नेता हैं यह मुझे मंजूर है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सभी

मुसलमान पाकिस्तान चाहते हैं।" ऐसा जवाब मैंने जिन्ना को दिया। "आप जिस हिस्से का पाकिस्तान बनाना चाहते हैं वहाँ मतदान कराकर कितने लोग पाकिस्तान चाहते हैं यह हम तय करेंगे। ऐसा भी मैंने जिन्ना को सुझाया। लेकिन इसके लिए भी जिन्ना राजी न हुए।" जिन्ना के साथ हुई पहले दिन की चर्चा के विषय में गांधीजी ने राजाजी को यह जानकारी दी। उससे यही स्पष्ट होता है कि गांधीजी को विभाजन मंजूर नहीं था। फिर भी गत कुछ वर्षों से हिन्दुत्ववादी इस प्रचार में लगे हैं कि गांधीजी के कारण विभाजन हुआ। स्कूल, कॉलेजों में सिखाये जानेवाले इतिहास एवं इतिहास-विषयक अज्ञान के कारण मुस्लिमों के प्रति द्वेष का विष जनता के मन में काफी फैल गया है। हिन्दुत्ववादियों की धारणा है कि गांधीजी की विचारधारा को रोकने के लिए इसी तरह का प्रचार आवश्यक है। उससे भले ही सत्य की मृत्यु क्यों न हो जाय। इसीलिए गांधीजी विभाजन के लिए जिम्मेदार हैं, ऐसा प्रचार वे करते हैं। देश की एकता बनाये रखने की दृष्टि से गांधी और विवेकानन्द के विचार एक जैसे हैं। विवेकानन्द कहते हैं, "विभिन्न जातियाँ आपस में झगड़ती रहें यह ठीक नहीं। उससे कौन-सा लाभ होगा? ऐसे झगड़ों से हम और बँटते जायेंगे, अधिक दुर्बल हो जायेंगे। हमारी अधिक अवनति होगी। जनम के कारण मिलनेवाले विशेषाधिकार के दिन अब बीत गये। भारत के अंग्रेजी शासन का यह वरदान ही मानना चाहिए। जातिगत अधिकारों को नष्ट करने का श्रेय मुस्लिम शासकों को भी देना होगा। उनका शासन पूर्णतया बुरा न था। कोई भी बात पूर्णतया बुरी या पूर्णतया अच्छी नहीं होती। **भारत पर मुस्लिमों की विजय गरीबों और दलितों की उन्नति का कारण बना। इसीलिए हममें से २० प्रतिशत लोग मुसलमान बने। यह केवल तलवार से नहीं हुआ। तलवार और बन्दूकों से यह हुआ, ऐसा समझना निरा पागलपन होगा।"**[५] गांधी मुस्लिमों का पक्ष लेते हैं ऐसा कहें तो मुस्लिमों के विषय में ये और इसी तरह के अन्य विश्लेषण करनेवाले विवेकानन्द के विषय में क्या कहा जाय?

महात्मा गांधी मुस्लिमों का तुष्टिकरण करते हैं ऐसा हिन्दुत्ववादियों का दावा है। इसके समर्थन में वे कहते हैं कि गांधीजी तो जिन्ना को प्रधानमंत्री भी बनाना चाहते थे। मुस्लिम लीग को मंत्रिमण्डल बनाने के लिए कहते थे। पर लोकमान्य तिलक की भूमिका इससे भिन्न न थी। तिलकजी की ही भूमिका गांधीजी सामने रख रहे थे, ऐसा कहा जा सकता है। लखनऊ समझौते

के समय किया हुआ भाषण उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है। उस भाषण में तिलकजी ने कहा था, "हमें विदेशी शासन से लड़ना है। इस लड़ाई में सफलता प्राप्त करनी हो तो आपस के झगड़े किसी तरह निपटाने होंगे। जाति-धर्म के सब मतभेद मिटाकर हमें एक स्वर में माँग करनी होगी। ऐसा करते हुए मुस्लिमों को अधिक अधिकार मिले या अंग्रेज मुस्लिमों के हाथों या भारत के किसी भी जाति को सारा राज्य दे दें तब भी हमें दुविधा में न पड़ना चाहिए। भारत से ब्रिटिश सत्ता नष्ट हो और भारत आजाद हो, इस दृष्टि से हमने यह समझोता (लखनऊ समझौता) किया है।"

हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर महात्मा गांधी ही नहीं थे। न्या॰ महादेव गोविन्द रानडे भी यही बात कहते थे। उन्होंने कहा था कि, "हिन्दू-मुस्लिम एकता के बगैर इस विशाल देश की प्रगति असम्भव है, यह सीख हमें इतिहास से लेनी होगी। अकबर और उसके सलाहकारों के दिखाये मार्ग पर चलने का नियम हमें अपनाना होगा। और औरंगजेब द्वारा की हुई गलतियों को निश्चयपूर्वक टालना होगा।" गांधीजी का राजनैतिक क्षेत्र में उदय होने से कई वर्ष पहले यह बात न्या॰ रानडे ने कही थी।

जाति-द्वेष का विष फैलाने का प्रयास आजादी के पहले से चल रहा है। उसकी परिणति विभाजन के रूप में हुई। डॉ॰ राममनोहर लोहिया कहते हैं, "हिन्दुत्ववादियों की कट्टरता भी विभाजन का एक कारण थी। विभाजन के पश्चात् उसके विरोध में आवाज उठाना यह बात खून करने के बाद खूनी मनुष्य का यह कहना कि मुझे खून मंजूर नहीं है, इस तरह की बात हुई। एक बात साफ समझ लेना जरूरी है। अखण्ड भारत की बार-बार गुहार करनेवाला जनसंघ, (अब भाजपा) और हिन्दुत्व का भ्रष्ट पक्ष लेनेवाले उससे भी पहले के हिन्दुत्ववादी दोनों ने विभाजन के सम्बन्ध में अंग्रेजों को और मुस्लिम लीग की सहायता ही की है। मुस्लिम हिन्दुओं के साथ मिल-जुलकर रहें इस दिशा में इन लोगों ने किसी तरह के प्रयत्न नहीं किये।"[६] हिन्दुत्ववादी अखण्ड हिन्दुस्तान की लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। परन्तु विभाजन के विरोध में उन्होंने क्या किया? अपनी शक्ति के अनुसार उन लोगों ने कोई आन्दोलन क्यों नहीं चलाया? विभाजन के विरोध में बोलने का राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को कोई नैतिक अधिकार ही नहीं है। संघ ने आजादी के आन्दोलन में

कोई हिस्सा ही नहीं लिया था। फिर विभाजन के विरोध में आन्दोलन करने का सवाल ही नहीं उठता। आजादी के आन्दोलन में जिन संगठनों ने अपना सहयोग नहीं दिया उनके नेताओं को आजादी और विभाजन के विषय में बोलने का कोई नैतिक अधिकार ही नहीं हो सकता। विभाजन के बावजूद भारत को आजादी तो मिली। पर विभाजन दुर्भाग्यपूर्ण है। विभाजन अंग्रेज, मुस्लिम लीग और हिन्दुत्ववादियों की राजनीति का फल है। आजादी का सूरज निकल रहा था तब ये लोग मातम मना रहे थे। ऐसे लोगों को इस देश के विषय में बोलने का कोई अधिकार ही नहीं है। गांधीजी को विभाजन के लिए दोषी मानने का भी उन्हें क्या अधिकार हो सकता है? जो संगठन आजादी के आन्दोलन में शामिल थे, और जिन संगठनों ने विभाजन के विरोध में आन्दोलन किया हो उन्हें ही गांधीजी को दोष देने का अधिकार है। वैसे तो १९४० तक जिन्ना भी अखण्ड हिन्दुस्तानवादी थे। फिर वे पाकिस्तानवादी क्यों बने? इस विषय में आत्मसंशोधन आवश्यक है। प्रान्तों की पुनर्रचना कर मुस्लिम बहुसंख्यावाले एक-दो राज्य बनाना आवश्यक है, यह बात १९३७ के चुनावों के बाद सर मुहम्मद इकबाल पत्र लिखकर जिन्ना को कहते रहे। पर जिन्ना ने जल्दबाजी में कोई कदम नहीं उठाया। १९३७ के चुनाव के बाद कांग्रेस अगर मुस्लिम लीग के साथ संयुक्त मंत्रिमण्डल बनाती तो जिन्ना का प्रवास पाकिस्तान तक न हो पाता। १९३० में इकबाल ने पाकिस्तान की कल्पना सामने रखी तब जिन्ना के मन में सन्देह था। इकबाल की पाकिस्तान की कल्पना धर्म की बुनियाद पर खड़ी थी।

इस्लाम और शरीअत की रक्षा के लिए इकबाल पाकिस्तान चाहते थे। इसी दृष्टिकोण से वे द्विराष्ट्रवाद का समर्थन करते थे। परन्तु ११ अगस्त, १९४७ के दिन पाकिस्तान की संविधान सभा में भाषण करते हुए जिन्ना ने इकबाल की कल्पना को स्वीकार नहीं किया। भाषण में इस्लाम शब्द का जिक्र भी नहीं है। इस्लामी जीवन के पुनरुत्थान का जिक्र भी जिन्ना ने नहीं किया। उन्होंने सदस्यों से अपील की कि, "वे भूतकाल भूल जायँ और राष्ट्र-निर्माण में धर्मभेद के रोड़े न अटकायें तथा व्यक्तिगत धर्म सुरक्षित रखते हुए भी समान नागरिकता का विकास करें।"[७] यह मैंने इसीलिए लिखा है ताकि हम समझें कि पाकिस्तान निर्माण के बाद भी जिन्ना के क्या विचार थे, और १९४० से पहले वे अखण्ड हिन्दुस्तानवादी ही थे। उनकी भूमिका में बदलाव क्यों आया

इसकी खोज आज भी उपयुक्त होगी। इक्कीसवीं सदी की दहलीज़ पर भारत में आज जो वातावरण है उसे बदलने में यह सिंहावलोकन उपयोगी सिद्ध होगा।

वास्तव में पाकिस्तान के विषय में भी जिन्ना की कोई स्पष्ट कल्पना नहीं थी। जिन्ना से चर्चा करते हुए गांधीजी ने पाकिस्तान की कल्पना स्पष्ट करने के विषय में जिन्ना से कहा तब जिन्ना कोई स्पष्ट कल्पना सामने नहीं रख सके। वे बार-बार गांधीजी से यही आग्रह करते रहे कि गांधीजी पाकिस्तान की अवधारणा को स्वीकार करें। "पाकिस्तान के विषय में मुस्लिम लीग का प्रचार नकारात्मक ही था। मुस्लिम जनता या पाकिस्तान की माँग करनेवाले लोगों के सामने भी पाकिस्तान की स्पष्ट तसवीर नहीं रखी गयी थी। भौगोलिक दृष्टि से पाकिस्तान का स्वरूप क्या होगा, यह कभी स्पष्ट नहीं किया गया। पाकिस्तान का स्वरूप अगर स्पष्ट किया जाता तो लाखों मुसलमानों को भी उसमें कोई रुचि न रहती। इसीलिए पाकिस्तान का स्वरूप कैसा होगा, यह विभाजन से पहले स्पष्ट नहीं किया गया।"[८] १९४० में मुस्लिम लीग ने लाहौर के अधिवेशन में पाकिस्तान का प्रस्ताव पारित किया। उसके बाद १६ अप्रैल, १९४१ को डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद ने जिन्ना को एक निवेदन भेजकर सुझाया कि, "आपकी पाकिस्तान की कल्पना और योजना स्पष्ट करें ताकि कांग्रेस उस पर विचार कर सके"। तब जिन्ना ने जाहिर किया कि पहले सिद्धान्ततः पाकिस्तान को स्वीकृति दीजिए। जिन्ना सुलह तो करना चाहते हैं, पर सुलह के विषय में उनके मन में कोई स्पष्टता नहीं है। इस तरह का मत जिन्ना से चर्चा करते हुए गांधीजी का बना था। राजाजी का प्रस्ताव सुलह की दृष्टि से ठीक है, ऐसा गांधीजी मानते थे। अपना यह मत उन्होंने राजाजी को भी बताया था। पहले अंग्रेज इस देश से चले जायँ। अंग्रेजों के गये बगैर इस देश में शान्ति प्रस्थापित नहीं होगी। अंग्रेजों के चले जाने के बाद हम हमारा निपटारा कर लेंगे, यह गांधीजी चाहते थे। और अखण्ड भारत की आजादी को मुस्लिम लीग मान्यता दे, यह राजाजी के प्रस्ताव की बुनियाद थी। गांधीजी भी यही कहते थे। विभाजन करना हो तो हम करेंगे, अंग्रेज नहीं यह गांधीजी का मत था। परन्तु अन्तरिम सरकार के समय और १९३७ के संयुक्त मंत्रिमण्डल के सन्दर्भ में कांग्रेस की भूमिका के कारण महत्त्वाकांक्षी जिन्ना का कांग्रेस से विश्वास उठ गया। घटनाएँ कुछ इस तरह से घटीं। ६ जुलाई, १९४६ को कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में अन्तरिम

सरकार के विषय का कार्यकारिणी का प्रस्ताव मंजूर हुआ। अन्तरिम सरकार की कल्पना कार्यकारिणी ने मंजूर की थी। परन्तु १० जुलाई, १९४६ को अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू ने मुम्बई में पत्रकार परिषद् में कहा कि "राष्ट्रीय परिषद् में कांग्रेस का प्रवेश किसी करार से बँधा हुआ नहीं रहेगा। प्रसंगानुरूप नीतिनिर्धारण की आजादी कांग्रेस को रहेगी। कांग्रेस ने समिति में शरीक होना स्वीकार किया है। कैबिनेट मिशन योजना में अपनी इच्छानुसार कोई भी परिवर्तन करने का उसे अधिकार रहेगा।" इन बातों से जिन्ना झुँहला गये। कैबिनेट मिशन योजना को कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने मंजूरी दी थी। योजना में परिवर्तन करने का अधिकार अकेले कांग्रेस को नहीं था। ऐसी हालत में नेहरूजी की पत्रकार परिषद् महँगी पड़ी। जिन्ना और अधिक दुगग्रही बन गये। नेहरूजी के उक्त कथन के सम्बन्ध में कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष मौलाना आजाद ने 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' पुस्तक में लिखा है, "जवाहरलालजी का कथन गलत था कि योजना में कांग्रेस अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर सकती है। वस्तुत: संविधान का स्वरूप फेडरल होगा, यह तत्त्व हमने स्वीकार किया था। हमने (कांग्रेस ने) यह भी स्वीकार किया था कि तीन विभाग अनिवार्यत: केन्द्र-शासन के अधीन रहेंगे और अन्य विभाग प्रान्तों के अधीन रहेंगे। प्रान्त ए, बी और सी विभागों में बाँटे जायेंगे, यह भी तय हुआ था। अन्य पक्षों की अनुमति के बगैर कांग्रेस किसी बात में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी।" जवाहरलाल का उपर्युक्त वक्तव्य जिन्ना को गाज गिरने जैसा लगा। नेहरू के कथन के बाद सब बातों पर पुनर्विचार आवश्यक है, ऐसा जिन्ना ने तुरन्त जाहिर किया। और लियाकतअली खान को लीग कौंसिल की बैठक बुलाने के लिए कहा। जिन्ना ने एक निवेदन ही पारित कर दिया। "कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना को स्वीकृति दी है। और हिन्दुस्तान का आगामी संविधान उसीके आधार पर बनेगा। ऐसा मानकर लीग के अध्यक्ष ने बहुमत की शक्ति से कैबिनेट मिशन योजना में मनमाना परिवर्तन करने का मानस स्पष्ट किया है। इसका अर्थ यह होता है कि अल्पमतवालों का भविष्य पूर्णतया बहुमतवालों की मर्जी पर निर्भर रहेगा।" कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना अस्वीकृत की है, ऐसा अर्थ जिन्ना ने नेहरूजी के वक्तव्य का लगाया। और लीग ने योजना मंजूर की है, अत: मंत्रिमण्डल की स्थापना के लिए वाइसराय लीग को निमंत्रित करें, ऐसी सूचना जिन्ना ने दी। १७ जुलाई को मुम्बई में मुस्लिम लीग कौंसिल की सभा

हुई। उसमें भाषण करते हुए जिन्ना ने कहा, “पाकिस्तान की माँग फिर से करने के सिवाय कोई रास्ता अब लीग के सामने नहीं है।” तीन दिन की चर्चा के पश्चात् लीग द्वारा पहले मंजूर की हुई कैबिनेट मिशन योजना अस्वीकार करनेवाला प्रस्ताव पारित किया। पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए सीधी कार्रवाई करने का निर्णय भी जिन्ना ने जाहिर किया।

इन बातों को देखें तो पंचगनी में गांधीजी ने जयप्रकाश नारायण से ऐसा क्यों कहा कि 'अखण्ड भारत का मेरा सपना जवाहरलाल ने मिट्टी में मिला दिया।‘ यह स्पष्ट हो जाता है। अन्तरिम सरकार के समय पहले वल्लभभाई पटेल ने विभाजन को मंजूरी दी थी। बाद में नेहरू ने मंजूरी दी। ऐसा होते हुए भी १० जुलाई की पत्रकार परिषद् में नेहरूजी ने जो वक्तव्य दिया था उसीके कारण गांधीजी ऐसा कहते हैं कि ‘जवाहरलाल ने मेरा सपना मिट्टी में मिला दिया।' संविधान सभा के एक सदस्य मीनू मसानी ने १४ नवम्बर, १९८८ को प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया को एक साक्षात्कार दिया। उसमें वे कहते हैं कि नेहरूजी के वक्तव्य के कारण देश का विभाजन हुआ, यह मौलाना आजाद का कहना सौ प्रतिशत सही है। गांधीजी ने जयप्रकाश से जो कहा वह सही है। और उसका जिक्र मैंने 'ब्लिस, वॉज इट इन दैट डॉन' पुस्तक में किया है। यह स्मरण भी मीनू मसानी ने दिलाया। मौलाना आजाद का कथन नेहरूजी की मृत्यु के बाद प्रकाश में आया। अत: उस पर नेहरूजी की प्रतिक्रिया क्या होती कभी पता नहीं चलेगी। नेहरूजी ने वह वक्तव्य किस सन्दर्भ में दिया था? क्यों दिया था? कया उसके परिणामों का विचार उन्होंने किया था? ये सब प्रश्न अब अनुत्तरित ही रहेंगे। परन्तु नेहरूजी के वक्तव्य के कारण कांग्रेस कार्यकारिणी के सामने एक जटिल समस्या खड़ी हो गयी थी। कांग्रेस महासमिति का प्रस्ताव ही कांग्रेस का अधिकृत मत है, ऐसा कहें तो पक्षाध्यक्ष की प्रतिष्ठा को धक्का लगता है। और अगर कुछ न कहें तो नेहरूजी के वक्तव्य को कांग्रेस की मंजूरी है, ऐसा अर्थ होता है। ऐसी विचित्र उलझन में कांग्रेस थी। अध्यक्ष का वक्तव्य नामंजूर करें तो देश का नुकसान होता है। इसलिए आखिर कार्यकारिणी ने ऐसा प्रस्ताव किया, “मुस्लिम लीग कौंसिल ने अपना पहला निर्णय बदलकर संविधान सभा के साथ सहयोग न करने का प्रस्ताव पारित किया, यह देख कार्यकारिणी को दुख होता है। विदेशी सत्ता का त्याग कर स्वावलम्बन की नीति शीघ्रातिशीघ्र अपनाने का यह समय है। ऐसे समय में अत्यन्त

कठिन और व्यापक राजनैतिक और आर्थिक प्रश्न हमारे सामने हैं। उन्हें हल करने के लिए देश की जनता तथा उसके प्रतिनिधियों का सहयोग आवश्यक है। ऐसे सहयोग से ही संक्रमण सरल और हितकर बनेगा। कांग्रेस और लीग की वृत्ति और उद्देश्यों में काफी भेद है यह कार्यकारिणी जानती है। फिर भी देशहित को देखते हुए तथा हिन्दी जनता की आजादी के लिए कार्यकारिणी अनुरोध करती है कि जो देश का कल्याण और आजादी चाहते हैं वे इस प्रसंग में सहयोग कर देश के सामने की समस्याएँ हल करने का प्रयास करें। मई १६ को किये गये निवेदन में जिस योजना का उल्लेख है वह कांग्रेस ने सशर्त मंजूर की है, ऐसी टिप्पणी मुस्लिम लीग की तरफ से की जा रही है। यह कार्यकारिणी जानती है। कार्यकारिणी स्पष्ट करना चाहती है कि यद्यपि योजना के कुछ मुद्दे पसन्द नहीं हैं फिर भी हमने कुल मिलाकर योजना स्वीकार की है। उसकी विसंगतियाँ और त्रुटियाँ आगे चलकर प्रत्यक्ष कार्यक्रम के समय दूर करना सम्भव होगा, ऐसा कार्यकारिणी ने मान लिया है। संविधान सभा का काम सफल करने की इच्छा से ही २६ जून, १९४६ का प्रस्ताव मंजूर किया गया है। यह निर्णय कृति में उतारना आवश्यक है। इसी निश्चय से हम अब संविधान सभा का काम शुरू करनेवाले हैं।" परन्तु जिन्ना ने कांग्रेस का यह प्रस्ताव मंजूर नहीं किया। उन्होंने कहा, "नेहरू का वक्तव्य ही कांग्रेस का असली मत है। **अंग्रेजी सत्ता के रहते, जब हमारे हाथों में अधिकार आये तक नहीं है तब अगर कांग्रेस बार-बार अपनी भूमिका बदल सकती है, तो अंग्रेजों के जाने के बाद वह आज का निर्णय बदलकर नेहरू के मत को स्वीकार नहीं करेगी, ऐसा विश्वास अल्पसंख्यक किस आधार पर करें।?**[९]

इस महाभारत से पहले गांधीजी ने जिन्ना से ऐसा भी कहा था कि, "पाकिस्तान के निर्माण में लोगों का कल्याण है यह विश्वास अगर मुझे किसी ने दिलाया और पाकिस्तान की स्थापना में इस्लाम का हित है यह दिखा दिया तो मैं पाकिस्तान की माँग मंजूर करने के लिए तैयार हूँ। परन्तु मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग इस्लाम विरोधी है। वह दुष्टतापूर्ण और अपवित्र माँग है। इस विषय में मेरे मन में सन्देह नहीं है। यह मेरा विश्वास है। इस्लाम की तत्त्वप्रणाली एकता की है, भाईचारे की है। इस्लाम की तत्त्वप्रणाली मानवीय समूहों का विभाजन करनेवाली नहीं है। जो भारत का विभाजन करना चाहते हैं वे केवल भारत के ही नहीं अपितु इस्लाम के भी शत्रु हैं। वे

मेरे शरीर का भी विभाजन कर सकेंगे, पर मैं जिस बात को गलत मानता हूँ वह बात स्वीकार करने के लिए मुझे बाध्य नहीं कर सकते।" विभाजन के विरोध में और कैसी भूमिका हो सकती है? गांधीजी कहते थे भारत की आजादी के बाद ही पाकिस्तान की स्थापना का सवाल खड़ा होता है। भारत आजाद हुए बगैर अन्य कोई सवाल उपस्थित ही नहीं होते। अखण्ड भारत ही पाकिस्तान की माँग का विकल्प है। एक बार अगर विभाजन का तत्त्व स्वीकार कर लिया तो संकटों का पहाड़ खड़ा हो जायेगा। मेरी राय है कि कांग्रेस विभाजन की योजना में कदापि सहभागी न बने। पाकिस्तान की माँग उचित और अच्छी है, यह मुझे समझा दीजिए। ऐसी विनती मैंने घुटने टेककर की। पाकिस्तान के समर्थक अपना मत लोगों के सामने रखें और इसमें कल्याण है यह लोगों को समझा दें। यह थी गांधीजी की भूमिका। माउण्ट बेटन को लिखे पत्र में उन्होंने कहा था कि जिन्ना से हुई चर्चा के दरम्यान मैंने लगातार पाकिस्तान की माँग का विरोध किया। महात्मा गांधी ने राजाजी के प्रस्ताव को मंजूरी दी थी। इस एक ही बात से यह निष्कर्ष निकालना कि गांधीजी ने विभाजन को मंजूरी दी थी, यह एकदम बचकानी बात है। राजाजी के प्रस्ताव के प्रति जिन्ना ने कड़ा विरोध किया था। अगर उसमें विभाजन की बात होती तो जिन्ना विरोध न करते। जिन्ना की पाकिस्तान विषयक भूमिका के दर्शन राजाजी के प्रस्ताव में नहीं थे, इसीलिए जिन्ना ने विरोध किया। कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव किया था। उस प्रस्ताव से कांग्रेस बँधी थी। अन्तरिम सरकार के बाद नेहरू और पटेल की भूमिका में अन्तर पड़ता गया और वे विभाजन के सम्बन्ध में गांधीजी की भूमिका से अलग भूमिका अपनाने लगे। राजनैतिक परिस्थिति के सम्बन्ध में गांधीजी का विश्लेषण गलत है और विभाजन से ही शान्ति स्थापित होगी, ऐसा नेहरू और पटेल कहते थे। गांधीजी ने १ जून, १९४६ की प्रार्थना-सभा में कहा था, "अगर विभाजन अनिवार्य होगा तो न वह अंग्रेजों के हाथों होगा और न अंग्रेजों का भारत पर राज रहते होगा। ऐसा मैंने वाइसराय से कहा। पर नेहरू और पटेल को यह भी पसन्द न आया। वे जो चाहें करें, पर गांधी विभाजन के पाप में सहभागी हैं, ऐसा न कहें। सभी जल्दी-से-जल्दी आजादी चाहते हैं।"[१०] गांधीजी का यह भाषण पढ़ने के बाद डॉ॰ राममनोहर लोहिया ने नेहरू और पटेल को विभाजन के गुनहगार क्यों कहा, यह ध्यान में आता है।

विभाजन के कारण गांधी की हत्या हुई या की गयी, यह दावा बेबुनियाद है। यह बात हम पहले अध्याय में देख चुके हैं। विभाजन गांधी के कारण नहीं हुआ, यह भी हम देख चुके हैं। इसी तरह विभाजन की जब कोई हवा भी नहीं थी तब से—सन् १९३४ से—हिन्दुत्ववादियों ने गांधी-हत्या का लक्ष्य रखा था, यह भी हमने देखा। अत: विभाजन को गांधी-हत्या का कारण कहा जाता है, वह पूर्णतया कमजोर या खोखला है। एक का दोष दूसरे के मत्थे मढ़ने जैसा है। पचपन करोड़ का मामला भी ऐसा ही है। थोड़े समय के लिए हम यह मान भी लें कि गांधीजी के कारण विभाजन हुआ और पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को देने पड़े। तब भी गांधीजी की हत्या का समर्थन कैसे हो सकता है? वैसे तो किसी की भी हत्या का समर्थन उचित हो ही नहीं सकता। ये दोनों बातें केवल गांधी-हत्या का समर्थन पाने के लिए कही जाती हैं। आजादी का जिस तरह से जनता ने स्वागत किया उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि विभाजन और पचपन करोड़ रुपयों का विरोध जनता ने भी नहीं किया। जनता ने विभाजन स्वीकार किया तो जनता भी विभाजन के जिए जिम्मेदार है, ऐसा मानना पड़ेगा। ऐसी हालत में तो जनता का भी सामूहिक कत्लेआम किया जाना चाहिए था। और उसका भी समर्थन करना पड़ता। अगर जनता हिन्दुत्ववादियों के पक्ष में होती तो वे विभाजन के विरोध में जनता का नेतृत्व करते। विभाजन के सम्बन्ध में मैंने जो बातें अब तक सामने रखीं वे नयी नहीं हैं। हिन्दुत्ववादी अप्रामाणिक हैं इसलिए गांधीजी के कारण विभाजन नहीं हुआ, यह सत्य स्वीकार करने के लिए वे तैयार नहीं। सत्य का पता चलने पर उसे खुलेआम कबूल करने के लिए महानता और प्रामाणिकता आवश्यक होती है पर उनके पास दोनों का अभाव है। इसलिए इधर कुछ वर्षों से वे विभाजन का कारण थोड़ा अलग रखकर पचपन करोड़ देने या दिलाने के कारण गांधीजी की हत्या हुईं, ऐसा वे कहते हैं। गांधीजी स्वयं हिन्दूधर्माभिमानी थे। पर हिन्दुत्ववादी इसका भी आकलन नहीं कर सके। गांधी स्वयं को सनातनी हिन्दू कहा करते थे। "मैं सनातनी हिन्दू हूँ। वेद, उपनिषद्, पुराण और हिन्दू-धर्म के नाम से प्रकाशित हर साहित्य के प्रति मेरा विश्वास है। इसीलिए अवतार और पुनर्जन्म पर भी मेरा विश्वास है। मेरा वर्ण-व्यवस्था में भी विश्वास है। क्योंकि मेरे विचारों से वे विशुद्ध वैदिक हैं। मैं मूर्तिपूजक हूँ। वर्णाश्रमधर्म मानवीय नैसर्गिकता का सहज गुणविशेष है। वर्णाश्रम का सम्बन्ध जन्म से है।

कोई व्यक्ति अपनी इच्छानुसार वर्ण नहीं बदल सकता।[११] गांधी हिन्दुत्व को मानते थे इसका इससे ठोस प्रमाण क्या हो सकता है? गांधीजी हिन्दू थे परन्तु वे सब धर्मों को मानते थे। किसी धर्म के विषय में मन में द्वेष नहीं रखते थे। सभी धर्मों का मूलतत्त्व मानवता है, ऐसा कहते थे। कया खुद को हिन्दू कहने में गर्व महसूस करनेवाले हिन्दुत्ववादी भी इतने खुलेआम चातुर्वर्ण का पक्ष ले सकेंगे? गांधीजी में अपने विचार और भूमिका को स्पष्ट रूप से प्रकट करने की प्रामाणिकता थी। मैं सच्चा हिन्दू हूँ इसलिए अन्य धर्मों के विषय में हिन्दू-धर्म जितना ही आदर है। ऐसा गांधीजी कहते थे। हिन्दुत्ववादी और गांधीजी में यही अन्तर है। गांधीजी सहिष्णु हिन्दू थे। हिन्दुत्ववादियों में सहिष्णुता का अभाव है। गांधीजी मुस्लिमों का तुष्टिकरण नहीं करते थे, बल्कि इस्लाम, क्रिश्चियन आदि सभी धर्मों का आदर करते थे। वे किसी धर्म से द्वेष नहीं करते थे। सही अर्थ में वे सर्वधर्म समभावी थे। इस देश में रहनेवाले सब भारतीय हैं। उनका भारतीयत्व धर्म पर निर्भर नहीं है। धर्म का विचार किये बगैर इस देश में रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति भारतीय है, इसलिए भारत एक राष्ट्र है। ऐसा मानने से ही हम एक साथ रह सकते हैं। द्वेष के आधार से नहीं अपितु समन्वय, शान्ति, परस्पर विश्वास, एक-दूसरे के प्रति आदर की भावना से हम एक राष्ट्र होकर रह सकेंगे, यह गांधीजी की श्रद्धा थी, विश्वास था। धर्म के अनुसार राष्ट्र का विचार करें तो इस देश के अनेक राष्ट्र बनाने होंगे, ऐसा गांधीजी मानते थे। परन्तु उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया गया। इसी के परिणामस्वरूप विभाजन हुआ है। हिन्दुत्ववादी गांधी-विचार का सही मूल्यांकन नहीं कर सके या उस विचार को वे पचा नहीं सके यही निष्कर्ष निकलता है अथवा पहले कही हुई बातों के अनुसार गांधी-विचार हिन्दुत्ववादी राजनीति के मार्ग का रोड़ा था। इसलिए वे गांधीजी से द्वेष करते थे, ऐसा मानना पड़ेगा। राजनीति में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान रहे, यह हिन्दुत्ववादियों का आग्रह है। इसके लिए वे धर्मराष्ट्र की कल्पना सामने रखते हैं। परन्तु यह स्वीकार करने पर कैसे संकट खड़े होंगे यह वे समझ नहीं पाते। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, “हिन्दू-धर्म ने सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप किया इसीलिए आजतक संकट खड़े हुए। सामाजिक नियम बनाने का धर्म को कोई अधिकार नहीं है। धर्म का सम्बन्ध केवल आत्मा से है। सामाजिक मामलों में वह हस्तक्षेप न

करे।"[१२]? गांधीजी भी यही कह रहे थे। हिन्दुत्ववादियों का हिन्दुत्व सच्चे धर्म पर आधारित नहीं है। अत: उनकी धर्म की राजनीति भी अप्रामाणिक है।

विभाजन को मान्यता देने के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी की सभा बुलायी गयी। उस सभा में जयप्रकाश नारायण और डॉ० राममनोहर लोहिया को विशेष निमंत्रित किया गया था। डॉ॰ लोहिया ने इस सभा का विस्तृत विवरण 'गिल्टी मेन ऑफ पार्टिशन' नामक पुस्तक में लिखा है, "गांधी, सरहदी गांधी, जयप्रकाश नारायण और मैं—इन चार लोगों ने ही विभाजन का विरोध किया। अन्य किसी ने विभाजन के विरोध में एक शब्द तक नहीं कहा।" वे आगे लिखते हैं, "इस सभा की चर्चा में गांधीजी ने महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप किया। गांधीजी द्वारा प्रस्तावित दो मुद्दों का विशेष विचार होना चाहिए। गांधीजी ने कुछ शिकायत भरे स्वर में कहा कि विभाजन को मंजूरी देने से पहले नेहरू और पटेल ने मुझे उसकी कोई जानकारी नहीं दी। गांधीजी की बात पूरी होने से पहले ही नेहरूजी उत्तेजित होकर बोले कि समय-समय पर गांधीजी को सारी जानकारी दी जाती थी। गांधीजी ने तब फिर कहा कि विभाजन विषयक जानकारी मुझे पहले किसी ने नहीं दी, तब नेहरू अपने शब्द बदलकर बोले कि गांधीजी उस समय नोआखाली में थे इसलिए योजना का सारा ब्यौरा उन्हें नहीं बताया गया।" डॉ॰ लोहिया का विवरण और डी॰ जी॰ तेन्डुलकर का महात्मा (खण्ड ७) में दिया गया विवरण लगभग एक जैसा ही है। इसी सभा में गांधीजी ने आगे कहा, "कांग्रेस के नेताओं ने विभाजन को स्वीकृति दी है। अत: उनके शब्दों की लाज रखने के लिए कांग्रेस भी उसे मान्यता दे। कांग्रेस और मुस्लिम लीग की मंजूरी के बाद वाइसराय और अंग्रेज शासन अलग हट जायँ। किसीके हस्तक्षेप और सहायता के बिना कांग्रेस और मुस्लिम लीग योजना बनायें और विभाजन करें।" कांग्रेस के शब्दों की लाज रखने के लिए ही अन्त में गांधीजी ने विभाजन को मंजूरी दी। अंग्रेज आजादी देकर चले गये तो कांग्रेस विभाजन की दिशा में कुछ नहीं करेगी, यह डर जिन्ना को था। इसलिए जिन्ना का आग्रह था कि अंग्रेजों के जाने से पहले विभाजन हो जाय। गांधीजी को विश्वास था कि जिन्ना की इच्छानुसार विकल्प देकर उसे मंजूर करने के लिए जिन्ना को बाध्य कर सकेंगे और विभाजन टल जायेगा। इसलिए पहले आजादी, फिर विभाजन यह गांधीजी का

आग्रह था। नेहरू, पटेल की चिन्ता कुछ अलग ही थी। इस विवाद में आजादी दूर चली जायेगी, इस डर से शायद दोनों ने गांधीजी को जानकारी दिये बगैर ही विभाजन को स्वीकृति दी होगी।

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने विभाजन के लिए नेहरू की अपेक्षा पटेल को अधिक जिम्मेदार माना है। अन्तरिम सरकार में सरदार पटेल ने लियाकत अली को अर्थविभाग दिया था। लॉर्ड वेवेल ने सुझाया था कि गृह-विभाग मुस्लिम लीग को दिया जाय और अर्थविभाग कांग्रेस के पास रहे। परन्तु शायद पटेल उस समय अर्थ-विभाग का महत्त्व न समझ सके। गृह-विभाग उन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण लगा। इसलिए उन्होंने लियाकत अली को अर्थ-विभाग सौंपा और स्वयं गृह-विभाग सँभाला। परन्तु बाद में अर्थ-विभाग की मंजूरी लिये बिना एक पुलिस तक की नियुक्ति करना भी उनके लिए कठिन हो गया। लियाकत अली के बनाये हुए आर्थिक बजट का स्वरूप भी कांग्रेस को कठिनाई में डालनेवाला ही था। आज तक कांग्रेस ने जो प्रस्ताव किये थे उनसे संगति रखते हुए लियाकत अली ने ऐसी कर-प्रणाली तय की जिससे हिन्दू पूँजीपति अड़चन में पड़ते। यह कर-प्रणाली अमल में लायी जाती तो हिन्दू पूँजीपति और बड़े व्यापारियों का दीवाला ही निकल जाता, और कांग्रेस को उन सबकी नाराजगी सहनी पड़ती। लियाकत अली की कर-प्रणाली कांग्रेस की आर्थिक-नीति के अनुसार थी। अत: लियाकत अली के बजट का विरोध भी कांग्रेस नहीं कर सकती थी और स्वीकृति देना भी कठिन था। मंत्रिमण्डल की बैठक में यह विषय चर्चा के लिए आया तब लियाकत अली ने कहा कि कांग्रेस की ही नीतियाँ अमल में लानेवाला यह बजट है। जब कुछ मंत्रियों ने आपत्ति उठायी कि कर-प्रणाली का विवरण हमें नहीं बताया गया। तब लियाकत अली बोले, मैंने नीतियों के लिए स्वीकृति ली है। बजट का ब्यौरा गुप्त रखा जाता है। उसकी चर्चा कैसे की जाती! इस कारण वल्लभभाई पटेल बड़ी मुश्किल में पड़ गये। अर्थ-विभाग उन्होंने स्वयं नकारा था। और अब लियाकत अली ने इस तरह बाधा खड़ी कर दी थी। वल्लभभाई की कूटनीति के विषय में डॉ॰ लोहिया ने कहा है कि 'कसौटी के समय उनकी कूटनीति के दर्शन नहीं होते।' इस पृष्ठभूमि पर लोहिया का विश्लेषण सही सिद्ध होता है। लोहिया लिखते हैं, "कूटनीति के क्षेत्र में पटेल की श्रेष्ठाता की बराबरी कोई नहीं कर सकता। अपना क्षुद्र स्वार्थ जहाँ न हो ऐसे काम करने में पटेल ने उच्च श्रेणी की कुशलता और साहस दिखाया है, जैसे

रियासतों का भारत में विलिनीकरण। वैसे देखा जाय तो यह काम बहुत उल्लेखनीय नहीं था। इस काम के लिए उन्हें किसी बड़ी शक्ति से टकराना नहीं पड़ा। राजा, महाराजा तो उतावले ही थे। पटेल के अन्य सहयोगी छोटे थे सो उनकी तुलना में पटेल अपने आप बड़े हो गये। पटेल का कार्य असाध्य एवं अतुलनीय था ऐसी बात नहीं है।" अर्थमंत्री के नाते लियाकत अली का जो अनुभव वल्लभभाई पटेल को आया उससे वे झल्ला गये। और मुस्लिम लीग के साथ काम करना असम्भव है। विभाजन के सिवाय कोई चारा नहीं, इस निर्णय पर वे पहुँचे। "लॉर्ड माउण्ट बेटन ने विभाजन के लिए पहले सरदार पटेल से राय ली। तत्पश्चात् नेहरूजी के सामने विभाजन की योजना रखी और कहा कि पटेल ने विभाजन को मंजूरी दी है। उसके बाद नेहरूजी के विरोध की प्रखरता कम होती गयी। पटेल विभाजन के अलावा कुछ मानने के लिए राजी ही नहीं थे।"[१३] डॉ॰ लोहिया की ही तरह मौलाना आजाद ने भी विभाजन के लिए क्रमशः पहले पटेल और फिर नेहरू को जिम्मेदार माना है। सरदार पटेल को छोटी-छोटी बातों के लिए लियाकत अली से विनती करनी पड़ती थी। यह बात उन्हें चुभती थी। संघर्ष कम होने के बजाय रोज नये संकट खड़े होते थे। ऐसे समय माउण्ट बेटन ने पहले पटेल के सामने विभाजन का प्रस्ताव रखा। मुस्लिम लीग के साथ काम नहीं किया जा सकता और यह सरकार न चले तो आजादी नहीं मिल सकती। इस स्थिति की अपेक्षा भारत के विभाजन को मंजूरी देकर मुस्लिम लीग को पाकिस्तान दे दिया जाय और आजादी हासिल की जाय, इस निश्चय तक सरदार पटेल पहुँचे। इन बातों को देखते हुए डॉ॰ लोहिया ने तीखे शब्दों में पटेल और नेहरू की आलोचना की है कि अपनी उम्र का खयाल करके नेहरू और पटेल सोचने लगे कि अब अगर हमें सत्ता नहीं मिलती है तो जिन्दगी में कभी नहीं मिलेगी।

नेहरू और पटेल को सत्ता का लोभ था, इसलिए विभाजन की बदौलत ही सही, हम सत्ताधारी बनेंगे, इस विचार से दोनों ने विभाजन को मंजूरी दी ऐसा कहना उनके प्रति अन्याय होगा। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों सत्ता में रहें तो एक-दूसरे को परास्त करने की ताक में ही रहेंगे। सरकार का कामकाज ही असम्भव हो जायेगा। इस तरह के अखण्ड भारत की अपेक्षा विभाजन ही ठीक है। पटेल द्वारा विभाजन को दी गयी स्वीकृति असहाय मानसिकता, परिस्थिति-शरणता या निराशा का फल है। सरदार पटेल ने विभाजन को स्वीकृति दी है यह पता चलने के

बाद नेहरूजी ने स्वीकृति दी। सत्ता हासिल करने के लिए दोनों ने विभाजन को मंजूरी दी यह निष्कर्ष इन्हीं सब कारणों से अनुचित लगता है।

१९४६ में महात्मा गांधी पंचगनी पहुँचे थे, तब जयप्रकाश नारायण उनसे मिलने गये। जयप्रकाश नारायण के हाथ अपने हाथ में लेकर डबडबाई आँखों से गांधी ने कहा, "जवाहरलाल ने अखण्ड भारत का मेरा सपना मिट्टी में मिला दिया।"

पंचगनी से जयप्रकाश मुम्बई जाने पर मीनू मसानी से मिले। उस समय मसानी कांग्रेस समाजवादी पक्ष में थे। जयप्रकाश ने पंचगनी का प्रसंग मीनू मसानी से कहा। आगे जाकर मीनू मसानी ने किताब लिखी तब जयप्रकाश ने उन्हें पत्र लिखकर इस प्रसंग का स्मरण दिलाया। अन्तरिम सरकार के अनुभवों के कारण सरदार पटेल मुस्लिमों पर गुस्सा उतारने लगे थे, इसीलिए विभाजन टालने के गांधीजी के प्रयासों से अलग, विरोधी भूमिका वे लेने लगे थे। और धीरे-धीरे वे गांधीजी के ही विरोधी बन गये। गांधीजी भी यह बात जानते थे। "आज तक सरदार मेरी हर बात मानते थे। पर अब सरदार मेरी बात पर 'जी हाँ' नहीं कहते। वे स्वयंभू हो गये हैं।" गांधीजी सरदार को अपना 'जी हाँ' (येस सर) मानते थे क्योंकि सरदार के राजनैतिक जीवन की शुरुआत गांधीजी के कारण हुई थी। उन्हें राजनीति की शिक्षा गांधीजी ने ही दी थी। मुझे राजनीति कुछ समझ में नहीं आती, ऐसा शुरू के दिनों में सरदार गांधीजी से कहते थे। गांधीजी ने उन्हें राजनैतिक दीक्षा दी। अन्त के कुछ दिन छोड़ दें तो गांधीजी की किसी बात का वल्लभभाई ने विरोध नहीं किया था। इसीलिए सरदार को गांधीजी का 'जी हाँ' कहा जाता था। डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद ने प्यारेलाल के 'द लास्ट फेज' की प्रस्तावना लिखी है। उसमें राजेन्द्रबाबू ने गांधीजी के विभाजन विषयक विचार लिखे हैं। "महात्मा गांधी विभाजन के प्रखर विरोधी थे। कांग्रेस के हिन्दू-मुस्लिम आदि सभी नेता विभाजन के विरोधी थे। पर अन्तरिम सरकार के बाद सारा चित्र ही बदल गया। मुस्लिम लीग के मंत्रियों ने कांग्रेस के मंत्रियों से असहयोग शुरू किया। इस कारण विभाजन ही एक मार्ग बचा है, ऐसा कांग्रेस के मंत्री मानने लगे। कुछ हिस्सों में दंगे हो रहे थे। ऐसी परिस्थिति में भी महात्मा गांधी अखण्ड हिन्दुस्तान के ही आग्रही थे।" प्रस्तावना में इस बात पर राजेन्द्रबाबू ने अधिक बल दिया है।

विभिन्न नेताओं ने अलग-अलग समय पर यह स्पष्ट किया है कि गांधीजी विभाजन के कितने विरोधी थे। इसीलिए गांधी विभाजन के लिए जिम्मेदार हैं, यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन हिन्दुत्ववादी तो इसी तरह का प्रचार कर रहे हैं कि गांधीजी के कारण विभाजन हुआ। उनका यह प्रचार कितना झूठा और बेबुनियाद है, यह अब तक के विवेचन से स्पष्ट है। हिन्दुत्ववादी भी इस बात को समझते हैं। पर गांधीजी विभाजन के विरोधी थे यह बात मान लेने पर गांधी के प्रति द्वेष फैलाने का कोई साधन हिन्दुत्ववादियों के पास नहीं रह जाता। धर्म के आधार पर द्विराष्ट्रवाद का सिद्धान्त स्वीकार करने पर धार्मिक दंगों के अलावा कुछ नहीं होगा, ऐसा गांधीजी कहते थे। और हुआ भी वैसा ही। विभाजन के इतने साल बीत जाने पर आज भी दोनों देशों में वही तनाव कायम है। भारत के हिन्दू तथा मुस्लिम धर्मांध नेता और पाकिस्तान के धर्मांध नेता अपना राजनैतिक स्थान बनाये रखने के लिए हिन्दू और मुसलमानों के बीच तनाव बढ़ाते रहते हैं। इसके लिए पाकिस्तान के शासक कश्मीर प्रश्न पर वहाँ के असन्तुष्ट लोगों की मदद कर समस्या को खाद-पानी देते रहते हैं। और भारत के हिन्दुत्ववादी बाबरी मस्जिद के बहाने मुस्लिमों और हिन्दुओं में द्वेष फैलाने का प्रयास करते रहते हैं। तो यहाँ के धर्मांध मुस्लिम 'इस्लाम खतरे में है' का नारा लगाकर मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग रखते हैं और हिन्दुत्ववादी हिन्दुओं को मुसलमानों से अलग रखते हैं। आजादी के पहले भी उनकी राजनीति का यही स्वरूप था। लेकिन गांधीजी हमेशा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते रहे। इसीलिए उस समय के मुस्लिम लीगी और हिन्दुत्ववादी दोनों को ऐसा लगता था कि गांधीजी का विचार उनको जड़ से उखाड़नेवाला विचार है। इसी कारण दोनों गांधी के विरोधी रहे। इस बारे में इतिहास शोधक न॰ र॰ फाटक ने कहा है कि, "कांग्रेस और गांधीजी की जमकर बदनामी, मुसलमानों की घोर आलोचना और अन्तिम उद्देश्य के विषय में उदासीनता ऐसी हिन्दू महासभा की नीति थी। हिन्दू महासभा के पास कृतिशील राजनीति नहीं थी। हिन्दू महासभा के लोगों को मुस्लिम लीग के विरोध में आवाज उठाने का अच्छा मौका आया था। पर तब हिन्दू महासभा ने कोई हलचल नहीं की। सिंध की विधानसभा में मुसलमानों ने पाकिस्तान सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किया था, उस समय हिन्दू महासभा चुपचाप

बैठी रही। महायुद्ध के समय हिन्दू महासभा ने मुस्लिम लीग से समझौता कर राजनीति में प्रवेश करने की चाह रखी। कुछ स्थानों पर सफलता भी पायी।"

हिन्दू-मुसलमानों में संघर्षमय, तनावपूर्ण माहौल बना रहे इसी तरह की राजनीति हिन्दुत्ववादियों ने चलायी और मुस्लिम धर्मांधों ने भी उसे बढ़ाया। विभाजन के बाद फैले दंगों की चपेट में दिल्ली भी आ गयी। दिल्ली मानो कत्लखाना ही बन गयी। इसी कारण गांधीजी का आमरण अनशन १३ जनवरी, १९४८ को शुरू हुआ। यह अनशन पचपन करोड़ रुपयों के लिए नहीं था। दिल्ली में शान्ति स्थापित हो इसके लिए था। उपवास के समय सरदार वल्लभभाई पटेल ने अपने सचिव वी॰ शंकर को गांधीजी के पास भेजकर पुछवाया था कि मैं क्या कर सकता हूँ। तब गांधीजी ने कहा था कि पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया दे दो। यद्यपि यह बात गांधीजी ने उपवासकाल में कही थी। पर उपवास पचपन करोड़ रुपयों के लिए नहीं था। गांधीजी के सचिव प्यारेलाल और तेन्डुलकर ने गांधीजी पर कई खण्ड लिखे हैं। पर उनमें यह उपवास पचपन करोड़ रूपये के लिए था, ऐसा सचिव प्यारेलाल और तेन्डुलकर ने कहीं नहीं लिखा। अन्य अनेक विद्वानों ने गांधीजी पर लिखा है। उसमें भी पचपन करोड़ रुपयों के लिए यह उपवास था, ऐसा उल्लेख नहीं है। लोहिया की पुस्तक में भी यह जिक्र नहीं है। क्योंकि गांधीजी ने पचपन करोड़ रुपयों के लिए उपवास किया ही नहीं था। पर हिन्दुत्ववादियों ने ऐसा झूठा प्रचार किया। उपवास के दरमियान गांधीजी अनेक विषयों पर बोलते थे। अपना मत व्यक्त करते थे। उन बातों के लिए उन्होंने उपवास किया ऐसा कहना निपट मूर्खता है। दिल्ली के दंगों के सन्दर्भ में पं॰ नेहरू ने सरदार पटेल के ही विषय में उन्हीं के समक्ष नाराजगी प्रकट की। तब सरदार पटेल ने कहा कि दिल्ली पर कब्जा पाने के लिए मुसलमानों ने हथियार इकट्ठा किये थे जो हमने बरामद किये हैं। सरदार पटेल ने वे हथियार लॉर्ड माउण्ट बेटन, नेहरू और आजाद को दिखाये। हथियार देखकर नेहरू और आजाद ने क्या कहा। यहाँ उसका विचार करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। दोनों में से एक मुस्लिम और दूसरा हिन्दुत्ववादियों के लिए अप्रिय था। अत: उन दोनों के मतों का विचार करने की अपेक्षा लॉर्ड माउण्ट बेटन ने क्या कहा यह देखना महत्त्वपूर्ण है। दिखाये गये हथियारों में से दो चाकू उठाकर माउण्ट बेटन हँसते हुए बोले "तरकारी काटने और पेन्सिल छीलने

के ये चाकू हैं। इन हथियारों से दिल्ली पर कब्जा करने की जो सोचते हैं उन्हें युद्ध के दावँपेच ही मालूम नहीं हैं।'" माउण्ट बेटन के इस कथन से पटेल के बरामद किये हुए हथियारों के स्वरूप का पता चलता है। इस घटना का विस्तृत वर्णन 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में है। दंगों के समाचारों से गांधी बहुत व्यथित थे। उनकी कही गयी गम्भीर बातों पर सरकार कोई ध्यान नहीं दे रही थी। इसीलिए गांधी कहा करते थे कि अब मेरी कोई सुनता नहीं। गांधी ने मौलाना आजाद से कहा कि "दिल्ली में शान्ति स्थापित करने के लिए उपवास ही एकमात्र अस्त्र अब मेरे पास बचा है।" १३ जनवरी, १९४८ से उनका उपवास शुरू हुआ। गांधीजी उपवास का विचार छोड़ दें इसलिए बहुत लोगों ने प्रयास किये। पर कोई लाभ नहीं हुआ। जब उपवास शुरू हुआ तब नेहरू, सरदार पटेल ने उपवास के सम्बन्ध में नाराजगी व्यक्त की। "आपके उपवास से लोग मुझ पर नाराज होंगे। मेरी वजह से आप उपवास कर रहे हैं ऐसा कहने का लोगों को अवसर मिलेगा" यह सरदार पटेल ने कहा। पटेल की भावना ऐसी क्यों हुई? गांधीजी ने जवाब दिया, "सरदार, मैं आज चीन में नहीं दिल्ली में हूँ। मेरे कान और आँखें ठीक हैं। कानों से सुने और आँखों से देखे सबूतों पर मैं विश्वास न करूँ और मुस्लिमों की शिकायतें निराधार हैं ऐसा मानूँ। यही अगर आप चाहते हों तो न मैं आपके मन को विश्वास दिला सकता हूँ और न आप मुझे विश्वास दिला सकते हैं। यह स्पष्ट है। हिन्दू और सिक्ख मेरे भाई हैं। उनमें और मुझमें एक ही खून है। आज जो क्रोधित हैं उन्हें मैं दोष नहीं दूँगा। स्वयं प्रायश्चित करके मुझे अपने दोष धोने होंगे। मेरे उपवास से उनकी आँखें खुलेंगी और वे परिस्थिति का आकलन करेंगे, ऐसी मुझे आशा है।" गांधीजी के इन उद्गारों से सरदार पटेल के विषय में उनकी जो धारणा बनी थी उसका स्पष्ट पता चलता है। बरामद किये हथियारों का लॉर्ड माउण्ट बेटन द्वारा किया गया उपहास भी कष्टदायी है। उपवास के जो कारण गांधीजी ने स्पष्ट किये उनमें पचपन करोड़ रुपयों के लिए यह उपवास है, ऐसा उन्होंने कहीं नहीं कहा। पटेल और गांधी के वार्तालाप के बाद पटेल उठने लगे तब मौलाना आजाद ने पटेल के हाथ अपने हाथ में लेकर विनती की कि गांधीजी के उपवासकाल में आप दिल्ली न छोड़ें। सरदार पटेल गुस्से में ही थे। वे बोले, "उनका (गांधीजी का) अगर यही रवैया रहा तो मुझे उनकी जरूरत नहीं। अपना कार्यक्रम मैं बदल नहीं सकता। तय कार्यक्रम के अनुसार मैं मुम्बई जाऊँगा।" पटेल ने गांधीजी के

प्रति अपना मन कठोर कर लिया था। पर दिल्ली की जनता का मन वैसा नहीं हुआ था। उपवास की खबर का पता चलते ही देशभर में हलचल मच गयी, जिसका वर्णन आजाद ने किया है। "गांधीजी हिन्दुओं के शत्रु हैं, ऐसा प्रचार कर लोगों को भड़काने के प्रयास हुए। एक पुस्तिका में तो लिखा था कि गांधीजी ने अपनी नीतियाँ नहीं बदलीं तो उनका सफाया कर दिया जायेगा।"[१५] "बंगाल के दंगों का शमन होने पर पंजाब जाने के लिए गांधी जब भारत की राजधानी में पहुँचे तब जातिद्वेष से वहाँ का वातावरण दूषित हो चुका था। वातावरण शान्त करने के लिए १९४८ की जनवरी में गांधीजी को फिर उपवास करने पड़े।"[१६] "अगर दिल्ली में शान्ति स्थापित हुई तो मैं उपवास छोड़ूँगा।"[१७] यह बात गांधीजी ने उपवास शुरू होने के दूसरे-तीसरे दिन कही थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गांधीजी का उपवास पचपन करोड़ रुपयों के लिए नहीं था। यह सच है कि गांधीजी का उपवास शुरू होने पर समझौते के अनुसार पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को देने का निर्णय मंत्रिमण्डल की बैठक में लिया गया। उपवास शुरू होने पर सरदार पटेल दौरे पर चले गये। उपवास के कारण कांग्रेस के नेता और मंत्रियों के मन आशंका से काँप उठे। बिड़ला हाउस के कमरे में जिस खटिया पर गांधीजी लेटे थे उसीके चारों ओर बैठकर १५ जनवरी, १९४८ को शीघ्रता से मंत्रिमण्डल की बैठक हुई, जिसमें पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देने का निर्णय लिया गया। यह सब सच है। पर उपवास उस कारण से नहीं था, यह उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण सच है। लेकिन हिन्दुत्ववादी लगातार यही प्रचार करते रहे। उनका प्रचार गलत है यह कहने का थोड़ा भी प्रयास नहीं हुआ। परिणामत: निरन्तर बताया गया झूठ सच लगने लगा। अब घटनाक्रम देखिए। १३ जनवरी को उपवास शुरू हुआ। १५ जनवरी को पचपन करोड़ रुपये देने का निर्णय मंत्रिमण्डल में लिया गया। १८ जनवरी को दोपहर १२.४५ बजे पर उपवास समाप्त हुआ। अगर पचपन करोड़ रुपये के लिए उपवास होता तो १५ जनवरी के मंत्रिमण्डल के निर्णय के बाद उसी दिन या कम-से-कम दूसरे दिन १६ जनवरी को उपवास समाप्त होना चाहिए था, पर नहीं हुआ। पचपन करोड़ रुपये देने के निर्णय के तीन दिन बाद गांधीजी ने उपवास छोड़ा। अर्थात् यह स्पष्ट है कि पचपन करोड़ रुपया और गांधीजी के उपवास का किसी अर्थ में कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं

है। पचपन करोड़ रुपये देने के निर्णय के बाद भी उपवास चालू रहा। वह पचपन करोड़ रुपये के लिए था ही नहीं, वह था दिल्ली में शान्ति की स्थापना के लिए।

शान्ति की स्थापना हो, और गांधीजी का उपवास समाप्त हो इसके लिए डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में सब धर्मों के १३० प्रमुख लोगों की शान्ति समिति गठित की गयी थी। उस समिति में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा हिन्दू महासभा के प्रतिनिधि भी थे। इस समिति की ओर से १७ जनवरी को दिल्ली में एक आम सभा हुई। गांधी ने उपवास-समाप्ति के लिए ७ शर्तें रखी थीं। ये सातों शर्तें स्वीकृत हुई हैं ऐसा डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद ने सभा में जाहिर किया। वे शर्तें इस प्रकार थीं :

(१) हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख और अन्य धर्मों के लोग दिल्ली में भाई-भाई की तरह और सौहार्दपूर्ण तरीके से रहेंगे, ऐसा विश्वास हम दिलाते हैं। मुस्लिमों की जान और सम्पत्ति की रक्षा करने की प्रतिज्ञा हम कर रहे हैं। इस तरह के हादसे फिर न हों, इसकी सावधानी हम रखेंगे।

(२) गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी ख्वाजा कुतुबुद्दीन मसर का उत्सव मनाया जायेगा, ऐसा अश्वासन हम गांधीजी को देते हैं।

(३) सब्जीमण्डी, करोलबाग, पहाड़गंज और शहर के अन्य हिस्सों में मुसलमान पहले की ही तरह अपने व्यवहार कर सकेंगे।

(४) जिन मस्जिदों पर हिन्दुओं और सिवखों ने अधिकार कर लिया है, उन मस्जिदों पर से अधिकार छोड़कर मस्जिदें फिर से मुसलमानों को सौंपी जायेंगी।

(५) दिल्ली छोड़कर गये हुए ऐसे मुसलमान जो वापस आना चाहते हैं उनकी वापसी पर कोई आपत्ति नहीं रहेगी। तथा वापस आये लोगों को अपने पुराने व्यवसाय और रोजगार करने से रोका नहीं जायेगा।

(६) ये सारे प्रयास हम स्वयं करेंगे। पुलिस या सेना से सहायता नहीं ली जायेगी।

(७) महात्माजी हम पर पूरा भरोसा रख अपना उपवास समाप्त करें और आगे भी हमें मार्गदर्शन कर हमारा नेतृत्व करें।

उपवास-समाप्ति के लिए रखी गयी ये सात शर्तें १७ जनवरी, १९४८ को स्वीकृत होने पर १८ जनवरी को गांधीजी ने उपवास समाप्त किया। स्वीकृत शर्तों में पचपन करोड़ रुपये देने का कहीं उल्लेख या आश्वासन नहीं है। इससे सिद्ध है कि पचपन करोड़ रुपये के लिए गांधीजी का उपवास था ही नहीं।

गांधीजी विभाजन का विरोध करते थे। समझौते के अनुसार पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायँ यह उनका मत था। परन्तु उनका उपवास इसके लिए नहीं था, बल्कि दिल्ली में शान्ति की स्थापना के लिए था। इस दृष्टि से उपवास के लिए जो शर्तें रखी थीं, वे सर्वधर्म समिति द्वारा मंजूर करने पर ही उन्होंने उपवास समाप्त किया। एक तरफ यह बात है तो दूसरी तरफ सन् १९३४ में इनमें से कोई भी प्रश्न नहीं था जब पुणे में गांधीजी की मोटर के काफिले पर बम फेंका गया। वे पिछली मोटर में बैठे थे इसलिए बच गये। पर आगे की मोटर में बैठे सात लोग घायल हो गये। इस काण्ड में नारायण आपटे का नाम है। नारायण आपटे गांधी-हत्या में भी था। तो इन सब बातों का अर्थ कया लगाया जाय? यह कि विभाजन और पचपन करोड़ रुपयों का गांधी-हत्या से कोई सम्बन्ध नहीं था।

४. *महात्मा: खण्ड ६ : डी॰ जी॰ तेन्दुलकर।*

५. *स्वामी विवेकानन्द ग्रंथावली संचयन।*

६. *गिल्टी मेन ऑफ पार्टिशन : डॉ॰ राममनोहर लोहिया।*

७. *सत्तांतर: १९४७ खण्ड दो: गोविन्द तकवलकर।*

८. *महात्मा गांधी: दी लास्ट फेज* : खण्ड १, प्यारेलाल।

९. *इण्डिया विन्स फ्रीडम* : मौलाना आजाद।

१०. *महात्मा: खण्ड ७, डी॰ जी॰ तेंडुलकर।*

११. *गांधी चिन्तन: हिन्दू-धर्म: यंग इण्डिया, ६ अक्तूबर, १९२१।*

१२. *स्वामी विवेकानन्द ग्रंथावली संचयन ।*

१३. *इण्डिया विन्स फ्रीडम:* मौलाना अबुल कलाम आजाद।

१५. *इण्डिया विन्स फ्रीडम:* मौलाना आजाद

१६. *गांधी: प्रा॰ नलिनी पण्डित*

१७. *महात्मा: खण्ड आठ: डी॰ जी॰ तेन्डुलकर*

विभाजन के बीज

'विभाजन के बिना आजादी मिलना कठिन है तथा मुस्लिम लीग के रवैये के कारण अखण्ड हिन्दुस्तान की कल्पना करना असम्भव है', ऐसा विश्वास होने पर कांग्रेस ने गांधीजी के विरोध के बावजूद विभाजन को स्वीकार किया। फलत: भारत के टुकड़े करने की अंग्रेजों की कुटिल नीति सफल हुई। १४ और १५ अगस्त, सन् १९४७ को अखण्ड प्राचीन भारत का दो राष्ट्रों में विभाजन हुआ। विभाजन के बाद हिन्दू-मुस्लिम कुल १० लाख लोग मारे गये। इतना बड़ा नरसंहार विश्व के इतिहास में कहीं नहीं हुआ। अंग्रेजों के गोपनीय दस्तावेज अब प्रकाश में आये हैं। उनके आधार पर अंग्रेज इतिहासवेत्ता ही अब कह रहे हैं कि यह नरसंहार सहजता से टाला जा सकता था। इस नरसंहार के अकेले माउण्ट बेटन ही जिम्मेदार हैं और इस नरसंहार के लिए उन पर महाभियोग ही लगाना होगा। यह मत अंग्रेज इतिहासवेत्ता अँडी रॉबर्ट्स अपनी पुस्तक में व्यक्त करते हैं। "ॲप्रीशियल ऑफ दी १९४०-१९५०" शीर्षक अपनी पुस्तक में वे लिखते हैं, "३ जून, सन् १९४८ तक भारत को आजादी देनी थी। परन्तु लॉर्ड माउण्ट बेटन ने भारत की आजादी और विभाजन की समयसारिणी बदल डाली। अपने ही कार्यकाल में विभाजन करने की जल्दबाजी की।" इस तरह का दोषारोपण करके ब्रिटिश इतिहासवेत्ता रॉबर्ट्स ने दिखा दिया है कि, "पंजाब की डेढ़ करोड़ 'जनता के लिए २५ हजार पुलिस आवश्यक थी। वहाँ लॉर्ड माउण्ट बेटन ने केवल १८ हजार पुलिस तैनात की। इसी लॉर्ड माउण्ट बेटन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय नार्मण्डी के लिए सेना की १४ डिविजन्स किनारे पर उतारी थी। पर इतने बड़े देश के विभाजन के समय केवल १८ हजार पुलिस के जवानों से काम चलाया।"

भारत-पाकिस्तान की सीमा-निर्धारण का काम माउण्ट बेटन ने सिलीर रेडक्लिफ को सौंपा था जो पहले कभी भारत नहीं आये थे। इसलिए भारत की भौगोलिक स्थिति की किसी तरह की जानकारी भी उन्हें नहीं थी। ऐसे व्यक्ति को ४० दिनों में दो राष्ट्रों की सीमा निर्धारित करने के लिए कहा गया था। स्वयं रेडक्लिफ ने कहा है कि, 'दो राष्ट्रों की सीमा निर्धारण के लिए मुझे दो वर्ष का समय देना आवश्यक था। पर वह न देकर केवल ४० दिन में सीमा-निर्धारण का काम निबटाया गया। माउण्ट बेटन की दूसरी गलती यह थी कि सीमा सम्बन्धी निर्णय सत्ता हस्तान्तरण के बाद

घोषित किया गया। रेडक्लिफ द्वारा पंजाब की सीमाएँ निर्धारित करते ही अगर सीमाएँ जाहिर कर दी जातीं तो अंग्रेजी सेना के अधिकारियों की निगरानी में लोगों की अदलाबदली होती। ब्रिटिश सत्ता के रहते हुए उनके अधिकारियों के हाथों ही यह काम हो जाता। सत्ता के हस्तान्तरण से पहले अगर यह काम होता तो सीमावर्ती प्रदेशों में कानून और सुव्यवस्था स्थापित होती। यह सावधानी लॉर्ड माउण्ट बेटन ने नहीं रखी, इसलिए यह नरसंहार हुआ। इस तरह का मत इतिहासवेत्ता अँडी रॉबर्ट्स ने व्यक्त किया है।

भारत को आजादी मिले साढ़े पाँच महीने हो चुके थे। विभाजन के फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमानों के कत्ल हो रहे थे। खून की नदियाँ बह रही थीं। लाखों लोग स्थानान्तरण कर रहे थे। जिन लोगों ने सत्ता सम्भाली वे देश के महान् नेता थे। विभाजन के परिणाम देखकर वे उलझन में पड़ गये थे। विचारशक्ति कुण्ठित हो गयी थी। उनका सारा जीवन, जीवन की आशाएँ और उभार आन्दोलन करने में और जेलों में ही बीत गया था। उन्हें शासन चलाने का कोई अनुभव नहीं था। ऐसे समय इतने बड़े देश के कारोबार की सारी जिम्मेदारी उनके कंधों पर आ पड़ी थी। इस जिम्मेदारी की अपेक्षा विभाजन के कारण खड़ा संकट अधिक प्रलयंकारी था। अनुभव के अभाव में आ पड़ी जिम्मेदारी और पूरे देश में हो रही घटनाएँ—इन सबके कारण नेताओं के मन टूट गये थे। बुढ़ापा सब पर हावी था। इस पृष्ठभूमि में नेहरू और पटेल ने शासन की बागडोर सम्भाली थी। उनका आत्मविश्वास भी कमजोर पड़ गया था। टूटे दिल से ये दो महान् नेता लॉर्ड माउण्ट बेटन से मिलने गये आर उनसे विनती की कि आप ही सरकार चलायें। नेहरू और पटेल की विनती लॉर्ड माउण्ट बेटन ने अस्वीकार कर दी।[१८] अगर लॉर्ड माउण्ट बेटन ने स्वीकृति दी होती तो भारतीय जनता के मन में कैसी भावनाएँ पैदा होतीं और उनका क्या परिणाम होता, इसकी कल्पना करना कठिन है। शायद विभाजन के दुख के फलस्वरूप बना हुआ विस्फोटक वातावरण तथा आजादी के बाद भी हमारे नेता शासन नहीं सम्भाल सकते, इस भावना से उत्पन्न विफलता के कारण अराजकता की स्थिति भी पैदा होती। कानून और व्यवस्था खतरे में पड़ जाती। अत: माउण्ट बेटन का निर्णय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। इसी बीच नेहरू और पटेल के मतभेद तीव्र होते गये। आजादी के आन्दोलन में एक-दूसरे के निकट सहयोगी साढ़े पाँच महीनों में शत्रु तो नहीं हुए,

पर मतभेद चरमसीमा पर पहुँच गये। मतभिन्नता बनी रही तो शासन चलाना कठिन है, ऐसी चर्चाएँ भी शुरू हो गयी थीं। इस दरार को कैसे मिटायें? वह शाम अगर न आती या उस दिन गांधीजी की हत्या न होती तो देश की राजनीति एक अलग मोड़ लेती। शायद अपने पचहत्तर बरस पूरे करने के पहले ही कांग्रेस का विघटन हो जाता। लेकिन वह शाम भारत के सामने एक नया संकट लेकर आयी। वह शाम राजनीति को नयी दिशा तो न दे सकी, पर वह एक भयानक शाम थी। उस शाम के अँधेरे में बाहर निकले उलूकों के अशुभ स्वरों की प्रतिध्वनि ५० वर्षों बाद भी सुनायी पड़ रही है। इसी कारण आज भी गांधी-हत्या का बड़ी धृष्टतापूर्वक समर्थन किया जाता है।

३० जनवरी, १९४८ की शाम को ४ बजे गांधीजी ने सरदार पटेल से कहा था कि, "सरदार, तुम दोनों में से एक को मंत्री पद छोड़ना होगा। तुम दोनों मंत्रिमण्डल में रहो यह ठीक नहीं होगा। दोनों के बीच मनमुटाव बढ़ना देश के लिए हानिकारक होगा। प्रार्थना के बाद जवाहर मुझसे मिलने आयेगा तब उसे भी यही कहनेवाला हूँ। नेहरू के साथ मुझे चर्चा करनी पड़ेगी। उसके लिए मैं अपना सेवाग्राम दौरा भी रद्द करूँगा। जब तक तुम दोनों का मनमुटाव दूर नहीं होता तब तक मैं दिल्ली नहीं छोड़ूँगा।" सरदार से बात होने के बाद प्रार्थना होनेवाली थी। गांधीजी ने जीवनभर सत्य और अहिंसा के मूल्य के साथ समय को भी उतना ही महत्त्वपूर्ण माना था। परन्तु पटेल से हो रही चर्चा इतनी गम्भीर थी कि जीवन में पहली बार गांधीजी समय का पालन न कर सके। चर्चा बढ़ गयी। प्रार्थना का समय टलने लगा तब गांधीजी को सहारा देनेवाली आभा की बेचैनी बढ़ती गयी। पटेल के साथ चल रही चर्चा में दखल देना भी उसे ठीक नहीं लगा। प्रार्थना का समय टल गया। देर होने लगी। तब उसने धीरे से घड़ी गांधीजी की ओर सरकाई। परन्तु कोई लाभ न हुआ। समय की पाबन्दी तोड़कर नेहरू-पटेल के मतभेदों को कैसे मिटाया जाय, इसकी चर्चा गांधीजी करते रहे। इससे दोनों के बीच के मतभेदों की तीव्रता स्पष्ट होती है।

सरदार पटेल से बात करते समय गांधीजी ने कहा था कि तुम या नेहरू दोनों में से किसी एक को मंत्री पद छोड़ना होगा। और यही बात प्रार्थना के बाद मैं नेहरू से कहनेवाला हूँ। यद्यपि

गांधीजी ने ऐसा कहा था फिर भी पटेल ही मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दें यही गांधीजी चाहते थे। सरदार पटेल को गांधीजी ने आखिरी चेतावनी दी थी।"[१९]

नेहरू और पटेल की मतभिन्नता दूर नहीं हुई। उसी दिन गांधीजी की हत्या हो गयी। परिणामत: गांधी-हत्या के बाद दोनों ने मतभेद दूर करने का भरसक प्रयास किया। पार्टी में सरदार पटेल प्रबल थे। नेहरू लोगों में प्रिय थे। गांधी-हत्या के बाद जवाहरलालजी को यह प्रतीत होने लगा कि प्रगतिशील नीतियों के सम्बन्ध में कांग्रेस मेरे मार्ग में रुकावट डालती है। पटेल के रहते और उसके बाद भी कांग्रेस कार्यकारिणी में नेहरू अल्पमत में थे। पटेल का समर्थक पक्ष प्रभावशाली था। नेहरू को इसका तीव्रता से अहसास हुआ, तब समाजवादी फिर से कांग्रेस में आये। इस सम्बन्ध में उन्होंने जयप्रकाश नारायण से बातचीत शुरू की। आजादी के आन्दोलन से ही पटेल समाजवादियों के विरोधी थे। इस विरोध के ही कारण कांग्रेस के अन्तर्गत कोई अन्य पक्ष या गुट हो इस बात का भी पटेल ने विरोध किया। इसीलिए समाजवादी पक्ष और महाराष्ट्र में शेतकरी कामगार संघ (आगे जाकर यही शे॰ का॰ पक्ष बना) कांग्रेस से अलग हुए। नेहरू और जयप्रकाश की चर्चा असफल रही। १४ सूत्री कार्यक्रम समयबद्ध तरीके से अमल में लाया जाय, यह आग्रह जयप्रकाश का था। इसी कारण चर्चा सफल न हो सकी। सरदार पटेल की मृत्यु के बाद की यह घटना है। पार्टी में और कार्यकारिणी में अपना बहुमत हो, इसी उद्देश्य से नेहरू समाजवादियों को कांग्रेस में लाना चाहते थे। जयप्रकाश ने नेहरू को लिखे पत्र में प्रश्न पूछा था कि समाजवादियों के कांग्रेस में आने पर हममें से कुछ को मंत्री पद मिलेगा। शायद कार्यकारिणी में आप बहुमत प्राप्त करेंगे। परन्तु कार्यक्रम को अमल में लाने के विषय में क्या होगा? जयप्रकाश के इस प्रश्न से उस समय की राजनीति की भी कल्पना की जा सकती है।

गांधीजी ने बड़ी स्पष्टता से कार्यकारिणी में अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। उन्होंने कहा था, “आन्दोलन के कारण हम एक-दूसरे के सहयोगी बने, उस क्षण से जवाहरलाल से अनेक मुद्दों पर मेरे मतभेद हैं। यह मैंने पहले भी कहा है। और आज भी कह रहा हूँ। मेरा राजनैतिक उत्तराधिकारी जवाहरलाल ही है। राजाजी नहीं।” इस बात पर ध्यान दें तो दोनों में से एक को त्यागपत्र देना होगा, ऐसा गांधीजी सरदार पटेल से कहते हैं तब उनका संकेत सरदार की ओर ही

था, यह स्पष्ट है। सरदार पटेल को गांधीजी ने अन्तिम इशारा दिया था ऐसा प्यारेलाल क्यों कहते हैं, यह भी स्पष्ट हो जाता है। गांधीजी जवाहरलाल को त्यागपत्र देने के लिए कहते ऐसा नहीं लगता। क्योंकि 'जवाहरलाल एक दिन मेरी ही भाषा बोलने लगेगा' यह विश्वास गांधीजी ने कार्यकारिणी में व्यक्त किया था। यद्यपि गांधीजी ने पटेल से कहा था कि दोनों में से एक को त्यागपत्र देना होगा फिर भी कौन त्याग-पत्र दे इस सम्बन्ध में गांधीजी के मन में पूरी स्पष्टता थी। गांधीजी के सम्बन्ध में बोलते हुए पटेल का रवैया आजादी के बाद कुछ बदल गया था। गांधीजी के जीवन के अन्तिम उपवास के समय सरदार उनसे मिले नहीं थे। वे दिल्ली से मुम्बई के दौरे पर चले गये थे। गांधीजी के आमरण उपवास की ओर सारी दुनिया की आँखें लगी थीं। पूरा भारत चिन्ता में था। कांग्रेस के सब नेता दिल्ली में ही रुके थे। गांधीजी के उपवास से पैदा हुई परिस्थिति की अपेक्षा ही दौरा अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं था, फिर भी पटेल दौरे पर निकल गये। पटेल ही त्यागपत्र दें ऐसा गांधीजी को क्यों लगता था? इस सम्बन्ध में गांधीजी का कार्यकारिणी में दिया भाषण अधिक प्रकाश डालता है। मंत्रिमण्डल का यह भाषण और त्यागपत्र की सूचना दोनों का समय अलग है। उस भाषण में भी पटेल पार्टी छोड़ दें ऐसा ही गांधीजी ने सूचित किया था। उन्होंने कहा था, "सरदार पटेल और राजेन्द्रबाबू प्रस्ताव के विषय में असन्तुष्ट हैं यह मैं जानता हूँ। परन्तु इस कारण दोनों का कार्यकारिणी से त्यागपत्र देना आवश्यक नहीं। सरदार पटेल और राजेन्द्रबाबू कांग्रेस से अलग हो जायँ तो कांग्रेस का काम रुकेगा नहीं। उन दोनों के कांग्रेस में रहने या न रहने से कोई फर्क नहीं पड़ता। कांग्रेस का कार्य चलता ही रहेगा। रुकेगा नहीं। दादाभाई, फिरोजशाह और तिलकजी ने कांग्रेस खड़ी की परन्तु उनके बाद कांग्रेस का कार्य खण्डित नहीं हुआ।"[२०]

आजादी प्राप्त होने से पहले ही गांधीजी ने कुछ अलग ढंग से पटेल से कह दिया था कि आप अगर कांग्रेस छोड़ना चाहते हैं तो छोड़ सकते हैं। और मृत्यु समीप है यह कल्पना भी न थी तब ३० जनवरी, १९४८ के दिन गांधीजी ने पटेल को त्यागपत्र के विषय में अन्तिम सुझाव दे दिया था। प्रार्थना में देर हो रही थी। चर्चा खतम करके गांधीजी जल्दी-जल्दी प्रार्था-सभा की ओर चल पड़े। उसी समय काठियावाड़ के दो कार्यकर्ता गांधीजी से मिलने आये। तब गांधीजी बोले, "अगर जीवित रहा तो प्रार्थना के बाद मिलेंगे।" कुछ समय पहले उन्होंने पटेल से कहा था कि "प्रार्थना

के बाद मैं नेहरू से बात करनेवाला हूँ।" वही गांधी प्रार्थना के लिए जाते हुए कह रहे थे कि 'अगर जीवित रहा तो'! इसके बाद कुछ मिनटों में ही उनके मुख से शब्द निकले 'हे राम'! कितना अजीब है यह सब! मैं १२५ वर्ष जीनेवाला हूँ ऐसा कहनेवाले गांधीजी के प्राणपखेरू ७८ वर्ष की आयु में उड़ गये। आपको सवा सौ साल कौन जीने देगा, ऐसा आजादी के पहले से ही कहनेवाले नाथूराम गोडसे ने उनकी जीवन-ज्योति बुझा दी।

गांधीजी की हत्या होनेवाली है, यह जानकारी केन्द्रीय गृह-विभाग को १५ दिन पहले ही मिल गयी थी। फिर भी गांधीजी के प्राण बचाये न जा सके। ३० जनवरी, १९४८ की शाम अगर न आती और गांधीजी नेहरूजी से चर्चा करते तो उससे क्या निष्पन्न होता? यह अगर-मगर का प्रश्न है। राजनीति में अगर-मगर कोई अर्थ नहीं रखता। फिर भी उसका आज विचार ही न किया जाय, यह भी ठीक नहीं। गांधीजी की सूचनानुसार अगर पटेल त्यागपत्र देते तो क्या पटेल समर्थक गुट कुछ न करता? कार्यकारिणी में पटेल का बहुमत था। नेहरू हमेशा अल्पमत में थे। पटेल गांधीजी की कई सूचनाएँ मानते नहीं थे। शायद त्यागपत्र की बात भी न मानते। कांग्रेस को विघटित कर उसका लोक सेवक संघ में रूपान्तर करने की गांधीजी की सलाह पटेल ने नहीं मानी थी। कांग्रेस को बनाये रखना हो तो आचार्य नरेन्द्रदेव या जयप्रकाश नारायण को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाय, यह गांधीजी का सुझाव पटेल ने माना नहीं था। त्यागपत्र की बात अगर वे न मानते तो क्या गांधीजी नेहरू से त्यागपत्र देने के लिए कहकर पटेल का रास्ता साफ करते? अगर नेहरू त्यागपत्र दे देते तो परिणाम क्या होता? अगर पटेल त्यागपत्र देते तो उनके अनुयायी चुपचाप सह लेते? उन दिनों गांधीजी और पटेल के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण नहीं रह गये थे। इसीलिए पटेल अगर त्यागपत्र देते तो उनके अनुयायी विरोध करते और शायद उसी समय कांग्रेस का विघटन हो जाता या गांधीजी और नेहरू के साथ पटेल के सम्बन्ध और बिगड़ जाते। ऐसी हालत में राजनीति किस दिशा में मुड़ती, कहना कठिन है।

हिन्दुत्ववादियों ने गांधीजी की हत्या की। कया गांधीजी के प्राण बचाना वास्तव में कठिन था या असम्भव ही था? इस तरह के प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास अगले अध्यायों में किया गया है। 'महात्मा गांधी की वजह से देश का विभाजन हुआ।' ऐसा प्रचार हत्या के समर्थन में

हिन्दुत्ववादी करते थे। बाद में हत्या के समर्थन में पचपन करोड़ रुपये का मामला उठाया गया। हिन्दुओं के मन में मुस्लिमों के प्रति द्वेष फैलाना ही इसका असली मकसद है। जब विभाजन और पचपन करोड़ रुपये का प्रश्न था ही नहीं तब कया हत्या के प्रयास नहीं हुए थे? क्या नाथूराम गोडसे को इन्हीं प्रयासों के सिलसिले में पकड़ा नहीं गया था? कया गांधी-हत्या की साजिश में नारायण आपटे शामिल नहीं था? क्या सेवाग्राम में गांधीजी को मारने के लिए खंजर लेकर आये लोगों में नाथूराम नहीं था? उस समय न तो विभाजन हुआ था न पचपन करोड़ रुपये का प्रश्न था। फिर उस समय गांधी-हत्या के प्रयास क्यों हुए? हिन्दुत्ववादी गांधी-विचार के विरोधी थे। जनता पर गांधी-विचार का प्रभाव था। जनता गांधीजी के पीछे खड़ी थी। इसीलिए उनकी एक पुकार पर सारा देश 'करेंगे या मरेंगे' इस निश्चय से अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन के लिए उठ खड़ा हुआ। जब तक गांधीजी के विचारों का प्रभाव है तब तक हिन्दुत्ववादी विचार फैल नहीं सकेगा, इसी कारण विभाजन या पचपन करोड़ रुपये का प्रश्न पैदा भी नहीं हुआ था तब भी गांधी-हत्या के प्रयास हुए। और इसी कारण उनकी हत्या हुई। हिन्दुत्ववादियों द्वारा की गयी गांधी-हत्या का यह सही कारण है, ये अगर वे बतायेंगे तो हिन्दुत्ववादियों के विषय में जनता के मन में घृणा पैदा होगी। इसीलिए सही कारण छिपाये रखकर विभाजन और पचपन करोड़ रुपये का मामला सामने रख लोगों से सहानुभूति पाने का प्रयास किया जाता है। हिन्दुत्ववादी इतने ढीठ हो गये हैं कि गांधीजी को देशद्रोही और रक्तपिपासु कहने में भी नहीं हिचकते। १५ नवम्बर को नाथूराम गोडसे को मुम्बई में फाँसी पर लटकाया गया। हिन्दुत्ववादी उस दिन को 'हुतात्मा दिन' मनाते हैं। गांधी-हत्या में नाथूगाम गोडसे के साथी गोपाल गोडसे आदि लोगों के तथा हत्या के समर्थकों के भाषण १५ नवम्बर, १९९३ को मुम्बई में हुए। उन भाषणों में गांधीजी को देशद्रोही तथा रक्तपिपासु कहा गया। गांधीजी की राख देश की नदियों में विसर्जित करने से नदियाँ अपवित्र हो गयी हैं, ऐसा भी कहा गया। अगर नदियाँ अपवित्र हो गयी हैं तो गंगा के पानी को पवित्र जल कहकर उसका बाजार क्यों लगाया गया? गंगाजल बेचा क्यों गया? हिन्दुत्ववादियों की दोमुँही बातें और दुहरा बर्ताव हमेशा ही रहा है। उनके प्रचार का यह एक मुख्य तरीका है। गड़बड़ी मचाना, झूठी बातें कहना, उलटा-सीधा प्रचार करना, इन सबका उपयोग बाबरी मस्जिद के प्रश्न में भी उन्होंने किया। गांधीजी

के विचार से प्रभावित जनता आजादी के आन्दोलन में शरीक हुई। परन्तु हिन्दू राज और हिन्दुत्व का पक्ष लेनेवाला राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ आजादी के आन्दोलन में शरीक नहीं हुआ। इस देश की जनता हिन्दू महासभा और हिन्दुत्ववादियों के पीछे नहीं गयी। सामान्य लोगों में द्वेष का जहर जल्दी फैलता है, फिर भी हिन्दुत्ववादियों के विचारों को जनता का समर्थन-सहयोग नहीं मिला। सारा देश गांधीजी के विचार से प्रभावित था। उनके शब्द से देश हिलता था और ब्रिटिश साम्राज्य डाँवाडोल होता था। 'उचललेस तू मीठ मूठभर (अन्) साम्राज्यचा खचला पाया।' (तुमने मुट्ठीभर नमक क्या उठाया, साम्राज्य की नींव ही ढह गयी)। इन शब्दों में कवि ग॰ दि॰ माडगुलकर ने गांधीजी की शक्ति का वर्णन किया है। यह शक्ति व्यक्ति की नहीं थी। गांधी-विचार से निर्मित देश की शक्ति थी। अंग्रेजी साम्राज्य गांधी से डरता था। हिन्दुत्ववादी उनके सामने टिकते नहीं थे। इसीलिए हिन्दुत्ववादी गांधीजी से द्वेष रखते थे। इसी द्वेष के कारण गांधी-हत्या हुई। गांधी न होते तो विभाजन न होता, ऐसा वे कहते हैं। महाराष्ट्र टाइम्स के सम्पादक गोविन्द तलवलकर ने २६ नवम्बर, १९९३ के महाराष्ट्र टाइम्स में बी॰ आर॰ नन्दा की लिखी 'गांधी एण्ड हिज क्रिटिक्स' पुस्तक का परिचय दिया है। वे लिखते हैं : "गांधी न होते तो विभाजन ही न होता, ऐसा गांधीजी के आलोचक मानते हैं। सभ्यता की सीमाएँ लाँघकर बहकने को ही कुछ लोग पुरुषार्थ मानने लगे हैं।" गांधीजी के कारण हिन्दुत्ववादियों की विचार-प्रणाली में बाधा आयी, इसीलिए गांधीजी की हत्या की गयी। यही सत्य है। हत्या का और कोई कारण नहीं है।

विभाजन सम्बन्धी महात्मा गांधी के मतों की चर्चा अब तक की गयी। पर विभाजन से पूर्व की राजनैतिक पृष्ठभूमि समझना भी आवश्यक है। महात्मा गांधी के उदय से पहले ही सन् १९०९ में विभक्त मतदाता संघ स्थापित किये गये थे। "अंग्रेज शासकों से राजनैतिक सुधार हासिल करने की धुन भारतीय राजनीतिज्ञों पर सवार थी। गोपाल कृष्ण गोखले का पैर भी इस मामले में फिसला हुआ प्रतीत होता था। वस्तुत: गोखलेजी को सरकार से कड़े शब्दों में कहना चाहिए था कि भले ही संवैधानिक सुधार अमल में न आये पर विभक्त मतदाता संघ की योजना हम कतई स्वीकार नहीं करेंगे। परन्तु गोखलेजी ने ऐसा नहीं कहा।"[२१]

"नामदार गोखले ने मृत्यु से पहले एक योजना बनायी थी। वह योजना भी हिन्दू-मुस्लिम एकता की थी। लोकमान्य तिलक ने लखनऊ में समझौते का मसविदा तैयार किया था। मुस्लिमों को कुछ अधिक मिले तो हर्ज नहीं, पर आजादी के आन्दोलन का तिहरा स्वरूप दुहरा हो ऐसी दोनों नेताओं की इच्छा थी ।"[२२]

गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उनसे पहले लोकमान्य तिलक और नामदार गोखले ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थन किया था। ये सभी राजनैतिक नेता थे। अनेक धर्मों, पंथोंवाले भारत जैसे देश में सबमें एकता लाये बिना आजादी का आन्दोलन सफल नहीं हो सकता, इस तथ्य का इन नेताओं को सही आकलन था। उसी तरह राजनीति से जिनका सम्बन्ध नहीं था वे हिन्दू धर्माभिमानी स्वामी विवेकानन्द भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के आग्रही थे। "अपनी मातृभूमि का विचार करें तो हिन्दू-धर्म और इस्लाम-धर्म का समन्वय यही एक आशास्थान है। वैदिक मस्तिष्क और इस्लामी देह धारणकर कल के भारत का निर्माण होगा।"[२३]

दूरदृष्टि रखनेवाले जिन नेताओं ने भारत की भलाई का विचार किया और भारत की भलाई किन बातों में है इसका जिन्हें एहसास हुआ, उन सब नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का विचार रखा था। हिन्दू-मुस्लिम एकता के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द के विचार और महात्मा गांधी के विचारों में क्या अन्तर है? 'महात्मा गांधी मुस्लिमों का तुष्टिकरण करते हैं', यह कहनेवाले विवेकानन्द के विषय में वही बात क्यों नहीं कहते? १९१६ में तिलकजी और जिन्ना के बीच लखनऊ-समझौता हुआ। इस समझौते ने द्विराष्ट्रवाद की अवधारणा को सिद्धान्तत: स्वीकृति दी थी। "विभाजन के अपराधियों की सूची बनानी हो तो उसमें लोकमान्य तिलक का नाम भी रखना होगा। तिलकजी के ही नेतृत्व में लखनऊ-समझौता हुआ था अत: तिलक को अपराधी कहने के सिवाय कोई चारा नहीं है।"[२४]

विभाजन के बीज १९०९ के विभक्त मतदाता संघ की स्थापना से ही बोये गये। तिलकजी के नेतृत्व में हुए लखनऊ समझौते से इस बीज को पानी और खाद मिला। और काल की कोख में विभाजन का बीज अंकुरित होने लगा। किसी एक नेता के माथे पर विभाजन का दोष नहीं लगाया जा सकता। महात्मा गांधी ने विभाजन टालने के भरसक प्रयास किये। निष्पक्ष और निर्मल

मन से गांधीजी के प्रयास को समझ लेने पर कोई भी विवेकशील मनुष्य विभाजन का दोष गांधीजी के मत्थे नहीं मढ़ेगा।

महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात् सरदार पटेल ने हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर॰ एस॰ एस॰) के सन्दर्भ में श्यामाप्रसाद मुखर्जी को १८ जुलाई, १९४८ को एक पत्र लिखा था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू महासभा की राजनीति ने जो विष फैलाया उसी के कारण गांधीजी की हत्या हुई, ऐसा उस पत्र में लिखा था। "संघ और हिन्दू महासभा की करतूतों के कारण, खासकर संघ की करतूतों के कारण, महात्मा गांधी की हत्या हुई, ऐसी हमारी (अर्थात् गृहविभाग की) जानकारी है। हिन्दू महासभा के कट्टरपंथियों का इस हत्या में हाथ होगा। इस सम्बन्ध में मेरे मन में सन्देह नहीं है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने सरकार के अस्तित्व को ही ललकारा है। संघ विध्वंसक और हिंसात्मक करतूतों में लगा है।" यह भी सरदार पटेल ने मुखर्जी के नाम अपने पत्र में लिखा है। (सरदार पटेल कॉरिस्पॉन्डेन्स : खण्ड ६) सर संघ चालक माधवराव गोलवलकर को भी सरदार वल्लभभाई पटेल ने ११ सितम्बर, १९४८ को पत्र लिखा था कि, "प्रतिशोध की भावना से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ मुस्लिमों पर आक्रमण कर रहा है। निष्पाप मुस्लिम स्त्री-पुरुष और बच्चों पर, वे मुस्लिम हैं इसी एक कारण से, संघ अत्याचार कर रहा है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के नेताओं के भाषण जातीय विद्वेष की आग से भरे हैं। संघ के इस जातीय विद्वेष ने ही गांधीजी की जान ली। संघ के लोगों ने गांधी-हत्या के बाद मिठाई बाँटकर खुशियाँ मनायीं।" ४ फरवरी, १९४८ के पत्रक में सरदार पटेल ने लिखा है कि, "राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लोगों ने घातक करतूतें शुरू की हैं। देश के कई हिस्सों में संघ के लोगों ने मारकाट शुरू की है। आगजनी, डकैती और लूटपाट करके अनेकों की जानें ली हैं। गांधीजी की हत्या भी संघ ने ही की है।'' (गोलवलकर गुरुजी को लिखा पत्र और ४ फरवरी, १९४८ का पत्रक, २१ अक्तूबर, १९९० के टाइम्स ऑफ इण्डिया से।) सरदार पटेल की ही वजह से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर लगी पाबन्दी दूर हुई। अत: ऊपर के निष्कर्ष किसी कड़े संघ-विरोधी व्यक्ति के नहीं माने जायेंगे। अत: उन निष्कर्षों को अधिक महत्त्व प्राप्त होता है। अपने विरोधियों पर जानलेवा हमले करना, उनकी हत्याओं का समर्थन करना, इस सम्बन्ध में सरदार पटेल के पास जो जानकारी थी उसी

के आधार पर उन्होंने डॉ॰ मुखर्जी और गोलवलकर गुरुजी को पत्र लिखे थे। पटेल राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रति कुछ सहानुभूति रखते थे। संघ को कांग्रेस की युवा शाखा बनायी जाय, ऐसा प्रस्ताव नेहरू की अनुपस्थिति में पटेल ने स्वीकृत करवा लिया था। गांधी-हत्या के बाद यह तस्ताव हुआ था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से इतना ममत्व होने के बावजूद पटेल ने संघ के विषय में जो बातें लिखी हैं उनसे संघ का स्वरूप ही उजागर होता है। ऐसा कहा जाता है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को बदलने की दृष्टि से पटेल संघ को कांग्रेस की युवा शाखा बनाना चाहते थे।

१८. *फ्रीडम एट मिडनाइट: डॉमिनिक लॉपिए और लॉरी कॉलिन्स।*

१९. *महात्मा गांधी: दी लास्ट फेज: खण्ड २, प्यारेलाल*

२०. *महात्मा:* खण्ड ६, डी॰ जी॰ तेन्डुलकर।

२१. *महात्मा गांधी चे मुस्लिम राजकारण:* वसंत पलशीकर, दैनिक पुढारी, १४ नवम्बर, १९९३।

२२. *महाराष्ट्र टाइम्स:* गोविन्द तकवलकर : ऊपर जिक्र किया लेख : २६ नवम्बर, १९९३।

२३. *स्वामी विवेकानन्द:* स्वामी विवेकानन्द ग्रंथावली, संचयन।

पचपन करोड़ का मामला

महात्मा गांधी की हत्या का औचित्य सिद्ध करने के लिए विभाजन के अलावा पचपन करोड़ रुपये को एक कारण बताया जाता है। पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को दिये जायँ, ऐसा आग्रह गांधीजी का था, इसलिए पाकिस्तान को पैसे दिये गये। पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायँ इसलिए गांधीजी ने उपवास किया। इससे पैदा हुए असन्तोष तथा गुस्से के कारण गांधीजी की हत्या की गयी, इस तरह का प्रचार किया जाता है। देश का विभाजन, उसके बाद हुए दंगे और मारकाट, निर्वासितों की बढ़ती संख्या और इस पृष्ठभूमि में पचपन करोड़ का मामला कितना छोटा या मामूली है यह विस्तृत चर्चा किये बगैर समझ में नहीं आयेगा।

विभाजन के बाद भारत की सेना, सम्पत्ति और स्थायी कोष (रिजर्व फण्ड) का बँटवारा किया गया। संयुक्त परिवार में जब दो भाई अलग होते हैं तब पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा होता है, वैसा ही यह बँटवारा था। दुर्भाग्य से विभाजन हुआ, वह टला नहीं। फिर सम्पत्ति और धन-दौलत का बँटवारा अनिवार्य हो गया। भारत की तिजोरी में उस समय तीन सौ पचहत्तर करोड़ रुपये थे। उसका बँटवारा हुआ। पाकिस्तान को रुपयों की तुरन्त आवश्यकता है, इसे ध्यान में रखते हुए २० करोड़ रुपयों की पहली किश्त भी भारत ने पाकिस्तान को दे दी थी। कानूनन पाकिस्तान को कितने रुपये देने होंगे, यह दोनों देशों के बीच समझौते से तय हुआ। उसके अनुसार और पचपन करोड़ रुपये भारत को देना था। दिसम्बर, १९४७ के समझौते के अनुसार भारत ने यह पैसा निश्चित समय के भीतर देने का लिखित आश्वासन पाकिस्तान को दिया था। इस बीच पाकिस्तान ने घुसपैठियों द्वारा कश्मीर पर हमला किया। तब, जब तक कश्मीर की समस्या हल नहीं होती तब तक पाकिस्तान को पैसे नहीं दिये जायेंगे, ऐसी भूमिका भारत ने सरदार पटेल के आग्रह के कारण अपनायी। उसके बाद पण्डित नेहरू ने इस भूमिका का खुला समर्थन करना शुरू किया। २ जनवरी, १९४८ को पत्रकार परिषद् में नेहरूजी ने कहा कि पचपन करोड़ रुपये देना स्थगित किया है। इस परिषद् में नेहरूजी ने कहा, "ऐसी हालत में किसी भी देश ने यह रकम देना अस्वीकार किया होता। पर हम अस्वीकार नहीं कर रहे हैं। पाकिस्तान को पैसे देने का समझौता हमने किया है। परन्तु अन्य प्रश्नों पर समझौता होने पर यह रकम हम पाकिस्तान को देने के लिए

तैयार हैं।" नेहरूजी की भूमिका का कुछ सैद्धान्तिक आधार जरूर था परन्तु वह आधार मजबूत नहीं था, थोड़ा ढीलाढाला था। परन्तु वल्लभभाई की भूमिका नेहरूजी से काफी भिन्न थी। वे पाकिस्तान को पैसे देने के लिए बिलकुल राजी नहीं थे। पाकिस्तान को पैसे न देकर उन पैसों का उपयोग निर्वासितों के पुनर्वास के लिए किया जाय, ऐसी उनकी राय थी। यह समझौता करने से पहले पटेल और नेहरूजी ने गांधीजी से चर्चा नहीं की थी। आजाद भारत का दूसरे प्रभुत्वसम्पन्न देश के साथ किया हुआ यह पहला समझौता था। पहले समझौते पर अमल करना पण्डित नेहरू और सरदार पटेल दोनों स्थगित कर रहे थे। नेहरूजी इसका सम्बन्ध पाकिस्तान से जुड़े हुए अन्य प्रश्नों से जोड़ रहे थे तो गृहमंत्री उस रकम का उपयोग पुनर्वास के लिए करने की बात कर रहे थे। देश का एक बड़ा अदेश अलग करने के लिए जो नेता तैयार हुए, गांधीजी को अँधेरे में रखकर तैयार हुए, उन नेताओं का पचपन करोड़ देने में आनाकानी करना उचित नहीं था। भारत का विभाजन कर कुछ हिस्सा दे देने की तुलना में पचपन करोड़ देना मामूली बात थी, ऐसा ही कहना पड़ेगा। पाकिस्तान के साथ सभी प्रश्न हल हुए बगैर पचपन करोड़ रुपये नहीं दिये जायेंगे, यह नेहरूजी की भूमिका समझी जा सकती है, लेकिन तब समझौते में वैसी शर्त रखना जरूरी था। सब प्रश्न हल हुए बगैर पचपन करोड़ रुपये नहीं दिये जायेंगे, ऐसी शर्त समझौते में क्यों नहीं रखी गयी? आजाद देश की हैसियत से पहला ही समझौता करना और उसका पालन न करना, इससे सारी दुनिया में भारत की अप्रतिष्ठा होती। गांधीजी को यह मंजूर नहीं था, इसी कारण पण्डित नेहरू और सरदार पटेल की भूमिका गांधीजी को अखरती थी। नेहरूजी की भूमिकानुसार समझौते में ही वह शर्त रखी जाती तो पैसे की लेन-देन का समझौता ही न हो पाता और एक अलग प्रकार की राजनीति जन्म लेती । उसे टालने के लिए पैसे देना मंजूर किया, पर प्रत्यक्ष पैसे देने में आनाकानी की गयी।

पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देने के प्रश्न पर पाकिस्तान से हुए समझौते के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री नेहरू और हस्ताक्षर करनेवाले गृहमंत्री पटेल की भूमिकाओं में काफी अन्तर था। अन्तरिम सरकार में सरदार मृहमंत्री थे, और लियाकत अली अर्थमंत्री थे। सरदार को लियाकत अली का जो अनुभव आया, वह अच्छा नहीं था। और उन दिनों सरदार पटेल की कूटनीति की

कलई खुल गयी। इन दोनों बातों का क्षोभ सरदार के मन में था। उनके मन में प्रतिशोध की भावना जगी। उसी भावना के कारण पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये न देने का निर्णय उन्होंने लिया। पाकिस्तान को ये रुपये न देने से उसके सामने आर्थिक संकट खड़ा हो जायेगा और यही सरदार वल्लभभाई चाहते थे। वे अपने विरोध को सैद्धान्तिक रूप दे रहे थे।

पाकिस्तान से सम्बन्धित सब प्रश्न हल होने पर पचपन करोड़ देने का तय हुआ है, ऐसा सरदार पटेल का दावा था। जब तक कश्मीर का प्रश्न हल नहीं होता, तब तक पाकिस्तान को पैसे नहीं दिये जायेंगे, ऐसा तय हुआ है, ऐसा पटेल कह रहे थे। पर अपनी बात की पुष्टि के लिए वे समझौते की शर्तों का आधार नहीं ले रहे थे, इसपर भी ध्यान देना आवश्यक है। कश्मीर सहित पाकिस्तान विषयक अन्य सब प्रश्न हल होने पर ही पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायेंगे ऐसा तय हुआ था तो वह शर्त समझौते में समाविष्ट करना आवश्यक था। पर समझौते में यह शर्त नहीं थी। वास्तव में वल्लभभाई पटेल की कूटनीति का दिवाला निकल गया था। अन्तरिम सरकार में अर्थविभाग के बदले गृहविभाग का आग्रह रखा तब, और फिर दूसरी बार भारत का पहला अन्तर्राष्ट्रीय समझौता करते समय कश्मीर सहित पाकिस्तान के साथ सब प्रश्न हल होने के बाद पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायेंगे, यह शर्त समझौते में समाविष्ट करना या तो वे भूल गये या सफल नहीं हो पाये। तब दूसरी बार उनकी कूटनीति का दिवाला निकल गया। अर्थात् पचपन करोड़ रुपये और पाकिस्तान के साथ अन्य प्रश्नों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं था। फिर भी कश्मीर सहित सब प्रश्न हल होने के बाद पैसे दिये जायेंगे, पटेल की यह भूमिका भी गलत मानी जायेगी।

कश्मीर सहित पाकिस्तान के साथ सब प्रश्न हल होने पर पचपन करोड़ रुपये देने का तय हुआ है, वैसी शर्त समझौते में है, यह बात इस विवाद की समय पटेल दिखा नहीं सके। समझौते के समय जो चर्चाएँ हुईं उस समय के अपनी राय का आधार लेकर समझौते में मंजूर किये हुए पचपन करोड़ रुपये देना पटेल अस्वीकार कर रहे थे।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने १२ जनवरी, १९४८ को पचपन करोड़ रुपयों से सम्बन्धित एक विस्तृत वक्तव्य अखबारों को जारी किया था। सरदार पटेल के पत्रों का छठा खण्ड प्रकाशित हुआ

है। उसमें यह पूरा वक्तव्य दिया है। अत: उसकी सचाई के सम्बन्ध में प्रश्न ही पैदा नहीं होता। पार्टिशन कौंसिल में अखण्ड भारत की जायदाद, स्थायी कोष (रिजर्व फण्ड) और कर्ज का विचार किया गया। सरदार पटेल १२ जनवरी, १९४८ के वक्तव्य में कहते हैं, "२६ नवम्बर, १९४८ की चर्चा में कश्मीर प्रश्न पर सामंजस्यपूर्ण चर्चा हुईं। दूसरे दिन २७ नवम्बर को स्थायी कोष का बँटवारा तथा कर्ज के दायित्व पर चर्चा हुई और अनौपचारिक रूप से उस सम्बन्ध का समझौता तय हुआ। परन्तु २७ नवम्बर की शाम को ही पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने समझौते की जानकारी अखबारों को दे दी। दूसरे दिन २८ नवम्बर की बैठक में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री, अर्थमंत्री तथा मैं स्वयं (पटेल) उपस्थित थे। २८ नवम्बर की बैठक में मैंने अपना वक्तव्य पढ़कर सुनाया। इस वक्तव्य में मैंने कहा था कि कश्मीर का प्रश्न हल होने से पहले पैसे देने के लिए हम बँधे हुए नहीं हैं।"

सरदार पटेल ने २८ नवम्बर की बैठक में यह वक्तव्य पढ़ा। यह वल्लभभाई पटेल का मत था। पढ़कर सुनाया हो या जबानी बताया हो, उससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता। कया पटेल का यह मत पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने स्वीकार किया था? यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। वल्लभभाई ने इस वक्तव्य में उस बारे में कोई मतप्रदर्शन नहीं किया है। स्वयं के कथन को ही इसमें दुहराया है। पटेल के वक्तव्य के बाद पाकिस्तानी प्रतिनिधियों ने बैठक का बहिष्कार किया। उनके बहिष्कार से यह बात साफ हो जाती है कि कश्मीर का प्रश्न और पचपन करोड़ का पटेल का जोड़ा हुआ सम्बन्ध उन्हें मंजूर नहीं था। अर्थात वह पटेल का मत था, दोनों पक्षों द्वारा स्वीकृत किया हुआ निर्णय नहीं था।

पार्टिशन कौंसिल में विवाद खड़ा होने पर मध्यस्थ पंचमण्डल के सामने विवाद रखने का तय हुआ था। अनौपचारिक रूप से किया गया समझौता दिसम्बर, सन् १९४७ को पार्टिशन कौंसिल के सामने रखा गया। उसमें भी कश्मीर की समस्या हल होने पर ही पचपन करोड़ रुपये दिये जायेंगे, ऐसा समझौता हुआ है, यह बात नहीं कही गयी थी। ८ और ९ दिसम्बर को लाहौर में मध्यस्थ पंचमण्डल की बैठक हुई। इस बीच पचपन करोड़ रुपये हासिल करने का प्रयास पाकिस्तान करता रहा, यह सरदार पटेल ने ही कहा है। परन्तु कश्मीर का प्रश्न हल होने पर ही पैसे देने की शर्त समझौते में है, फिर भी शर्त नजरअन्दाज कर पाकिस्तान पैसे माँग रहा है, ऐसा

पटेल ने एक बार भी नहीं कहा। १२ जनवरी को अखबारों को जारी वक्तव्य में वे इतना ही कहते हैं कि कश्मीर का प्रश्न हल होने तक पैसे नहीं मिलेंगे, ऐसा मैंने बड़े जोर से बैठक में कहा। "'यह शर्त समझौते में है' ऐसा पटेल क्यों नहीं कहते थे? सरदार पटेल का मत जानने के बाद ही पाकिस्तान ने पैसे प्राप्त करने की जल्दबाजी शुरू की, यह इससे स्पष्ट होता है। अनौपचारिक रूप से जो तय हुआ था वह पाकिस्तान के उच्चायुक्त ने ७ दिसम्बर, १९४७ को पत्रकार परिषद् में जाहिर किया। सारा समझौता पूरा होने तक वह जाहिर नहीं किया जायेगा, ऐसा तय हुआ था। फिर भी वह जाहिर किया गया, ऐसा भी पटेल कहते हैं। वह सही भी होगा, परन्तु यह प्रश्न औचित्य का है।

कश्मीर सहित सारे प्रश्न हल होने तक पचपन करोड़ नहीं दिये जायेंगे, ऐसी शर्त समझौते में है, ऐसा १२ जनवरी के वक्तव्य में सरदार पटेल नहीं कहते हैं। बैठक में मैंने क्या कहा, अपना मत किस तरह रखा, यही वक्तव्य में कहा। पहली कुछ बैठकों में पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने मेरी बात का विरोध नहीं किया। केवल २ दिसम्बर को पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने मेरी बात पर आपत्ति उठायी। इसी बात पर सरदार पटेल अपने वक्तव्य में अधिक बल देते हैं। किसी के मत पर आपत्ति नहीं उठायी इसका अर्थ उसका मत ही निर्णय में बदल गया, ऐसा नहीं होता। सरदार पटेल १२ जनवरी के वक्तव्य में कहते हैं, "३० दिसम्बर, १९४७ को पाक के प्रधानमंत्री को हमने एक तार भेजा, उसमें हमने कहा कि हम समझौते से बँधे हुए हैं, पर कश्मीर के विषय में पाकिस्तान की आक्रामक भूमिका को देखते हुए हम पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को देना आगे के लिए टाल रहे हैं।" इस तार से भी स्पष्ट होता है कि कश्मीर का प्रश्न हल होने पर पैसे दिये जायेंगे, ऐसी शर्त समझौते में नहीं थी। कश्मीर सहित सब प्रश्न हल होने पर पैसे दिये जायेंगे, यह भारत की भूमिका थी। यही वल्लभभाई पटेल का मत था। पार्टिशन कौंसिल के इतिवृत्त में भी कहा है कि, "पाकिस्तान को पहले २० करोड़ रुपये दिये हैं। अब पचपन करोड़ देने बाकी हैं। पचपन करोड़ देने के बाद पाकिस्तान को कुछ देना बाकी नहीं रहता है। अखण्ड भारत के स्थायी कोष (रिजर्व फण्ड) से पाकिस्तान को ये पचपन करोड़ रुपये देने के बाद भारत पर पाकिस्तान का कोई देना रहता नहीं है।"

अतः यह स्पष्ट है कि भारत द्वारा कुल पचहत्तर करोड़ रुपये पाकिस्तान को देने थे। उनमें से २० करोड़ पहले ही दे दिये थे। बचे पचपन करोड़ रुपये देना भारत ने स्वीकार किया था। कश्मीर का प्रश्न हल होने पर भारत को पैसे देने हैं, ऐसी कोई शर्त समझौते में नहीं थी। पार्टिशन कौंसिल में सरदार पटेल ने यह जरूर कहा था कि कश्मीर सहित सब प्रश्न हल हुए बगैर पैसे नहीं मिलेंगे। पर यह सरदार का मत था, समझौते की शर्त नहीं।

गांधीजी ने बहुत दिनों तक इस पर विचार किया। ६ जनवरी, १९४८ को वे गवर्नर जनरल लॉर्ड माउण्ट बेटन से मिले। इस मामले के कानूनी पहलू समझ लिये। इसे समझने के लिए वे नेहरू-पटेल के पास नहीं गये। लॉर्ड माउण्ट बेटन ने इस तरह का अभिप्राय व्यक्त किया कि, "समझौते के अनुसार पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये न दिये तो *'समझौते का पालन न करनेवाला राष्ट्र'* ऐसी छवि सारी दुनिया में भारत की बनेगी। फलत: अन्य राष्ट्र भारत से कोई व्यवहार करने में हिचकिचायेंगे। वे भारत पर विश्वास नहीं करेंगे। दुनिया में भारत के शब्द की कोई कीमत नहीं रहेगी। अतः ये पैसे रोक रखने से या दूसरे किसी काम में खर्च करने से भारत के मुँह पर कालिख लग जायेगी। साथ ही कानूनन भी ऐसा करना उचित नहीं होगा।" गांधीजी ने कहा कि कानूनी बातों पर सोचने की मुझे आवश्यकता नहीं। परन्तु यह नैतिकता की दृष्टि से भी गलत है। यही सोचकर पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायँ, यह उनकी भूमिका थी। पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को दिये जायँ, इस माँग के लिए गांधीजी ने १३ जनवरी, १९४८ से आमरण उपवास नहीं किया था। दिल्ली में शान्ति-स्थापना के लिए यह अनशन था। यह अनशन पचपन करोड़ के लिए था, यह हिन्दुत्ववादियों का प्रचार झूठा है। झूठा प्रचार केवल इतनी-सी बात तक ही सीमित नहीं था। हिन्दुओं पर जजिया कर की तरह कर लगाकर यह पैसा इकट्ठा किया जानेवाला है, ऐसा प्रचार भी जोरशोर से किया जाता था। यह बात न॰ र॰ फाटक ने अपनी पुस्तक 'भारतीय राष्ट्रवादाचा विकास' में लिखी है। भारत के स्थायी कोष से ये पैसे देने की बात समझौते में स्वीकृत की गयी थी, फिर भी बाद में पैसे देने से इनकार करना, वचन न निभाने जैसा था। 'लोगों पर कर लगाकर पैसा वसूल किया जानेवाला है'—इस तरह का प्रचार कर लोगों के मन में जहर फैलाया गया। राजनीति में नैतिकता और साधन-शुद्धि को महत्त्व देनेवाले गांधीजी

पाकिस्तान को पैसा दिया जाय, ऐसा कह रहे थे। गांधीजी ऐसा क्यों कह रहे हैं, यह जनता के सामने स्पष्ट करने का नेहरू और पटेल ने कोई प्रयास नहीं किया। परिणामत: गांधीजी के विषय में गलतफहमियाँ फैलती गयीं। एक ओर हिन्दुत्ववादियों का जहरीला प्रचार और दूसरी ओर जिन्दगीभर गांधीजी का साथ देनेवाले नेताओं का इस सम्बन्ध में मौन रहना, इस कारण गांधीजी के प्रति भ्रम फैला। भारत के हिस्से में आये पैसों से पाकिस्तान को पैसे दिये जायँ, ऐसा गांधीजी ने नहीं कहा था। तय की हुई बातों के अनुसार पाकिस्तान का हिस्सा पाकिस्तान को दिया जाय, इतना ही वे कह रहे थे। पैसे देने से इनकार अर्थात् नैतिक आचरण का निषेध। पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को दिये जाने के लिए हिन्दुत्ववादियों का विरोध था। इन्हीं हिन्दुत्ववादियों ने देश टुकड़ों में बँट रहा था, तब उसके विरोध में कोई आन्दोलन खड़ा नहीं किया। गांधीजी ने पचपन करोड़ रुपये देने का आग्रह रखा, ऐसा कहते हुए उनकी हत्या करने को ही हिन्दुत्ववादियों ने बहादुरी समझा। विभाजन के विरोध में आन्दोलन कर बहादुरी दिखाने के बजाय पचपन करोड़ रुपयों का बहाना सामने रखकर शस्त्रहीन महात्मा के पैर छूने के बहाने उनकी हत्या करने में कौन-सी बहादुरी है? पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायँ, ऐसा अकेले गांधीजी ही नहीं कह रहे थे। लॉर्ड माउण्ट बेटन, राजाजी, रिजर्व बैंक के तत्कालीन गवर्नर चिन्तामणराव देशमुख आदि भी इसी मत के थे। फिर गांधी के हत्यारों ने उन लोगों की हत्या क्यों नहीं की? राजनीति की दृष्टि से गांधीजी की तुलना में ये लोग कम प्रभावशाली थे, इसलिए उनकी हत्या का कोई प्रश्न नहीं उठता, ऐसा शायद कहा जायेगा। ऐसा कहना गांधी-हत्या के पीछे की अलग राजनीति मानने जैसा ही है। पचपन करोड़ रुपये देने चाहिए, ऐसा कहनेवाले लोग गांधीजी जितने प्रभावशाली नहीं थे इसलिए उनकी हत्या का सवाल ही नहीं था। गांधीजी प्रभावशाली थे इसलिए उनकी हत्या की। इसका साफ अर्थ है कि पचपन करोड़ पाकिस्तान को दो, ऐसा कहनेवालों से वे नाराज नहीं थे। वे मात्र गांधीजी से नाराज थे। उनका गुस्सा गांधीजी पर इसलिए था कि उनकी राजनीति के कारण हिन्दुत्ववादियों का विचार लोंगों ने स्वीकार नहीं किया था। इस प्रतिशोध की भावना से हत्या की गयी। गांधीजी का नेतृत्व, उनके विचार, हिन्दुत्ववादी विचार के फैलने में रुकावट बन रहे थे, इसलिए जब विभाजन और पचपन करोड़ का मामला नहीं था, तभी से यानी १९३४ से

समय-समय पर गांधी-हत्या के प्रयास होते रहे। हिन्दुत्ववादियों ने पचपन करोड़ का मिथ्या दोष लगाया। विभाजन और पचपन करोड़ रुपये के कारण गांधीजी की हत्या हुई, हिन्दुत्ववादियों के इस दावे में जरा भी तथ्य होता, तो आजादी के पूर्व १९३४ से गांधी-हत्या के प्रयासों का कोई मतलब ही नहीं रह जाता।

योजना आयोग के भूतपूर्व सदस्य रा॰ कृ॰ पाटील ने पचपन करोड़ रुपयों के सम्बन्ध में जनवरी, १९९४ के 'आजचा सुधारक' में लिखा है, "पाकिस्तान को जो पैसे देने हैं वे फिलहाल न देने का भारत सरकार का निर्णय गलत था। क्योंकि यह देना पहले ही निश्चित हुआ था। जिन शर्तों पर विभाजन हुआ, उन शर्तों का वह एक हिस्सा था। वस्तुत: १५ अगस्त, १९४७ को ही वे पैसे देने चाहिए थे। इतने दिनों तक वे क्यों रोककर रखे गये, यह मैं नहीं कह सकता, पर पाकिस्तान द्वारा माँग करते ही वे पैसे देने चाहिए थे। पाकिस्तान की माँग पर यह कहना कि 'हम नहीं देंगे।' पैसा देना नकारने जैसा ही होता। यह कोई अनावश्यक उदारता नहीं थी, कर्तव्यपूर्ति थी, यह एकदम साफ है।" चिन्तामणराव देशमुख का मत भी इसी तरह का था, "हम पर गोलियाँ बरसाने के लिए उन पैसों का उपयोग होगा, इसलिए पैसे न दिये जाय, यह विचार गलत था। पाकिस्तान पैसों का उपयोग किस तरह करे, यह तय करनेवाले हम कौन होते हैं। युद्ध की परिस्थिति में पुराना देय नकारना यह भूमिका गलत थी।" देना पहले निश्चित हुआ था। तब युद्ध की स्थिति नहीं थी। माँगे जाने पर वे पैसे देना आवश्यक था। पाकिस्तान ने भारत पर युद्ध थोपा यह कहना इतिहाससंगत नहीं है। जब पाकिस्तान ने कश्मीर पर हमला किया तब कश्मीर स्वतंत्र राष्ट्र था। विलीनीकरण नहीं हुआ था। इसलिए कश्मीर के राजा ने मदद माँगी, तब भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड माउण्ट बेटन ने शर्त रखी कि पहले भारत में विलीनीकरण करो, फिर मदद मिलेगी। रा॰ कृ॰ पाटील ने पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देना क्यों सही था इसका बहुत अच्छा विवेचन किया है। कश्मीर-प्रश्न हल हुए बगैर पचपन करोड़ रुपये न देने का सरदार पटेल का निर्णय व्यर्थ का अड़ंगा खड़ा करने जैसा है। कश्मीर का प्रश्न पाकिस्तान के पहले राजा हरिसिंह ने खड़ा किया था। विभाजन के समय ही हरिसिंह कश्मीर का भारत में विलीनीकरण करते तो पाकिस्तानी घुसपैठियों का कश्मीर पर हमला भारत पर हमला माना जाता। पर हरिसिंह

ने १५ अगस्त, १९४७ से २७ अक्तूबर, १९४७ तक कश्मीर को स्वतंत्र राष्ट्र रखा। पाक घुसपैठियों द्वारा किया गया आक्रमण कश्मीर राष्ट्र पर था। कश्मीर राष्ट्र पर किये गये आक्रमण के लिए भारत का पाकिस्तान के पैसे रोककर रखना न्यायसंगत नहीं था। किसी दूसरे राष्ट्र से किया गया भारत का यह पहला समझौता था। उसका पालन न होता तो भारत की प्रतिष्ठा गिर जाती। भारत की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायँ, ऐसा गांधीजी का आग्रह था। जो इस बात का विरोध कर रहे थे उन्हें भारत की प्रतिष्ठा की कोई परवाह नहीं थी, यही इसका अर्थ है।

आजादी से पहले हत्या के प्रयास

अब तक हमने देखा कि गांधीजी के अपने भाषणों, वक्तव्यों तथा जिन्ना के साथ की गयी चर्चाओं में राजाजी को दी गयी जानकारी के अनुसार, गांधीजी की विभाजन सम्बन्धी भूमिका क्या थी। उससे गांधीजी का विभाजन के प्रति प्रखर विरोध समझा जा सकता है। अन्तरिम सरकार के समय लीग के मंत्रियों के अनुभव के बाद सबसे पहले सरदार पटेल ने विभाजन को मंजूरी दी और बाद में नेहरू ने उसे मंजूर किया। यह भी विस्तार से देखा। कांग्रेस कार्यकारिणी में विभाजन को मंजूरी देने का प्रश्न उठा, तब गांधीजी ने कहा कि विभाजन के सम्बन्ध में आपने मुझे जरा भी जानकारी नहीं दी, पर कांग्रेस ने शब्द दिया हो, तो मेरा विभाजन का विरोध नहीं। उनका ऐसा कहना उनकी नैतिक राजनीति दर्शाता है। गांधीजी ने यह स्वीकृति अनिच्छा से दी थी, यह बात सूर्यप्रकाश की तरह स्पष्ट है। गांधी के कारण विभाजन हुआ, यह हिन्दुत्ववादियों का दावा सर्वथा झूठा साबित होता है। पहले मुस्लिम द्वेष का जहर फैलाना, उसके बाद हत्या की अपनी कपट-नीति के प्रति सहानुभूति हासिल करना, यह उनका मुख्य उद्देश्य है। फिर सवाल आया पचपन करोड़ रुपयों का। पचपन करोड़ रुपये देना समझौते में तय किया गया है। अगर न दिये तो भारत की प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। भारत की प्रतिष्ठा बनी रहे, भारत पर कलंक न लगे, इसीलिए पचपन करोड़ रुपये दिये जायँ, ऐसा गांधीजी ने कहा। उनकी यह भूमिका भी उनकी नैतिक राजनीति की नींव पर टिकी है। सरदार पटेल के मन में पाकिस्तान और मुस्लिमों के प्रति गुस्सा था। इसी गुस्से के कारण पैसे न देने की भूमिका वे अपना रहे थे। गांधीजी की नैतिक राजनीति में प्रतिशोध के लिए कोई स्थान नहीं। जो नैतिकता की नींव पर खड़ी राजनीति को नहीं मानते, उनका गांधीजी की राजनीति से वैचारिक मतभेद समझा जा सकता है। पर इसके लिए गांधी-हत्या का समर्थन परिष्कृत मन मान्य नहीं कर सकता। आन्दोलन द्वारा या मत-परिवर्तन द्वारा पैसे न देने के लिए सरकार को बाध्य करना, गांधीजी का मत-परिवर्तन करना अलग बात होती। उनकी हत्या ही कर डालना अलग बात है। जिन संगठनों की कोई वैचारिक भूमिका नहीं होती, वे हिंसा में विश्वास रखते हैं। हिंसा हिंसा में भी अन्तर होता है। नक्सलवादियों द्वारा की जानेवाली हिंसा और राजनीति से प्रेरित व्यक्तिगत हिंसा में कोई भेद है या नहीं? नक्सलवादियों की हिंसा भी गरीबों के प्रश्न हल

नहीं कर सकती। नक्सलवादियों द्वारा की जानेवाली जमींदारों और साहूकारों की हत्या और हिन्दुत्ववादियों द्वारा की जानेवाली व्यक्तिगत हिंसा में बहुत फर्क है। किसी व्यक्ति के विचारों से विरोध होने पर उस व्यक्ति को ही खतम करना यह हिन्दुत्ववादियों की हिंसा का स्वरूप है। शोषकों की जान लेकर या आतंक फैलाकर उनसे जमीन छिनना और शोषण रोकना यह नक्सलवादियों की हिंसा का स्वरूप है। दोनों के फर्क को समझना आवश्यक है। वैसे तो किसी भी हिंसा का समर्थन नहीं किया जा सकता। फिर भी हिंसा हिंसा का फर्क समझना जरूरी है। १३ जनवरी से शुरू हुआ गांधीजी का उपवास पचपन करोड़ के लिए नहीं था। गांधीजी ने उपवास के सन्दर्भ में रखी शर्तें और वे मान्य होने पर उपवास का समाप्त होना, इस सबके सम्बन्ध में दिये हुए विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है। यह सचाई आम लोगों के सामने आना जरूरी था। पर ऐसा नहीं हुआ। हिन्दुत्ववादियों ने लोगों के विस्मरण और नयी पीढ़ी की अनभिज्ञता का लाभ उठाया। उपवास का दबाव डालकर गांधीजी ने पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को देने के लिए बाध्य किया, ऐसा प्रचार हिन्दुत्ववादी करते रहे। लोग उसी पर भरोसा करते रहे। पर जब विभाजन और पचपन करोड़ की कोई हवा या बात नहीं थी, तब गांधी-हत्या के प्रयास क्यों हुए, यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है।

महात्मा गांधी १९३४ में अस्पृश्यता के विरोध में सारे देश में दौरा कर रहे थे। तब १९ जून, १९३४ में पूना गये थे। २५ जून, १९३४ को उन पर बम फेंका गया। जो हिन्दुत्ववादियों ने फेंका था। १९३४ में तो विभाजन और पचपन करोड़ का प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ था। इस बम-विस्फोट के सम्बन्ध में प्यारेलाल ने 'लास्टफेज', खण्ड-दो में जानकारी दी है। विस्तृत जानकारी जी॰ डी॰ तेन्डुलकर ने महात्मा गांधी, खण्ड-तीन में दी है। २५ जून, १९३४ के दिन पुणे के नगरपालिका सभागृह में गांधीजी भाषण देने के लिए जा रहे थे तब यह बम फेंका गया। इस विस्फोट में नगरपालिका के मुख्याधिकारी और दो पुलिस समेत सात लोग गम्भीर रूप से घायल हुए थे। गांधीजी पिछली मोटर में थे इसलिए बच गये। तेन्डुलकर लिखते हैं, 'महात्मा गांधी इस हमले से बाल-बाल बचे।' प्यारेलाल लिखते हैं, 'उनकी इस बार की कृति पूरी तरह योजनाबद्ध थी।' प्यारेलाल के इस वाक्य का अर्थ होता है कि २५ जून, १९३४ से पहले भी गांधी-हत्या के प्रयत्न

हुए थे, परन्तु उनमें योजना का अभाव था। इसीलिए प्यारेलाल ने लिखा होगा कि 'इस समय की कृति पूरी योजनाबद्ध थी।' इसके बाद के एक प्रयत्न के बाद खुद गांधीजी कहते हैं कि 'ईश्वर-कृपा से मैं अब तक सात बार मृत्यु के मुख से सही सलामत बच निकला हूँ।' अतः प्यारेलाल का यह कथन कि इस बार की उनकी कृति पूरी तरह योजनाबद्ध थी, एक अलग ही अर्थ का द्योतक है। प्यारेलाल आगे कहते हैं, "इन लोगों ने जूतों में नेहरू और अन्य कांग्रेसी नेताओं की तसवीरें छिपायी हुई थीं। गांधीजी की तसवीर देखकर पिस्तौल से सही निशानेबाजी का प्रशिक्षण उन्हें दिया गया था। इसी गुट ने गांधीजी के शान्ति-प्रयास के बाद (दिल्ली के उपवास के बाद) गांधीजी की हत्या की।" प्यारेलाल की लिखी इस घटना में नाथूराम का नाम तो नहीं है, पर बम फेंकनेवाले गुट ने ही बाद में गांधीजी की हत्या की, ऐसा लिखा है। इसका अर्थ यह है कि १९३४ में गांधीजी पर बम फेंकनेवालों में नाथूराम गोडसे, नारायण आपटे का हाथ रहा होगा। हमला करनेवालों के जूतों में गांधीजी के अलावा नेहरू आदि कांग्रेसी नेताओं के फोटो थे, ऐसा भी उल्लेख है। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि हमलावरों को पुलिस ने पकड़ा होगा। तभी तो उनके जूतों में क्या छिपाया गया है, इसका पता लगा। सन् १९३४ का विस्फोट करानेवाले वे ही लोग थे जो गांधी-हत्या के जिम्मेदार हैं। अत: गांधीजी की हत्या पचपन करोड़ या विभाजन के लिए नहीं हुई, यह मेरा मत मध्याह्न के सूर्य-प्रकाश जैसा स्पष्ट है। इस हमले के बाद अपने भाषण में गांधीजी कहते हैं, "मैं हरिजन कार्य के लिए आया था। ऐसे समय इस तरह की घटना होना दुर्भाग्यपूर्ण है। मैं शहीद बनना नहीं चाहता। पर अगर समय की वही माँग हो तो उसके लिए भी मैं तैयार हूँ। मेरी हत्या करना आसान है, पर उस प्रयास में निष्पाप लोगों की हत्या क्यों करते हो? मेरी गाड़ी में मेरी पत्नी और मेरी बेटी समान तीन लड़कियाँ थीं। उन्होंने आपका क्या बिगाड़ा है?" गांधी-हत्या का ही यह प्रयास था। गांधीजी को मारने के लिए २० जनवरी, १९४८ को पहला बम विस्फोट हुआ। और फिर ३० जनवरी को गांधीजी की हत्या हुई, इतना ही लोग जानते हैं, अतः गांधी-हत्या के ये ही दो प्रयास हुए ऐसा मानते हैं, पर लोगों की यह धारणा उनकी अज्ञानता का सूचक है। पुणे में गांधीजी पर बम फेंका गया, तब वहाँ ल॰ ब॰ भोपटकर थे। विस्फोट के बावजूद भोपटकर बच गये, इसलिए उनके अभिनन्दन की सभा तात्या साहब केलकर की अध्यक्षता में पुणे के

महाराष्ट्र मण्डल में हुई। 'गांधीजी की हत्या के लिए ही २५ जून, १९३४ को बम फेंका गया, ऐसी खबरें उस समय के करीब सभी अखबारों ने दी थीं, पर इस सभा में अभिनन्दन हुआ भोपटकर का।' ऐसा भोपटकर ने उक्त सभा में कहा। (दैनिक सकाल २ जुलाई, १९३४)। भोपटकर ने इस विस्फोट के समय स्वयं अपना ही महत्त्व बढ़ाने का प्रयास किया है। मुझे मारने के लिए यह विस्फोट हुआ है वरना मैं कैसे घायल होता, यह भोपटकर की दलील है। महात्मा गांधी पर बम फेंकने का उद्देश्य नहीं था, ऐसा दावा भोपटकर करते हैं। उनके द्वारा दिया गया कारण हास्यास्पद ही है। वे कहते हैं कि गांधी पर बम फेंकने का उद्देश्य होता तो साढ़े सात बजे महात्मा गांधी के आने पर फिर से बम फेंका जाता। (दैनिक सकाल : ११ जुलाई, १९३४)। भोपटकर कहते हैं कि गांधी के आने से पहले बम फेंका गया। उस समय मैं वहाँ था। अतः वह हमला मुझपर था। गांधी पर बम फेंकने का उद्देश्य होता तो पहले विस्फोट के बाद, उस मोटर में गांधी नहीं हैं यह पता चलने पर, हमलावर गांधी के आने पर दूसरा बम फेंकते। वैसा नहीं हुआ, अत: यह हमला गांधीजी पर नहीं था, ऐसा अजीब तर्क भोपटकर देते हैं। उस समय के अखबारों की खबरें ऐसी हैं कि नगरपालिका स्थान पर महात्मा गांधी आये। पहली गाड़ी पर बम फेंका गया। उसमें सात लोग घायल हुए। महात्मा गांधी पिछली मोटर में थे। भोपटकर इन खबरों को गलत मानकर मेरा ही तर्क सही है, ऐसा कहते हैं। गांधी पर बम फेंकने का इरादा होता तो गांधी के आने पर फिर बम फेंका जाता, यह भोपटकर का तर्क सही नहीं लगता। बम फेंकनेवाला बम फेंककर भाग जायेगा या बम कहाँ गिरा यह देखने के लिए वहीं खड़ा रहेगा। और निशाना चूक गया हो तो उसी समय फिर से बम फेंकेगा? गांधीजी पहली मोटर में हैं यह समझकर उसने पहली मोटर पर बम फेंका और भाग गया। दूसरी गाड़ी पर बम नहीं फेंका गया इसलिए हमला गांधी पर नहीं था, यह भोपटकर का कहना सामान्य मनुष्य भी सही नहीं मानेगा। उन दिनों नामदार गोखले की सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी की ओर से 'ज्ञान प्रकाश' प्रकाशित किया जाता था। 'ज्ञान प्रकाश' के तत्कालीन संवाददाता विठ्ठल श्रीधर जोगलेकर से मैं १९९४ में मिला। वे ९२ वर्ष के हैं। बम फेंका गया तब जोगलेकर घटना स्थल पर थे। उन्होंने मुझसे कहा कि : गांधी आ रहे थे तब उन पर बम फेंका गया। परन्तु गांधी पिछली मोटर में थे। बम फेंकनेवाला भाग गया। इसलिए वह कौन था

यह पता नहीं चला। बम फेंका गया तब वहाँ भोपटकर थे। उन्हें थोड़ी चोट लगी थी। चोट दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे थोड़ी चोट लगी है। । परन्तु उनकी अभिनन्दन सभा की जो खबर २ जुलाई, १९३४ के 'दैनिक सकाल' में छपी है उसमें कहा गया है कि सभा में भोपटकर ने कहा मुझे थोड़ी चोट लगी और मैं बेहोश हो गया। भोपटकर अगर बेहोश होते तो मुझे थोड़ी चोट लगी है, यह कहकर अपनी चोट वे जोगलेकर को कैसे दिखा पाते? पुणे महापालिका की ओर से गांधीजी को मानपत्र देने का कार्यक्रम था। वह भोपटकर का कार्यक्रम नहीं था। भोपटकर कार्यक्रम के लिए आनेवाले हैं यह बम फेंकनेवाले को पता रहने का कोई कारण नहीं है। मुझ पर हमला किया गया यह भोपटकर की बात दो कारणों से सही नहीं लगती। एक, भोपटकर इतने बड़े नहीं थे कि कोई उनकी हत्या करने की सोचता। दूसरे, भोपटकर वहाँ आनेवाले हैं, इसकी कल्पना हमलावरों को होना सम्भव नहीं लगता। पर गांधीजी को मानपत्र देने का कार्यक्रम था तो महात्मा गांधी वहाँ आयेंगे ही, यह तय था। अत: हमला गांधी पर ही था। इस विषय में शक का कोई कारण नहीं। बम-विस्फोट के बाद शुरू हुई छानबीन की प्रक्रिया को उलझन में डालने के उद्देश्य से ही हमला मुझ पर हुआ, ऐसा भोपटकर ने कहा लगता है। जोगलेकर 'ज्ञान प्रकाश' के संवाददाता थे। 'मैं हिन्दू महासभा का सदस्य था, यह बात स्वयं जोगलेकर ने मुझसे कही। ज्ञान प्रकाश के बाद नाथूराम गोडसे के 'अग्रणी' दैनिक में वे काम करते थे। अतः जोगलेकर ने भोपटकर के विषय में जो कहा, वह असत्य होने का कोई कारण नहीं है।

महात्मा गांधी पर हुए बम-हमले के सम्बन्ध में अपने सम्पादकीय में दैनिक *सकाल* ने सनातनियों का पक्ष लिया है। यह उनके सम्पादकीय से पता चलता है। २ जुलाई, १९३४ के सम्पादकीय का शीर्षक है, "बम से क्रोधित टीकाकार"। उसमें सम्पादक लिखते हैं, "मानपत्र देने के समय पुणे में बम विस्फोट हुआ, तब से उसकी आलोचना करनेवाले तथा निषेध करनेवाले आगबबूला हो गये हैं। वे सारा गुस्सा ब्राह्मणों पर उतार रहे हैं। किसी समय सतारा में खुद को सत्यशोधक कहनेवाले लोगों ने ब्राह्मणों के विरोध में संगठित हुड़दंग मचाया था तब उस घटना का हमने विरोध नहीं किया, इस बात को आज के विरोध करनेवाले जरा याद करें।" सतारा में किसी समय ब्राह्मणों के विरोध में जो कुछ किया गया, उसका विरोध नहीं किया गया था, इस

सम्बन्ध में सकाल ने तीव्र नाराजी व्यक्त की है। परन्तु गांधीजी पर हुआ बम-हमला ताजा घटना थी। उसका विरोध नहीं किया गया, इसके लिए *सकाल* का शिकायत करना, यह बात समय और प्रसंग से विसंगत लगती है। इसी सम्पादकीय में आगे लिखा है, "अपने मतानुसार आन्दोलन करनेवाले सनातनियों को अपने प्रामाणिक मत तथा नि:स्वार्थ श्रम करने से कोई अगर बम हमले का सम्बन्ध जोड़कर परावृत्त कर दबाना चाहे, तो वह असम्भव है। ब्राह्मणों जैसे किसी विशिष्ट वर्ग का बदला लेने का अवसर खोजनेवाले अवसरवादियों के अत्याचार सहन नहीं किये जायेंगे, यह वे लोग ठीक से ध्यान में रखें।" गांधीजी पर बम फेंकने का निषेध किया जा रहा था। तब *सकाल* ने सनातनियों का पक्ष लेकर उन्हें क्यों फटकारा, समझ में नहीं आता। गांधीजी जैसे नेता की कोई हत्या नहीं कर सकता यह *सकाल* ने बड़े विश्वास से लिखा है। पर इसी सनातनी प्रवृत्ति के और खासकर पुणे के ही गुट ने गांधीजी की हत्या की। सकालवाले उस समय किसका बचाव कर रहे थे, यह इस बात से स्पष्ट होता है। *सकाल* ने सम्पादकीय में सनातनियों का पक्ष लिया, इसका विरोध करनेवाले पत्र भी *सकाल* ने छपवाये। ७ जुलाई, १९३४ को शंकर राघोजी मोहिते का एक पत्र प्रकाशित हुआ था। वे लिखते हैं, "यह *सकाल* का सम्पादकीय नहीं है। उसे लिखनेवाले कोई दूसरे ही हैं।" गांधीजी पर हुए बम-हमले का विरोध सभी जगह किया गया। कोल्हापुर में १५ जुलाई को विरोध सभा हुई। इसके विषय में १४ जुलाई का कोल्हापुर का समाचार *सकाल* में छपा है कि "महात्माजी बम-विस्फोट से बच गये, इसके लिए श्री शिवलिंग झवेरी की विनती पर उन्हें (झवेरी को सँभलने की) डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने इजाजत दी।" १६ जुलाई के *सकाल* के सम्पादकीय में लिखा है, "सेठ जमनालाल बजाज की सूचनानुसार २५ जून को महात्माजी हमले से बाल-बाल बच गये, इसके लिए उनका अभिनन्दन और ईश्वर की प्रार्थना कल (१५ जुलाई) पूरे देश में की गयी।" पर *सकाल* ने पुणे के बम विस्फोट के बारे में सनातनियों का ही समर्थन किया था। १६ जुलाई, १९३४ के *सकाल* के ही सम्पादकीय में '*टाइम्स ऑफ इण्डिया*' के समाचार का उल्लेख है कि कराची में महात्मा गांधी को मारनेवाले सनातनी को पुलिस ने पकड़ा। "कराची में महात्मा गांधी की जान खतरे में थी। परशु (फरसा) लिये हुए एक सनातनी गांधीजी से मिलने जा रहा था, पर पुलिस ने उसे रोककर परशु छीन लिया।" सनातनियों का

गुस्सा केवल गांधीजी पर ही नहीं था, गांधीजी के स्वयंसेवकों पर भी था। स्वयंसेवकों को भी सनातनी पीटते थे। १९ जुलाई, १९३४ के *सकाल* में कानपुर की खबर है कि, "गांधीजी का सम्मान करके लौट रहे लोगों पर सनातनियों ने हमला किया और उन्हें पीटा।"

सनातनियों की खबरें *सकाल* विस्तार से देता था। उनसे पता चलता है कि गांधीजी को जान से मारने का विचार सनातनी करते थे। मारने के प्रयास भी करते थे, पर सफलता नहीं मिलती थी। *सकाल* में २० जुलाई, १९३४ में छपी खबर देखने जैसी है।

"काशी ता॰ १५ : यहाँ के गांधी-बहिष्कार समिति के अध्यक्ष श्री कमल-नयनाचार्य ने हाल ही में ऐसा घोषित किया है कि काशी में गांधीजी का कड़ा बहिष्कार करना चाहिए ताकि न केवल भारत के, अपितु इंग्लैण्ड के भी बड़े-बड़े कुशल राजनीतिज्ञ भय से काँप उठें।"

"विभिन्न पत्रकों द्वारा यह प्रचार चालू है कि गांधीजी का आन्दोलन हमारे सनातन धर्म पर जानलेवा संकट है। हर सनातनी इसका डटकर मुकाबला करे।" खबर में गांधीजी का बहिष्कार करने की बात है। पर उसीके आगे यह सूचित किया है कि हमें ऐसा कुछ करना चाहिए, जिससे इंग्लैण्ड के कुशल राजनीतिज्ञ भय से काँप उठें। केवल बहिष्कार से कोई इतना भयभीत नहीं होता। अर्थात् भयभीत कराने का कोई दूसरा ही मार्ग वे सोच रहे थे। यह स्पष्ट है। *सकाल* में २३ जुलाई, १९३४ को एक खबर छपी है। शीर्षक है, "यम और जेल का निमंत्रण; महात्माजी के उद्‌गार, लाहौर में महात्माजी की कलाई मरोड़ी" "हिन्दू युवक का अविचार, महात्मा गांधी का हाथ पकड़कर ही रखा।" गांधीजी के स्वागत के लिए इकट्ठी हुई भीड़ के वर्णन के साथ खबर में आगे लिखा है "मोटर आगे बढ़ी तब हिन्दू युवक मोटर के पायदान पर चढ़े। एक युवक ने उनके हाथ में एक कागज देकर कहा, 'इसे तुरन्त पढ़िए।' गांधीजी ने कहा, "मैं जरूर पढ़ूँगा ऐसा वचन देता हूँ। तुम मेरा हाथ छोड़ो।' युवक ने हाथ नहीं छोड़ा। पीछे से भीड़ बढ़ी। भगदड़ में गांधीजी की कलाई मरोड़ी गयी। गांधीजी ने फिर कहा, 'हाथ छोड़ो, मेरे हाथ में दर्द हो रहा है।' अगर नहीं छोड़ोगे तो मैं नीचे उतरता हूँ। 'फिर भी युवक ने हाथ नहीं छोड़ा।' दूसरे लोगों ने जबरन हाथ छुड़ाया।

सकाल के सम्पादकीय वक्तव्यों से यह बात साफ हो जाती है कि *सकाल* सनातनियों से सहानुभूति रखता था। इसीलिए महात्मा गांधी से सम्बन्धित *सकाल* में छपी खबरों को ही आधार लिया है। *सकाल* की भूमिका देखते हुए ये खबरें सौम्य स्वरूप में दी होंगी, यह अनुमान गलत नहीं समझा जायेगा। *सकाल* की खबरों से भी गांधीजी के विषय में सनातनियों की अर्थात् हिन्दुत्ववादियों की आक्रामक भूमिका का पता चलता है। इंग्लैण्ड के बड़े-बड़े कुशल राजनीतिज्ञ भय से काँप उठें, ऐसा कुछ करने का विचार हिन्दुत्ववादियों के सिर पर सवार था। यह काशी की खबर से भी स्पष्ट होता है। *सकाल* की इस खबर का जिक्र, कि कराची में एक सनातनी गांधीजी को मारने आया था, *सकाल* ने अलग सन्दर्भ में किया था। उसे पुलिस ने हिरासत में लिया, यह घटना काफी कुछ व्यक्त करती है। काशी की खबर में कहा है कि, "गांधीजी का आन्दोलन सनातन धर्म पर संकट है। अत: उसे दूर करने का हरएक को प्रयत्न करना चाहिए।" अर्थात् हिन्दुत्ववादियों का गांधीजी की व्यापक राजनीति से ही विरोध था। गांधीजी के विचार और उनके आन्दोलन अपने मार्ग में रोड़ा अठकाते हैं, यह बात हिन्दुत्ववादियों के मन में पक्की बैठ गयी थी। गांधी के रूप में धर्म पर आये संकट को हटाने के लिए ही ३० जनवरी, १९४८ को गांधीजी की हत्या हुई। इसके लिए सन् १९३४ से हिन्दुत्ववादियों के प्रयास जारी थे। २५ जून, १९३४ का बम-हमला इसी प्रयास का एक हिस्सा था। इसके सबूत में ऊपर लिखी विभिन्न खबरें हैं। विभाजन और पचपन करोड़ रुपये के लिए गांधीजी की हत्या नहीं हुई। यह सिद्ध करने के लिए और कौन-से सबूत चाहिए? गांधीजी और उनके विचारों का सर्वाधिक विरोध पुणे में था। लोकमान्य तिलक के समर्थ नेतृत्व ने पूरे भारत का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया था। उनकी मृत्यु के बाद पुणे भयग्रस्त था। इसीसे शायद पुणे में गांधीजी और उनके विचारों का प्रखर विरोध हुआ। पुणे नगरपालिका ने गांधीजी को मानपत्र देना चाहा, तब भड़काऊ हिन्दुत्ववादियों ने उनका अलग ही तरह से 'स्वागत' किया। भारत और दुनिया का नसीब अच्छा था कि गांधीजी इस बम-हमले से बच गये, ऐसा श्रीपाद जोशी 'गांधीजी : एक झलक' नामक हिन्दी पुस्तक में लिखते हैं। इस हमले के सम्बन्ध में आचार्य श॰ द॰ जावड़ेकर अपनी 'जीवनरहस्य' पुस्तक में लिखते हैं कि, "गांधीजी मानपत्र स्वीकार करने जा रहे थे तब गांधीजी के हरिजन उद्धार के कार्य से क्रोधित खुद को सनातनी

कहनेवाले लोगों ने यह बम फेंका। पर गांधी बच गये। गांधी-हत्या से ही सनातन धर्म सुरक्षित रहेगा, ऐसी सनातनी हिन्दुओं की धारणा थी।'" विभाजन और पचपन करोड़ रुपये के लिए गांधीजी की हत्या नहीं हुई। गांधीजी की वजह से लोगों में हिन्दुत्ववादी विचार पनपते नहीं थे, इसलिए हत्या की गयी। परन्तु लोगों के मन में हत्यारे के प्रति सहानुभूति निर्माण हो, इस उद्देश्य से विभाजन और पचपन करोड़ का कारण बताकर प्रचार किया जाता है।

२० जनवरी, १९४८ से पहले गांधीजी की हत्या के ४ प्रयास हुए हैं। गांधी कहते हैं, "मैं सात बार मृत्यु के मुख से बचा हूँ।" १३ वर्ष पहले से (१९३४ से) ही गांधी-हत्या का विचार और षड्यंत्र हिन्दुत्ववादियों ने रचा था।

पुणे में सन् १९३४ में गांधीजी पर बम फेंका गया। उसके १० साल बाद सन् १९४४ में फिर उनकी हत्या का प्रयास हुआ। छुरा लेकर गांधी पर हमला कर रहे नाथूराम गोडसे को पंचगनी में पकड़ा गया। इस तरह का बयान पुणे में सुरवी लॉज के मालिक मणिशंकर पुरोहित ने कपूर आयोग के सामने दिया। नाथूराम के हाथ से मैंने छुए छीना यह बात महाबलेश्वर के भूतपूर्व विधानसभा सदस्य और सतारा मध्यवर्ती बैंक के विद्यमान (१९९७ में) अध्यक्ष भि॰ दा॰ भिल्लारे गुरुजी ने भी कही है। (अनुभव, मासिक, पुणे, अक्तूबर, १९९७) पुलिस डायरी के सहारे न्यायमूर्ति कपूर आयोग ने इस तरह की घटना नहीं हुई, ऐसा कहा है। परन्तु अन्य कुछ घटनाओं के सहारे पुलिस डायरी की अविश्वसनीयंता का विवेचन आगे किया गया है। पुरोहित का बयान झूठा है, यह साबित करने के लिए कपूर आयोग कहता है कि उस समय डॉ॰ सुशीला नायर गांधीजी के साथ थीं। अत: उस तरह की घटना हुई होती तो डॉ॰ सुशीला नायर अवश्य जानतीं, पर वे कहती हैं कि मुझे यह सब याद नहीं। इसका यही अर्थ है कि ऐसी घटना हुई ही नहीं। परन्तु सेवाग्राम में नाथूराम गोडसे को उसके खंजर सहित आश्रम के लोगों ने पकड़ा। गांधीजी की जान लेने के लिए ही उसने अपने पास खंजर रखा था। यह जब डॉ॰ सुशीला नायर आयोग के सामने कहती हैं, तब उनकी बात आयोग ने अस्वीकार की। इस घटना का विस्तार से विवेचन आगे किया गया है। यहाँ उसका इसलिए उल्लेख किया कि, पंचगनी की घटना को सुशीला नायर पुष्टि नहीं देती, इसलिए वह घटना घटी ही नहीं, ऐसा कहना और सेवाग्राम की घटना सुशीला नायर कह रही हैं, फिर भी

उसे सच नहीं मानना और गांधीजी की मोटर पंचर करने के लिए छुरा लाया था ऐसा कहना, आयोग की ये सारी बातें हास्यास्पद हैं।

गांधीजी की हत्या हुई तब मैं सात-आठ साल का था। कोल्हापुर जैसे एक दूर के गाँव में भी गांधीजी की हत्या होनेवाली है, यह पहले से ही मालूम था, ऐसी चर्चा हम सुनते थे। हम छोटे बच्चे भी इस चर्चा को सुनते थे। यानी खुलेआम चर्चा होती थी। गांधीजी की हत्या होनेवाली है, यह पता होते हुए भी उन्हें क्यों बचाया नहीं गया, ऐसा प्रश्न उस समय मन में उठता था, पर उत्तर नहीं मिलता था। फिर १०-१२ बरस यह प्रश्न मेरे दिमाग से निकल गया। बाद में पत्रकार बना। बम्बई में शिवाजी पार्क के पास अपने चचेरे बहनोई गंगाधर राव देशपाण्डे के घर रहने लगा। वहाँ कांग्रेस का एक कार्यकर्ता आया करता था। उससे मित्रता हुई। उसके साथ शिवाजी पार्क पर घूमने जाता, तब एक छोटे बँगले की ओर संकेत करके वह कहता, यहाँ प्रो॰ जैन रहते हैं, उन्हें पहले से ही पता चल गया था कि गांधीजी की हत्या होनेवाली है। पर प्रोफेसर जैन को यह जानकारी कैसे मिली, यह बात वह कार्यकर्ता नहीं बता पाया। तब से गांधी-हत्या का विषय मेरे मन में फिर से उठने लगा। प्रो॰ जैन से मिलकर उनसे यह सब समझ लेना चाहिए, ऐसा लगता था। आगे संयुक्त राष्ट्र की राजनीति के कारण यह विषय दिमाग से निकल गया। सन् १९६६-६७ में गांधी-हत्या के षड्यंत्र की जाँच के लिए न्यायमूर्ति जे॰ एल॰ कपूर की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया। आयोग के कामकाज की खबरें लेने के लिए मैं वहाँ हाजिर रहने लगा। इस आयोग से पहले गांधी-हत्या के षड्यंत्र की जाँच करने के लिए कानूनविद् जी॰ एस॰ पाठक की अध्यक्षता में केन्द्र शासन ने २२ मार्च, १९५४ को एक समिति नियुक्त की थी। उसी महीने में पाठक को मंत्रिमण्डल में लिया गया। उसके पश्चात् वे उपराष्ट्रपति हुए। इसलिए न्यायमूर्ति जे॰ एल॰ कपूर का एक सदस्यीय आयोग २१ नवम्बर, १९६६ में नियुक्त किया गया। आयोग के कामकाज का समाचार लेनेवाला मैं अकेला ही पत्रकार था। जयप्रकाश नारायण, मोरारजी देसाई, प्रो॰ जे॰ सी॰ जैन, पुलिस उपायुक्त जे॰ डी॰ नगरवाला, अन्य वरिष्ठ अफसरों और नेताओं की गवाहियाँ ली गयीं। वे मैंने प्रत्यक्ष सुनीं। गोपाल गोडसे की गवाही इन-कैमरा हुई। उसे न सुन सका। आयोग के सामने

आये सबूत, कागजात प्रत्यक्ष देखे। और फिर सात-आठ साल की उम्र में उठा मन में प्रश्न समाप्त हो गया।

महात्मा गांधी को मई, १९४४ में जेल से रिहा किया गया। उन्हें मलेरिया हो गया था। डॉक्टरी सलाह के अनुसार वे आराम करने के लिए पंचगनी गये। उस समय एक खास बस से १९-२० लोगों का एक दल पंचगनी पहुँचा। उसने दिनभर गांधी-विरोधी नारे लगाये। तब बातें करने के लिए गांधीजी ने नाथूराम गोडसे को बुलाया। गोडसे ने मिलने से इनकार किया। शाम को गांधीजी की प्रार्थना शुरू हुई। तब नेहरू शर्ट, पाजामा और जाकिट पहना हुआ एक युवक गांधी-विरोधी नारे लगाता हुआ जाकिट की जेब से छुरा निकाल गांधीजी की ओर लपका। तब मणिशंकर पुरोहित और एक युवक ने उसे पकड़ा। यह युवक था सतारा के भिल्लोर गुरुजी। और जिस युवक को पकड़ा गया उसका नाम था नाथूराम गोडसे। उसके साथ का दूसरा युवक भाग गया। प्रार्थना सभा में गड़बड़ मची, पर गांधीजी शान्त थे। हमेशा की तरह प्रार्थना सभा हुई। गांधीजी ने गोडसे को सन्देशा भेजा कि मेरे साथ आठ दिन रहो, ताकि मैं तुम्हारे विचारों को समझ सकूँ। गोडसे ने बात अस्वीकार की। गोपाल गोडसे ने अपनी गवाही में कहा कि नाथूराम पंचगनी नहीं गया था। पर गोपाल गोडसे कितना सच बोल रहा है, यह भी प्रश्न ही है। *'अग्रणी'* में संवाददाता का काम करनेवाले जोगलेकर ने जानकारी देते हुए कहा कि गांधी पंचगनी में थे तब नाथूराम ने हमें कहा था कि पंचगनी से महत्त्वपूर्ण समाचार आयेगा। समाचार आया भी था। गांधीजी पंचगनी में जिस *दिलखुश* बँगले में रहते थे वहाँ कांग्रेस स्वयंसेवकों ने अधिक सावधानी बरती थी। और वर्दीरहित पुलिस भी तैनात की गयी थी। यह सारी व्यवस्था ऊपर लिखी घटना के बाद की है। पर इस व्यवस्था का भी गांधीजी ने विरोध किया। मेरी सुरक्षा के लिए पुलिस की आवश्यकता नहीं, ऐसा उन्होंने बलपूर्वक कहा। राजाजी, जीवराज मेहता, भूलाभाई देसाई आदि कुछ कांग्रेसी नेताओं को इस घटना की जानकारी मिली थी। २३ जून, १९४४ को *टाइम्स ऑफ इण्डिया* में खबर छपी थी कि, "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों ने गांधीजी की सभा में गड़बड़ी मचायी।" *पूना हेरॉल्ड* के सम्पादक ए॰ डेविड ने आयोग के सामने एफिडेविट दिया था कि उस दिन पंचगनी में गांधीजी को जान से मारने के लिए नाथूराम गोडसे छुरा लेकर दौड़ा था। मणिशंकर पुरोहित के बयान में

तारीख कुछ भिन्न है। पुरोहित ने आपटे और थत्ते के भी नाम लिये हैं। पुलिस ने यह घटना दर्ज नहीं की है। जुलाई, १९४४ की पंचगनी की प्रार्थना सभा में कुछ लोगों ने गड़बड़ी मचायी, पर उसमें नाथूराम था या नहीं मुझे याद नहीं, ऐसा सुशीला नायर ने कहा है। पंचगनी में प्यारेलाल नहीं थे। गड़बड़ी मचते ही डॉ॰ सुशीला नायर आदि को वहाँ से हटाया गया, इसलिए क्या घटित हुआ, यह सुशीला नायर देख नहीं पायीं। नाथूराम गोडसे वहाँ था या नहीं मुझे याद नहीं; पर १९४६ में सेवाग्राम में नाथूराम गोडसे और थत्ते गांधीजी की ओर बढ़ने लगे, तब आश्रमवासियों ने उन्हें पकड़ा। उनमें से एक के पास छुरा मिला, ऐसी गवाही डॉ॰ सुशीला नायर ने दी है। पंचगनी में पुलिस डायरी में छुरा मिलने की बात नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि छुरा हटा लेने पर पुलिस वहाँ पहुँची हो। इसलिए डायरी में जिक्र नहीं है। और भी एक सम्भावना नकारी नहीं जा सकती कि पुलिस के रहते यह हादसा हुआ था, अत: पुलिस को ही दोषी माना जायेगा। इस विचार से पुलिस ने छुरे का उल्लेख न किया हो। पुरोहित को झूठी गवाही देकर क्या मिलनेवाला था, यह भी सोचने जैसा प्रश्न है। सन् १९३४ में पुणे में गांधीजी पर बम-हमले के बारे में प्यारेलाल और तेन्डुलकर दोनों ने लिखा है कि उस समय सात लोग घायल हुए और वह योजनाबद्ध कार्रवाई थी। अतएव पंचगनी की घटना के सम्बन्ध में पुरोहित के कहने में कोई तथ्य नहीं, ऐसा मानना कठिन है। प्यारेलाल के अनुसार ३० जनवरी, १९४८ को जिन लोगों ने गांधीजी की हत्या की, वही लोग सन् १९३४ के बम-हमले में थे। पंचगनी की घटना में जो नाम सामने आये हैं, वे भी वही हैं। पुणे का गुट गांधी-हत्या के प्रयास में था, यह सन् १९३४ के बम-विस्फोट से रपष्ट है। इस सारी पृष्ठभूमि को सामने रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति निर्णय करे, कि पंचगनी में कया हुआ होगा। पुलिस में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों ने घुसपैठ की है, ऐसा प्यारेलाल ने आयोग के सामने कहा है। पंचगनी के सम्बन्ध में निर्णय लेते हुए इस बात पर भी विचार किया जाय।

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने २६ फरवरी, १९४८ को गृह-मंत्री वल्लभभाई पटेल को एक पत्र लिखा था—"अपने कार्यालय तथा पुलिस विभाग में आर॰ एस॰ एस॰ के लोग घुसे हुए हैं। इससे सरकारी गोपनीय बातें भी इन लोगों से छिपी नहीं रहतीं।" दिल्ली पुलिस में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के काफी लोग हैं, यह भी नेहरूजी ने वल्लभभाई को इस पत्र द्वारा सूचित किया

था। सरदार पटेल ने तुरन्त दूसरे दिन नेहरूजी को उत्तर में लिखा, "सावरकर के नेतृत्व में हिन्दू महासभा के एक गुट ने गांधी-हत्या का षड्यंत्र रचा और अमल में लाया।" (सरदार पटेल कॉरिस्पॉन्डेन्स : खण्ड ६, पृष्ठ ५६)।

जून, १९३४ के बम-विस्फोट के बाद २६ जून, १९४७ को पुणे की बीच बस्ती में वाचनालय के पास बम फेंका गया। इस सिलसिले में एन॰ आर॰ आठवले को पकड़ा गया। आठवले हिन्दू महासभा का कार्यकर्ता था। अपने जवाब में उसने कहा, 'अग्रणी' के नारायण आपटे ने यह बम फेंकने के लिए कहा था।"[२५] समाजवादी नेता रावसाहब पटवर्धन के अहमदनगर की सभा में मदनलाल और करकरे ने बम फेंका था। मदनलाल को पकड़ने का आदेश १६ जनवरी, १९४७ को और करकरे को पकड़ने का आदेश २४ जनवरी, १९४७ को सरकार ने जारी किया था। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने पकड़ने की कार्यवाही नहीं की। इस सम्बन्ध में कपूर आयोग ने अपनी नाराजगी जताई है। सन् १९३४ से हिन्दुत्ववादी समय-समय पर बम-हमले कर रहे थे। मदनलाल और करकरे को पकड़ने के आदेशों का पालन नहीं हुआ। पुणे के बम-हमले के सम्बन्ध में आठवले ने आपटे का नाम लिया था। फिर भी आपटे के घर में कुछ नहीं मिला। इसलिए आपटे को नहीं पकड़ा गया, ऐसा पुलिस ने कहा। बम-हमले करनेवाले घरों में सबूत रखकर हमले करते हैं, ऐसा समझनेवाले पुलिस की बुद्धिमानी की जितनी भी तारीफ करें, कम ही है। रावसाहब पटवर्धन की सभा में बम-विस्फोट होने के बाद अगर १६ और २४ जनवरी, १९४७ के आदेशानुसार मदनलाल पहवा और करकरे को पकड़ा जाता तो ३० जनवरी के गांधी-हत्या के षड्यंत्र का पता चल जाता। पुलिस ने पहवा और करकरे को पकड़ा नहीं। पुलिस का यह बर्ताव देखते हुए पंचगनी में पुलिस डायरी में दर्ज नहीं किया है इस आधार पर यह अनुमान लगाना कि यह घटना हुई ही नहीं, गलत होगा।

पंचगनी की घटना आयोग ने सही नहीं मानी, अत: उस घटना को विवादित माना जा सकता है। परन्तु सेवाग्राम की घटना के सम्बन्ध में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है। गांधीजी जिन्ना के साथ चर्चा करनेवाले हैं, यह जाहिर हुआ था। गांधीजी जिन्ना से चर्चा न करें, ऐसा नाथूराम गोडसे और ल॰ ग॰ थत्ते आदि का मत था और इस सम्बन्ध में खूब जहरीला प्रचार किया। ९ सितम्बर,

१९४४ को गांधीजी की जिन्ना से चर्चा शुरू हुई, जो १८ दिन चली। चर्चा के लिए गांधीजी सेवाग्राम आश्रम से रवाना होनेवाले थे। गोडसे और थत्ते चाहते थे कि यह चर्चा न हो। इसके लिए उन दोनों का तथा उनके साथियों का गांधीजी को आश्रम के पास रोकने का पक्का निश्चय था। गांधीजी आश्रम से बाहर ही न निकल सकें, तो मुम्बई कैसे पहुँचेंगे। यही सोचकर उन लोगों ने यह योजना बनायी थी। महाराष्ट्र से आये दल में बंगाल के पाँच-सात लोग आ मिले। इससे गोडसे तथा उनके साथी अधिक आक्रामक हो गये। आश्रमवासियों ने थत्ते या गोडसे के हाथ से खंजर छीन लिया, ऐसा डॉ॰ सुशीला नायर ने कपूर आयोग से कहा। पर नायर की बात कपूर आयोग ने मानी नहीं। इससे पूर्व पंचगनी की घटना के सम्बन्ध में सुशीला नायर ने बात की पुष्टि नहीं की, इसलिए वह बात आयोग अस्वीकार करता है। अब यहाँ डॉ॰ सुशीला नायर यह कह रही हैं कि छुरा छीना गया, पुलिस की रपट में भी दोनों में से एक के पास से खंजर बरामद किया गया ऐसा लिखा है। पुलिस छुरे के बजाय खंजर कह रही है, जो छुरे से बड़ा होता है। गांधीजी जिस मोटर से वर्धा स्टेशन जानेवाले थे, उस मोटर का पहिया पंचर करने के लिए खंजर लाया था, ऐसा पुलिस ने कपूर आयोग के सामने कहा। आयोग ने उसे मान लिया। पुलिस-रपट में यह भी लिखा है कि 'हमने अपनी सुरक्षा के लिए खंजर पास रखा था', ऐसा थत्ते ने कहा। पर पुलिस ने कहा कि पंचर करने के लिए खंजर लाया था। पुलिस की असंगत बातों से कुछ बातें छिपाने का उनका प्रयास उजागर होता है। थत्ते और अन्य साथियों को पुलिस ने गिरफ्तार किया, तब पुलिस और थत्ते के बीच हुई बातें आयोग ने नोट की हैं : "पुलिस अफसर ने थत्ते से पूछा कि क्या गांधीजी को मारने का इरादा था? थत्ते ने जवाब दिया, अगर गांधी को मारता तो वे शहीद होते। इसी बातचीत के दरमियान थत्ते के पास छुरा मिला", ऐसा आयोग लिखता है। हिन्दुत्ववादियों की गांधीजी सम्बन्धी भूमिका, उनके भड़काऊ और जहरीले व्याख्यान, सन् १९३४ का पुणे का बम-हमला और यहाँ तक कि वर्धा के पुलिस थाने में भी वे गांधी-हत्या की बात कर रहे थे। पुलिस ने आयोग को यह बातचीत भी बतायी है। पर निवेदन देते समय पुलिस कहती है कि पहिया पंचर करने के लिए खंजर लाया था। यह निष्कर्ष पुलिस किस आधार पर निकालती है? रावसाहब पटवर्धन की सभा में बम फैंका गया, तब मदनलाल पहवा और करकरे को पकड़ने के आदेशों का पुलिस ने पालन नहीं किया।

इसीलिए पुलिस की रपट पर सन्देह होता है। परन्तु आयोग ने सेवाग्राम की घटना के सम्बन्ध में के॰ एम॰ मुंशी का मत भी दिया है : "पुणे में गांधी-विरोधी एक गुट था, वह राजनैतिक हत्या में विश्वास रखता था, मुंशी के इस कथन को ही पुष्टि मिलती है।" आयोग के सामने आये सबूतों के आधार पर आयोग का क्या मत बना, यह न बताकर मुंशी के मुख से आयोग बोल रहा है। यह न्यायमूर्ति-आयोग की प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है। पूना के हिन्दुत्ववादी गांधी को जान से मारना चाहते थे। इसके अनेक उदाहरण सामने थे। उनके आधार पर सचाई खोजने के बजाय मुंशी के बयान को पुष्टि मिलती है, ऐसा आयोग कहता है। मुंशी के कथन या मत में हिन्दुत्ववादी गुट राजनैतिक हत्या में विश्वास रखता था, इसे आयोग स्वीकार करता है, ऐसा भी कहा जा सकता है। या यह आयोग का मत नहीं है, आयोग केवल मुंशी का मत दे रहा है, ऐसा भी अर्थ निकाला जा सकता है। दोनों में थोड़ा फर्क है। आयोग ने ऐसा क्यों किया, इसकी कल्पना की जा सकती है। आयोग के कामकाज के दरमियान न्या॰ कपूर से मेरे अच्छे सम्बन्ध प्रस्थापित हुए थे। कई बार काम पूरा होने पर वे मुझे मंत्रालय के अपने कमरे में बुला लेते। और मुझसे बातें करते थे। ऐसी ही बातों में एक बार उन्होंने कहा था, "इससे क्या निष्पन्न होगा? गांधी-हत्या के लिए जिम्मेदार लोगों में से कई आज जीवित नहीं हैं। जो जिन्दा हैं उनकी जिन्दगी अब कितनी बची है? यह भी प्रश्न है। अत: मेरा अहवाल सामान्य होगा।" मुझे तारीख याद नहीं, पर प्रसंग याद है। जिस दिन गोपाल गोडसे की इन-कैमरा गवाही शुरू हुई, उसी दिन गवाही के बाद के उनके ये उद्गार हैं। इन-कैमरा गवाही की जानकारी न्या॰ कपूर अधिकृत तौर पर बाद में मुझे बताते थे।

प्यारेलाल ने सेवाग्राम की घटना के सम्बन्ध में तुरन्त तेजबहादुर सप्रू को विस्तृत पत्र लिखा था। प्यारेलाल लिखते हैं, "हिन्दू महासभा के प्रदर्शनकारियों के प्रदर्शन की खबर आपने पढ़ी होगी। पहले ही दिन प्रदर्शनकारियों का नेता बोल उठा, 'यह हमारा पहला कदम है। जिन्ना से मिलने गांधीजी गये तो हम बल का प्रयोग करने में भी नहीं हिचकिचायेंगे।' कल उन्होंने पहले ही सूचना दी थी कि 'हम गांधीजी को कुटी से बाहर निकलने ही नहीं देंगे।' उन लोगों ने वास्तव में ही कुटी के बाहर अलग-अलग महत्त्वपूर्ण स्थानों पर प्रदर्शनकारियों को तैनात कर दिया था।

"आज सुबह ही डिस्ट्रिक्ट सुपरिटेण्डेण्ट ऑफ पुलिस का मुझे फोन आया था। उन्होंने फोन पर कहा, बहुत बड़ी गम्भीर घटना की उनकी योजना थी। उनके विरुद्ध कार्यवाही करना अनिवार्य हो गया है। गांधीजी तो कह रहे थे कि मैं अकेला प्रदर्शनकारियों के साथ चलता रहूँगा। गांधीजी अपनी जिद पर अड़े थे। गांधीजी के निकलने के कुछ समय पहले डी॰ एस॰ पी॰ आये और उन्होंने प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया। इससे उनकी योजना विफल हो गयी।

"प्रदर्शनकारियों का नेता एकदम कट्टर, उग्र विचारों का तथा आक्रामक प्रवृत्ति का था। इससे चिन्ता हो रही थी। उसकी तलाशी ली, तब उसके पास खंजर मिला। पुलिस ने उसे गिरफ्तार किया और व्यंग्य से पूछा, तुम्हें शहीद होना है? नेता ने उत्तर दिया, 'जब गांधीजी की हत्या होगी तभी हममें से कोई एक शहीद होगा।' पुलिस अफसर ने बातचीत चालू रखी। नेता से उसने कहा, 'आप सब इस झमेले में क्यों पड़ते हैं? ये सब बातें नेताओं को सौंप दीजिए। सावरकर को सौंपिए। नेता आपस में समझ लेंगे।' गिरफ्तार व्यक्ति ने कहा, 'सावरकरजी का गांधी से बात करना गांधी का सम्मान होगा। सावरकर को गांधी से बोलने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। गांधी के लिए तो हमारा एक जमादार काफी है।"

घटना की गम्भीरता पर गौर करते हुए प्यारेलाल ने तेजबहादुर सप्रू को यह पत्र लिखा था। प्यारेलाल ने लिखा है, 'जमादार' शब्द का प्रयोग गिरफ्तार व्यक्ति ने नाथूराम गोडसे के लिए किया है। अर्थात् गांधी-हत्या का इनका विचार सन् १९४८ के पहले से ही था। जिन्ना से मिलने सितम्बर, १९४४ में गांधीजी जा रहे थे। गांधी न जायँ इसके लिए बल का भी प्रयोग करने की इन लोगों की भूमिका थी। अगर डी॰ एस॰ पी॰ समय पर न पहुँचते तो ये लोग गांधीजी पर हमला भी करते। इसीलिए प्यारेलाल चिन्तित थे। डी॰ एस॰ पी॰ ने भी घटना की गम्भीरता को समझकर फोन द्वारा प्यरेलाल को खतरे की जानकारी दी थी। गांधी और जिन्ना के बीच की चर्चा ९ सितम्बर, १९४४ को मुम्बई में माउण्ट प्लेस्ड रोड पर स्थित जिन्ना के निवास-स्थान पर शुरू हुई। (अब इस रास्ते का नाम भाऊसाहब हिरे मार्ग है। मुख्यमंत्री के वर्षा निवास स्थान के सामने यह बंगला है।) फिर वही सवाल पैदा होता है कि सितम्बर, १९४४ में न विभाजन हुआ था, न विभाजन होगा ही, यह तय हुआ था। पचपन करोड़ का भी प्रश्न नहीं था। फिर गांधी-हत्या का संकट क्यों पैदा हुआ था?

गांधीजी की जान को खतरा है यह सिर्फ प्यारेलाल ही नहीं सोच रहे थे। यही विचार डी॰ एस॰ पी॰ के थे। तभी तो उन्होंने तुरन्त प्यारेलाल को फोन द्वारा सतर्क किया। इस घटना के पीछे कौन-से प्रयोजन थे? विभाजन, आजादी, पचपन करोड़ रुपये सभी बातें अस्पष्ट थीं। इसीलिए गांधी-हत्या के आज बताये जानेवाले कारण वास्तविक नहीं हैं। इसके कई सबूत उपलब्ध हैं। आत्मरक्षा के लिए खंजर रखा था ऐसा कबूल किया था और इस बात का उल्लेख पुलिस रपट में है।[२६] १९४४ की घटना के रपट में जो दर्ज किया है वह भी पुलिस ने न्या॰ कपूर आयोग को नहीं बताया। गांधीजी की मोटर का पहिया पंचर करने के लिए खंजर लाया था, ऐसा पुलिस ने आयोग से कहा। जिसके पास खंजर मिला, वह कह रहा था कि आत्मरक्षा के लिए खंजर लाया था, फिर भी पुलिस ने यह जानकारी आयोग को क्यों नहीं दी? आयोग ने सेवाग्राम की घटना के सम्बन्ध में मुंशी की बात की पुष्टि की है। और साथ ही टायर पंचर करने के लिए खंजर लाया था यह, पुलिस का अजीब तर्क भी मान्य किया है। अत: पुलिस-डायरी में दर्ज नहीं है, इसलिए पंचगनी की घटना घटित ही नहीं हुई, ऐसा मानना विश्वसनीय नहीं लगता।

पुणे के हिन्दुत्ववादी गांधीजी की जान लेने पर तुले थे। यह लगातार किये जा रहे प्रयासों से सिद्ध है। पुणे में, १९३४ में बम हमला हुआ। सन् १९४४ में सेवाग्राम में गांधीजी को जान से मारने का ही इरादा था। पंचगनी में छुरा लेकर गांधीजी की ओर लपकनेवाले जिस आदमी को पकड़ा गया, वह नाथूराम गोडसे था, ऐसा मणिशंकर पुरोहित और पूना हेराल्ड के सम्पादक डेविड कहते हैं। और, महात्मा गांधी २९ जून, १९४६ को मुम्बई से पूना जा रहे थे, तब गांधीजी को मारने के इरादे से नेरल और कर्जत स्टेशनों के बीच रेलवे मार्ग पर बड़ी-बड़ी चट्टानें डाली गयीं थीं। ट्रेन के ड्राइवर एल॰ एम॰ परेरा की सतर्कता के कारण दुर्घटना टली। पर इंजन का काफी नुकसान हुआ। प्यारेलाल ने ७ जुलाई, १९४६ के हरिजन में इस घटना के सम्बन्ध में लेख लिखा है। डी॰ जी॰ तेन्डुलकर लिखते हैं, "गांधीजी को ले जानेवाली खास ट्रेन २९ जून की रात को तेज गति से चल रही थी। नेरल और कर्जत स्टेशनों के बीच पटरी पर डाली गयी चट्टानों से ट्रेन टकरायी। ये चट्टानें जान-बूझकर पटरी पर डाली गयी थीं। इंजिन ड्राइवर की सतर्कता से दुर्घटना टली। वरना ट्रेन उलटने पर बड़ी हानि होती।"[२७] पुणे पुलिस ने आयोग के सामने कहा कि, "मालगाड़ी गिराने के

लिए कुछ लोगों ने रेलवे मार्ग पर चट्टानें रखीं थीं। जब 'गांधी स्पेशल' ट्रेन (इस गाड़ी को यही-नाम दिया गया था, ऐसा ड्राइवर परेरा ने आयोग के सामने कहा।) जानेवाली थी, उसके पहले या बाद में उस लाइन पर कोई मालगाड़ी जानेवाली नहीं थी। इसलिए मालगाड़ी लूटने के लिए चट्टानें डाली थीं, यह मानना कठिन है। पुणे में ३० जून की प्रार्थना-सभा में बोलते हुए महात्मा गांधी ने कहा था कि मेरी ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त करने का प्रयास किया गया। "ईश्वर की कृपा से मैं सात बार मृत्यु के मुख से सुरक्षित बच निकला हूँ। मैंने कभी किसी को चोट नहीं पहुँचायी। मेरी किसी से शत्रुता नहीं। फिर इतनी बार मेरी जान लेने के प्रयास क्यों हुए, समझ में नहीं आता। मेरी जान लेने का कल का प्रयास असफल रहा। मैं इतनी जल्दी मरूँगा भी नहीं। मैं तो सवा सौ वर्ष जीनेवाला हूँ।" महात्मा गांधी ने सवा सौ वर्ष जीने की बात कही, तब नाथूराम गोडसे ने सवाल किया था कि "पर जीने कौन देगा?" उसके इस उद्गार और पहले की घटनाओं से स्पष्ट होता है कि नाथूराम गोडसे के मन में काफी समय से गांधीजी को मारने का विचार था। मालगाड़ी लूटने के लिए चट्टानें डाली थीं, ऐसा पुलिस ने कहा है। २९ जून के पहले या बाद में उस मार्ग पर कभी मालगाड़ी नहीं लूटी गयी। क्या लुटेरों को २९ जून का ही मुहूर्त सबसे उचित लगा? २९ जून से पहले या बाद में उस मार्ग पर मालगाड़ी लूटने की प्रेरणा लुटेरों को नहीं हुई। केवल २९ जून को ही हुई? यह तर्कसंगत नहीं लगता। इस मार्ग पर बार-बार मालगाड़ियाँ लूटी जाती रहतीं तो पुलिस की बात का कुछ अर्थ होता। परन्तु 'गांधी स्पेशल ट्रेन' दुर्घटनाग्रस्त करने का प्रयास उस मार्ग पर एकमेव प्रयास था। अतः पुलिस की बात पर कोई विश्वास नहीं करेगा। 'गांधी स्पेशल' से पहले या बाद में कोई मालगाड़ी गयी होती तब भी पुलिस का तर्क मान्य हो सकता था। पर वैसी कोई मालगाड़ी गयी ही नहीं, अत: पुलिस द्वारा दिये कारण बनावटी लगते हैं।

गांधीजी के सम्बन्ध में हिन्दुत्ववादियों का प्रचार अत्यन्त निम्न स्तर का था, भड़काऊ था। अलवर रियासत का उदाहरण दिया जा सकता है। डॉ॰ ना॰ भा॰ खरे अलवर रियासत के प्रधानमंत्री थे। वे हिन्दू महासभा के एक नेता भी थे। खरे का गांधी-विरोध बहुत कड़ा, प्रखर था। भड़काऊ, आक्रामक भाषण करने और पर्चे छपवाने के लिए वे प्रख्यात थे। अलवर रियासत के पर्चे और वहाँ की गांधी-विरोधी राजनीति की कुछ बातें कपूर आयोग के सामने आयीं। एक हिन्दी पोस्टर

में बहुत स्पष्ट रूप से गांधी-हत्या के लिए भड़काया गया था। प्रमाण के तौर पर आयोग ने उसे प्राप्त कर लिया था। उसमें लिखा था, "महात्मा गांधी के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर कौवों-कुत्तों को खाने के लिए फेंक दो।" ऐसी भाषा पोस्टर में थी। गांधी-हत्या के बाद पूछताछ के लिए दिल्ली से अलवर पुलिस भेजी गयी। अलवर के चीफ पुलिस अफसर यू॰ एल॰ मल्होत्रा को जाँच का काम सौंपा गया। तब पता चला कि नागपुर से नाथूराम शुक्ल नाम का आदमी दिसम्बर, १९४७ में अलवर आया था। हिन्दू महासभा के मंच से उसने भाषण दिये। नाथूराम शुक्ल और नाथूराम गोडसे का वर्णन आपस में मिलता नहीं है। अत: यह कहना कठिन है कि वर्णन में कुछ गलती हुई या दोनों अलग आदमी थे। गिरिधर सिद्धा नामक एक साधु बाहर से अलवर आया था। उसके पास एक छपा पत्र था, जो वह कुछ लोगों को बाँट रहा था। ३० जनवरी, १९४८ की शाम ५ बजे गांधीजी की हत्या हुई। पत्र में शाम ३ बजे गांधीजी की हत्या हुई, ऐसा लिखा था। ये पर्चे ३० जनवरी को ही अलवर में बाँटे गये। अलवर में गांधी-विरोधी वातावरण निर्माण करने में डॉ॰ ना॰ भा॰ खरे का हाथ था या नहीं, इस विषय में स्पष्ट निष्कर्ष निकालना कठिन है, ऐसा कपूर आयोग कहता है। पर डॉ॰ खरे का हाथ था या नहीं था, ऐसा निश्चित निष्कर्ष निकालना कठिन है, यह कहकर आयोग ने डॉ॰ खरे की ओर ही अँगुली निर्देश किया है।

व्यक्तिगत हिंसा पर हिन्दुत्ववादी जोर देते थे। विचारों का मुकाबला विचारों से करने जैसा प्रभावशाली विचार उनके पास नहीं था। जब नये विचारों के सामने पुराने विचार टिकते नहीं हैं और नये विचार स्वीकारने की तैयारी नहीं होती है, तब इसी तरह की विकृति पैदा होती है। विचारों का मुकाबला विचारों से करने की सामर्थ्य हिन्दुत्ववादियों के पास नहीं थी, इसलिए वे बम, शस्त्रास्त्रों का सहारा लेते थे। ।

हिन्दुओं के मन में मुस्लिमों के प्रति द्वेष-भावना निर्माण करने के लिए देहात के लोगों पर हमला करने में वे आगे-पीछे नहीं देखते थे। न्या॰ कपूर आयोग के सामने मेरठ रेंज के डी॰ आई॰ जी॰ बी॰ बी॰ एस॰ जेटली ने अपनी गवाही में कहा कि आजादी के तुरन्त बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने हथियार इकट्ठा कर कुछ देहातों और व्यक्तियों पर हमले करने का षड्यंत्र रचा था। इस सम्बन्ध में संघ के सात सौ से भी ज्यादा लोगों पर मुकदमे दायर किये गये थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक

संघ पर प्रतिबन्ध लगाया जाय, इस तरह की सिफारिश गांधी-हत्या से पहले मैंने सरकार से की थी। यह जानकारी भी जेटली ने दी। इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री गोविन्दवल्लभ पंत और गृहमंत्री लालबहादुर शास्त्री से जेटली ने चर्चा की थी। संघ पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध में दोनों ने सहमति दर्शायी। परन्तु सरदार वल्लभभाई पटेल से चर्चा करनी होगी। संघ पर प्रतिबन्ध तो लगा, पर गांधी-हत्या के बाद। अक्तूबर-नवम्बर, १९४७ में जेटली और सरदार पटेल में चर्चा हुई। कुछ भयानक घटना होनेवाली है, ऐसा जेटली ने सरदार पटेल से कहा। तब गांधीजी की हत्या होगी ऐसा मैंने नहीं सोचा था। पण्डित नेहरू की हत्या होगी, इस तरह की जानकारी थी, ऐसा जेटली ने आयोग से कहा। मैं खुद मदनलाल पहवा से १९८८-८९ के बीच मिला था। गांधी-हत्या के सम्बन्ध में उसे पछतावा है या नहीं, यह मैं जानना चाहता था। गांधी-हत्या पर मदनलाल को गर्व था। गांधी के साथ-साथ हम पण्डित नेहरू, सुहरावर्दी और जिन्ना को भी मारना चाहते थे। ऐसा उसने मुझसे कहा। बी॰ बी॰ एस॰ जेटली मेरठ रेंज के डी॰ आई॰ जी॰ थे। नेहरू-हत्या की सम्भावना वे कपूर आयोग के सामने व्यक्त करते हैं। पहवा की बात से जेटली की बात को समर्थन मिलता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जेटली ने हथियार बरामद किये। वे हथियार गांधीजी को दिखाने की कोशिश की, पर गांधीजी ने हथियारों की ओर देखा तक नहीं। ऐसा जेटली ने बताया। हिन्दुत्ववादियों ने आजादी के पहले ये हथियार इकट्ठे किये थे। बम भी इस्तेमाल किये थे। अहमदनगर जिले में २४ नवम्बर, १९४७ और २६ दिसम्बर, १९४७ के बीच ४ बम-विस्फोट हुए। २४ नवम्बर को कावड बाजार में ताजिया जुलूस में एक, ७ दिसम्बर को वसंत टॉकीज में दूसरा, १४ दिसम्बर को काजी सुलतानभाई के घर पर तीसरा और २६ दिसम्बर को तट्टी दरवाजा मस्जिद पर चौथा। इसके अलावा रावसाहब पटवर्धन की सभा में भी बम-विस्फोट हुआ। मदनलाल की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में १६ जनवरी, १९४८ को मुम्बई के गृहमंत्री मोरारजी देसाई ने आदेश दिये थे। मोरारजी के आदेश का पालन नहीं किया गया, इस सम्बन्ध में कपूर आयोग ने नाराजगी व्यक्त की है। इसे केवल पुलिस-विभाग का ढीलापन नहीं कहा जा सकता। पुलिस-विभाग के अफसर हिन्दुत्ववादियों से मिले हुए थे, इसी निष्कर्ष पर आना यथार्थ होगा। प्यरेलाल की गवाही इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डालती है। वे कहते हैं, 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग गृह-विभाग में

इन्फिल्ट्रेट हुए थे। पुणे और अहमदनगर में ३० जनवरी, १९४८ से पहले काफी बम-विस्फोट हुए थे। उससे भी अगर पुलिस-विभाग जागृत हो जाता तो गांधीजी को बचाना सम्भव हो जाता।' अगले अध्याय में दी गयी यथार्थ जानकारी होने पर गांधीजी की हत्या टालना असम्भव था, इस बात पर कोई विश्वास नहीं करेगा। इच्छा-शक्ति और व्यवस्था का अभाव, इन कारणों से गांधीजी की हत्या हुई। नाथूराम की गोलियाँ तो बाद में निमित्त बनीं। गोलियों से भी इच्छाशक्ति का अभाव और अव्यवस्था अधिक प्राणघातक साबित हुई।

२५. *न्यायमूर्ति कपूर आयोग, इतिवृत्त* : खण्ड २।

२६. *महात्मा गांधी : दी लास्ट फेज* : खण्ड १, प्यारेलाल, (फुटनोट) पृष्ठ ७१३।

२७. *महात्मा : खण्ड ७, डी॰ जी॰ तेन्डुलकर।*

लापरवाही

गांधी-हत्या होनेवाली है, ऐसी बातें मैंने बचपन में सुनी थीं। वे ही बातें बड़े होने पर प्रत्यक्ष सुनने और अपनी आँखों से देखने का मौका मिला। यह दुर्लभ ही कहा जायेगा! गांधीजी के साथी कांग्रेस के नेताओं का आचरण भी गांधीजी के प्रतिकूल रहा, यही कहना होगा। खासकर उनके अन्तिम दिनों में कुछ नेताओं का व्यवहार बड़ा निष्ठुर रहा। गांधीजी की वजह से विभाजन हुआ, ऐसा प्रचार हो रहा था। तब बड़े नेताओं में से किसीने भी इस प्रचार का प्रतिवाद करने का प्रयास नहीं किया। २० जनवरी, १९४८ की गांधीजी की प्रार्थना-सभा में बम-फटने की घटना से भी इन लोगों ने कोई सबक नहीं लिया। गांधीजी का धैर्य असाधारण था। न॰ र॰ फाटक की *'भारतीय राष्ट्रवादाचा विकास'* पुस्तक पढ़ने से गांधीजी के असाधारण साहस और धैर्य का पता चलता है। "मुसलमानों को बचाने के लिए, उन्हें शान्त करने के लिए गांधीजी ने द्वेषाग्नि में झुलसती दिल्ली में जो साहस दिखाया, वह विस्मयकारी था। एक बार ३०-४० हजार की मुस्लिम बस्ती में गांधीजी अकेले ही गये। एक मस्जिद में इकट्ठा भीड़ में अकेले ही घुस गये। तब सारी दुनिया ने उनके साहस का अनुभव किया। वे मुस्लिमों को सांत्वना देने जाते थे, तब उनके साथ पुलिस नहीं रहती थी। उनकी उम्र ७८ वर्ष थी। उम्र के लिहाज से उनका साहस असाधारण ही था। यह साहसी आचरण उनकी कर्तव्यनिष्ठा का परिचायक है। किसी तरह की सुरक्षा-व्यवस्था न लेनेवाले एक बुजुर्ग की जान लेना शौर्य का लक्षण नहीं, कायरता है।" न॰ र॰ फाटक ने आगे लिखा है, "हिन्दुओं के अनेक समाचार-पत्र गांधीजी के आचरण का भरसक विपर्यास कर रहे थे।" वे ही विपरीत बातें आज सच मानी जा रही हैं। २० जनवरी, १९४८ के बम-विस्फोट के बाद मुम्बई के एक युवक को पुलिस ने गिरफ्तार किया है, यह खबर २१ जनवरी के अखबारों में छपी। उसे पढ़कर प्रो॰ जे॰ सी॰ जैन (डॉ॰ जगदीशचन्द्र जैन) मुम्बई प्रदेश के गृहमंत्री मोरारजी देसाई से मिलने गये। जैन पहवा को जानते थे। वे चेम्बूर के शरणार्थियों की छावनी में शरणार्थियों की मदद करने जाते थे। तब पहवा से सम्पर्क हुआ था। जैन ने कुछ पुस्तकें लिखी हैं। उन्हें बेचने का काम पहवा करता था। जैन उसे कमीशन देते थे। कमीशन के पैसे मिलने के बाद एक दिन पहवा जैन के पास गया और उनसे पैसे माँगने लगा। 'अभी तो पैसे दिये थे। अब फिर पैसे किसलिए चाहिए?" इस प्रश्न के

जवाब में पहवा ने कहा, 'मुझे दिल्ली जाना है।' दिल्ली क्यों जाना है? इस प्रश्न का उत्तर वह टाल रहा था। उसकी टालमटोल देखकर जैन उसे शिवाजी पार्क के समुद्र-किनारे ले गये। आखिर उसने बताया कि एक नेता की हत्या करने जा रहा हूँ। लेकिन नेता का नाम बताने से इनकार करता रहा। तब जैन कुछ नेताओं के नाम लेकर पूछते गये। पहवा हर बार इनकार करता रहा। आखिर जैन ने गांधीजी का नाम लिया। तब पहवा ने कबूल किया कि गांधी-हत्या की योजना बनी है। जैन खुद कम्यूनिस्ट थे। उन्होंने पहवा को समझाने की कोशिश करते हुए कहा कि, "गांधी बड़े हैं। उन्हें मारने का विचार छोड़ दो।" आखिर पहवा ने जैन की बात मानने का दिखावा किया और चला गया। बाद में १५-२० दिन पहवा जैन से नहीं मिला। शरणार्थी गुस्से में गांधीजी के विषय में बोलते रहते हैं। उसी तरह पहवा बोला होगा, ऐसी जैन की धारणा बनी। पर २० जनवरी के बम-विस्फोट के सम्बन्ध में पहवा पकड़ा गया है, यह खबर पढ़कर उन्हें पहवा की बात पर विश्वास हुआ। मोरारजी देसाई से मिलकर उन्होंने सारी जानकारी दी। जैन कम्यूनिस्ट थे, अत: मोरास्जी देसाई ने अपने कक्ष में उनसे बातचीत नहीं की। बरामदे में मोरारजी ने सारी बातें सुनीं। मोरारजी देसाई ने कपूर आयोग के सामने भी यह स्वीकार किया कि २१ जनवरी को प्रो॰ जैन ने गांधी-हत्या के सम्बन्ध में मुझे जानकारी दी थी। अपनी जानकारी प्रो॰ जैन ने पुलिस को नहीं बतायी, यह दोषारोपण कपूर आयोग ने प्रो॰ जैन पर किया। एक प्राध्यापक पुलिस तक पहुँचकर पुलिस का झमेला अपने पीछे लगा लेने के लिए राजी नहीं होगा, इस बात का विचार आयोग ने नहीं किया। राज्य के गृहमंत्री तक जानकारी पहुँचाने के बाद पुलिस को बताना आवश्यक नहीं है, ऐसा प्रो॰ जैन को लगा होगा। अगर मोरारजी देसाई यह कहते कि जैन ने मुझे कोई जानकारी नहीं दी थी, तब यह कहना ठीक होता कि जैन ने अपनी जानकारी पुलिस तक नहीं पहुँचायी। पर मोरारजी देसाई ने इस बात को स्वीकार किया। अत: जैन ने पुलिस को जानकारी क्यों नहीं दी, इस मुद्दे का महत्त्व कम हो जाता है।

कपूर आयोग के सामने अपनी गवाही में मोरारजी देसाई ने कहा, "प्रो॰ जैन द्वारा दी गयी जानकारी के सम्बन्ध में मुम्बई के पुलिस उपायुक्त जे॰ डी॰ नगरवाला को छानबीन करने की सूचना मैंने २१ जनवरी को दी। और सारी जानकारी सरदार वल्लभभाई पटेल को देने के लिए मैं

उसी दिन अहमदाबाद गया। गोपनीयता की दृष्टि से फोन पर बात करना मैंने उचित नहीं समझा। मैंने जब सरदार पटेल को सब बताया तब उन्होंने कहा कि मेरे सूत्रों से भी मुझे यह जानकारी मिली है।"[२९]

मोरारजी देसाई की गवाही से पता चलता है कि गांधी-हत्या की योजना की जानकारी २२ जनवरी के पहले ही सरदार पटेल को मिल गयी थी। मोरारजी ने भी उन्हें जानकारी दे दी थी। २० जनवरी को मदनलाल पहवा को गिरफ्तार किया गया। उसने अपनी योजना में शामिल कुछ साथियों के नाम पुलिस को बताये थे। मदनलाल का बयान दिल्ली पुलिस के हाथ में था। मुम्बई के गृहमंत्री ने केन्द्रीय गृहमंत्री पटेल से मिलकर सारी जानकारी दी थी। उस समय पटेल कहते हैं कि मेरे सूत्रों से भी मुझे यह जानकारी मिली है। मदनलाल ने बम-विस्फोट किया, उसके ठीक १० दिन बाद गांधीजी की हत्या हुई। जानकारी मिलने के बाद के १० दिनों में पुलिस को हर तरह के प्रयास करके गांधीजी के हत्यारों को ढूँढ़ निकालना चाहिए था। केन्द्रीय गृहमंत्री द्वारा खुद इस सम्बन्ध में पुलिस को बार-बार सूचना देकर इस खोज के लिए उन्हें बाध्य करना बहुत जरूरी था। इस सम्बन्ध में क्या किया गया? मोरारजी देसाई की बात सुनकर सरदार पटेल कहते हैं कि मुझे यह जानकारी मिली है। इस बात की पुष्टि पटेल के सचिव वी॰ शंकर और कन्या मणिबेन ने भी कपूर आयोग के सामने की थी। रावसाहब पटवर्धन की सभा में बम-विस्फोट करनेवाला मदनलाल पहवा और २० जनवरी को गांधीजी की प्रार्थना-सभा में बम-विस्फोट करनेवाला मदनलाल पहवा एक ही था। स्वयं मोरारजी देसाई ने पहवा को गिरफ्तार करने का आदेश दिया था। फिर भी २० जनवरी के पहले पुलिस ने उसे गिरफ्तार नहीं किया। अगर रावसाहब पटवर्धन की सभा में बम-विस्फोट करने के सिलसिले में पहवा को गिरफ्तार कर लिया जाता, तब भी गांधी-हत्या टाली जा सकती थी। २० जनवरी को बम-विस्फोट करनेवाला पहवा और प्रो॰ जैन जिसके सम्बन्ध में बता रहे हैं वह मदनलाल पहवा एक ही व्यक्ति है, यह मालूम होने पर पुलिस की खोज अधिक गति से और सतर्कता के साथ चलती, तब भी गांधीजी के प्राण बचाना सम्भव होता। गांधीजी की हत्या होनेवाली है, ऐसी चर्चाएँ बहुत दिनों से चल रही थीं। उस पर विश्वास नहीं हुआ, यह थोड़ी देर के लिए माना जा सकता है। लेकिन २० जनवरी के विस्फोट के बाद उस चर्चा पर अधिक गम्भीरता

से ध्यान देना आवश्यक था। विस्फोट के बाद हत्या की सम्भावना बढ़ी है, यह जानकर अधिक सतर्कता बरतना सरकार की जिम्मेदारी थी। खासकर केन्द्रीय गृहविभाग की यह जिम्मेदारी थी। सरदार पटेल को गांधी-हत्या के सम्बन्ध में पूर्व सूचनाएँ मिलने पर उन्होंने गांधीजी से बातें कीं। गांधीजी ने पुलिस की सुरक्षा लेने से साफ इनकार कर दिया। अगर पुलिस तैनात की जायेगी तो मैं दिल्ली छोड़कर चला जाऊँगा, यह भी गांधीजी ने कहा। यह सब सच है। पर फिर भी प्रश्न उठता है कि 'पुलिस तैनात न करो' यह एक बात ही सरदार पटेल ने क्यों मानी? क्या गांधीजी ने यही एक बात कही थी? कांग्रेस विसर्जित कर लोकसेवक संघ में उसका रूपान्तर करो यह भी तो गांधीजी ने कहा था। इतना ही नहीं, २९ जनवरी, १९४८ को कांग्रेस विसर्जित करने के प्रस्ताव का प्रारूप भी तैयार किया था, जो इस प्रकार है :

"कांग्रेस के नेतृत्व में भारत ने राजनैतिक आजादी प्राप्त की है। कांग्रेस का आज का जो स्वरूप है, उसका ढाँचा प्रचारी स्वरूप का है। संसदीय तंत्र का वह एक यंत्र बन गया है। इसीलिए आज की परिस्थिति में कांग्रेस कालबाह्य हो गयी है। राजनैतिक पक्षों की स्पर्द्धा से उसे अलग करना होगा। ये और कुछ अन्य कारणों की वजह से कांग्रेस विसर्जित करके उसका रूपान्तर लोक सेवक संघ में किया जाय।" ३० जनवरी को गांधीजी की हत्या हो गयी। अत: कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में यह प्रस्ताव रखने का सवाल ही नहीं रहा। गांधीजी ने पुलिस तैनात करना नामंजूर किया, इसी बात को केवल शिरोधार्य माना गया।

कांग्रेस का लोक सेवक संघ में रूपान्तर किया जाय, यह गांधीजी की बात पटेल ने क्यों नहीं मानी? अगर कांग्रेस विसर्जित नहीं करनी हो तो जयप्रकाश नारायण या आचार्य नरेन्द्रदेव को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाय, यह सलाह गांधीजी ने सरदार पटेल को दी थी। उसे पटेल ने क्यों नहीं माना? पुलिस तैनात न की जाय यही एक बात पटेल ने क्यों मानी? इन प्रश्नों के उत्तर मिलने चाहिए, तभी गांधी-हत्या क्यों सम्भव हुई, इसका पता चल सकता है। महात्मा गांधी की हत्या के बाद मुम्बई प्रान्त की विधानसभा में ए॰ जे॰ दोड्डामेटी ने एक अल्पकालिक प्रश्न पूछा था। (प्रश्न क्रमांक ८६४, तारीख : २० फरवरी, १९४८) अधिकारियों ने नौकरशाही छाप उत्तर तैयार किया था : 'गांधी-हत्या की साजिश की छानबीन अभी पूरी होनेवाली है। अतः गांधी-हत्या की

पूर्व-सूचना मिली थी क्या, इस प्रश्न का उत्तर अधिकारियों ने तैयार किया था कि 'नहीं मिली थी'। स्वयं मोरारजी देसाई ने इस उत्तर में अपने हस्ताक्षर में परिवर्तन कर उत्तर दिया था कि "२१ जनवरी, १९४८ को सरकार को गांधी-हत्या सम्बन्धी जानकारी मिली थी। २२ जनवरी को यह जानकारी गृहविभाग को (अर्थात् केन्द्रीय गृहमंत्री सरदार पटेल को) दी थी।" सरदार पटेल को गांधी-हत्या की पूर्व-सूचना थी, इस सम्बन्ध में सन्देह का कोई कारण ही नहीं है। सरदार पटेल के सचिव ने भी कपूर आयोग के सामने कहा था कि पूना में गांधी-हत्या की साजिश रची गयी है। इसकी जानकारी मोरारजी देसाई द्वारा दिये जाने के पहले ही सरदार पटेल को मिल गयी थी। सन् १९३४ में पूना में गांधीजी पर बम फेंकने का प्रयास हुआ। पूना के पास ही गांधीजी की ट्रेन को दुर्घटनाग्रस्त करने का प्रयास किया गया। सेवाग्राम में ल॰ ग॰ थत्ते तथा नाथूराम के पास खंजर मिला, ये बातें कैसे भुला दी गयीं? गांधी-हत्या की साजिश पूना में चल रही है। यह जानकारी गृहविभाग को २२ जनवरी के पहले ही मिल चुकी थी। पूना के ही हिन्दुत्ववादियों ने पहले भी गांधी-हत्या के प्रयास किये थे। गांधीजी ने प्रार्थना-सभा में पुलिस तैनात करने का विरोध किया था। गृहविभाग को मिली जानकारी के आधार पर साजिश से सम्बन्धित व्यक्तियों को खोजने का विरोध तो नहीं किया था, फिर खोज क्यों नहीं की गयी? इसीलिए गांधी-हत्या के बाद जयप्रकाश नारायण कई जाहिर सभाओं में प्रश्न उठाते थे कि "रियासतों के विलीनीकरण का श्रेय सरदार पटेल का, हैदराबाद की कार्यवाही का श्रेय सरदार पटेल का, फिर गांधी-हत्या की जिम्मेदारी किसकी ? गांधी-हत्या के बाद सरदार पटेल ने राजाजी के पास हत्या के कारणों की मीमांसा करते हुए कहा था, "पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायँ, ऐसी सलाह गांधीजी ने दी, इस बात से क्षुब्ध होकर गांधी-हत्या की साजिश रची गयी। पाकिस्तान भारत के विरोध में सैनिक कार्यवाही कर रहा था। ऐसे समय यह सलाह देकर गांधीजी ने देश को बड़ा नुकसान पहुँचाया। उनकी यह सलाह अक्षम्य है, ऐसा मत महाराष्ट्र के गांधी-विरोधी लोगों का था। इस पागल सन्त को दुनिया से हटाये बगैर देश चैन की साँस नहीं ले पायेगा। ऐसा साजिश करनेवाले सोचते थे।"[३०] परन्तु कश्मीर में जब घुसपैठ हुई और कश्मीर ने विलीनीकरण किया, तब सरदार पटेल गांधीजी से सलाह लेने गये थे। उस समय गांधीजी ने पूछा था कि कश्मीर में पहले ही सेना क्यों नहीं भेजी?

कश्मीर में पाकिस्तान ने घुसपैठ की, तब कश्मीर स्वतंत्र था। जिससे पाकिस्तानियों की घुसपैठ भारत में की हुई घुसपैठ नहीं मानी जा सकती थी। नियोजन आयोग के सदस्य रा॰ कृ॰ पाटील के विचारों पर भी ध्यान देना होगा। क्या पटेल का कथन हत्यारों के प्रति सहानुभूति रखनेवाला नहीं है? सरदार पटेल की मीमांसा इस प्रश्न का उत्तर नहीं देती कि सन् १९३४ से ही गांधी-हत्या के प्रयास क्यों हो रहे थे। ये प्रयास पुणे के हिन्दुत्ववादी ही क्यों कर रहे थे? पचपन करोड़ रुपये की बात से हत्या के लिए बहाना मिल गया। पचपन करोड़ रुपये के विषय में अगर गांधीजी अपराधी थे तो पचपन करोड़ रुपये देने का समझौता करनेवाले अपराधी क्यों नहीं थे? आखिर यह समझौता किया किसने था? क्या सरदार पटेल ने उस समय विरोध किया था? नहीं। ऐसी परिस्थिति में समझौता करनेवाले को अपराधी न मानकर, किये हुए समझौते का पालन करो, ऐसा कहनेवाले गांधीजी को अपराधी मानकर उनकी हत्या का समर्थन करनेवालों के हाथ गांधी-हत्या के खून से रंगे नहीं हैं, यह मानना मुश्किल है।

गांधी-हत्या से पहले हत्यारों ने क्या-क्या किया? इसका लेखा-जोखा लेने से पहले कपूर आयोग की ओर देखना महत्त्वपूर्ण होगा। गांधीजी की जान बचाने की सम्भावना के सम्बन्ध में कपूर आयोग कहता है, 'प्रार्थना-सभा में बम-विस्फोट हुआ था, उससे पहले मिली जानकारी और खुद मदनलाल के बारे में प्रो॰ जैन द्वारा दी गयी जानकारी पर ध्यान दें, तो गांधी-हत्या की सम्भावना को नजरअन्दाज करना उचित नहीं था। गांधीजी ने अपनी सुरक्षा के लिए पुलिस की तैनाती का विरोध किया था। फिर भी पुलिस की तैनाती का आडम्बर न रचाकर पुलिस-संरक्षण दिया जा सकता था। देना आवश्यक था।[३१] न्या॰ कपूर आयोग ने २० जनवरी के बम-विस्फोट से पहले मिली जानकारी के आधार पर ऐसा कहा था। विस्फोट से पहले सरदार पटेल को जानकारी मिल गयी थी इस ओर आयोग संकेत कर रहा था। गांधीजी आपत्ति न उठायें, इस पद्धति से सुरक्षा किस प्रकार प्रदान की जा सकती थी, इस सम्बन्ध में भी कपूर आयोग ने विवरण दिया है। वर्दीरहित पुलिस तथा कांग्रेस के निष्ठावान् कार्यकर्ताओं का घेरा गांधीजी के चारों ओर रखकर सुरक्षा प्रदान की जा सकती थी। वैसा प्रयास करने में कोई कठिनाई नहीं थी। गांधीजी को सुरक्षा प्रदान करने में इतनी साधारण-सी कोशिश भी नहीं की गयी। आयोग कहता है, "इस तरह का

घेरा रहता तो नाथूराम गोडसे को गांधीजी की छाती पर पिस्तौल से गोलियाँ दागना सम्भव नहीं होता। सभी सम्भावनाओं का विचार कर व्यवस्था करना सरकार का कर्तव्य होता है।" सरदार पटेल की कार्यकुशलता की तारीफ की जाती है। उनके जैसे कुशल नेता के हाथ में गृहविभाग की बागडोर थी। फिर भी राष्ट्रपिता के प्राण बचाये न जा सके। गांधी-हत्या अचानक नहीं हुई। २० जनवरी को बम-विस्फोट हुआ था। सरदार पटेल को पहले ही गांधी-हत्या की साजिश के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हो गयी थी। २२ जनवरी को मोरारजी देसाई ने प्रो॰ जैन द्वारा मिली जानकारी सरदार पटेल तक पहुँचा दी थी। उसके बाद के १० दिनों में सुरक्षा प्रदान करने के सम्बन्ध में गांधीजी से अनुमति माँगने के अलावा और क्या किया गया? इस पूरी पृष्ठभूमि को देखते हुए जयप्रकाश नारायण का यह प्रश्न उचित ही लगता है कि अगर रियासतों के विलीनीकरण का श्रेय सरदार पटेल का था तो गांधी-हत्या की जिम्मेदारी किसकी थी? मेरे साथी अब मेरे साथ नहीं हैं यह बात विभाजन से पहले ही गांधीजी की समझ में आ चुकी थी। बै॰ पुरुषोत्तम त्रिकमदास जनवरी, १९४८ के पहले सप्ताह में गांधीजी से मिलने गये थे। तब गांधीजी ने उनसे कहा, "सरदार स्वयं को मेरा शिष्य समझते हैं। जवाहरलाल अपने आपको मेरा बेटा मानते हैं। दोनों मुझे पागल समझ रहे हैं। मेरी कोई सुनता नहीं है। मैं अकेला पड़ गया हूँ।" ऐसा विभाजन के प्रश्न पर भी गांधीजी ने कई बार कहा था। सन् १९३४ में जब कांग्रेस ने अपने उद्देश्यों में सत्य-अहिंसा को समाविष्ट करने का विरोध किया था, तब गांधीजी ने कांग्रेस की सदस्यता छोड़ दी थी। समाजवादियों ने कांग्रेस छोड़ने का तय किया है, ऐसा जब बै॰ त्रिकमदास ने गांधीजी से कहा, तब गांधीजी ने कहा, 'मेरा उपवास समाप्त होने तक कांग्रेस में बने रहो। सम्भव है शायद मैं ही तुम्हारे पक्ष में शामिल हो जाऊँ।'[३२] यह जानकारी बै॰ पुरुषोत्तमदास त्रिकमदास ने दी है। अत: उसकी सत्यता के विषय में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं। उस समय की खबरें भी इस बात की पुष्टि करती हैं कि गांधीजी समाजवादी पक्ष की परिषद् में उपस्थित थे।

महात्मा गांधी को समाजवादी पक्ष के विषय में एक अलग प्रकार का आकर्षण था। इसीलिए समाजवादियों से गांधी कुछ अलग अपेक्षाएँ रखते थे। कांग्रेस विसर्जित करने पर वे कांग्रेसजन, जिन्हें रचनात्मक कार्यों में रुचि है, लोक सेवक संघ में जायेंगे और नेहरू जैसे समाजवादी विचार

के लोग समाजवादी पक्ष में जायेंगे। पटेल जैसे नेता चाहें तो दक्षिणपंथी अपना अलग पक्ष बनायें। ऐसी कोई बात गांधीजी के मन में रही होगी। इसीलिए कांग्रेस विसर्जित करने की सलाह उन्होंने दी होगी। कांग्रेस के अन्तर्गत सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की बैठक हुई, तब गांधीजी उसमें उपस्थित थे। ऐसी खबर २ जुलाई, १९३४ के दैनिक *'सकाल'* में छपी है। "कांग्रेस के अंग के रूप में इस पक्ष की स्थापना की गयी, यह ठीक ही है। परन्तु पक्ष के कार्यक्रम ने अभी सुव्यवस्थित रूप धारण नहीं किया है। उसमें काफो सुधार करने होंगे। विविध वर्गों के बीच कलह, श्रेष्ठता की स्पर्द्धा हर जगह शुरू है। झगड़ों ने हिंसा का आश्रय लिया, तो हर झगड़ा कांग्रेस के उद्देश्यों से विसंगति पैदा करेगा। यह याद रखना होगा। अगर यह पक्ष अहिंसा व्रत का पालन करेगा, तो मैं इस पक्ष की स्थापना को बड़ी खुशी से सहमति दूँगा।" ऐसी खबर *'सकाल'* में छपी थी। शीर्षक था *'सोशलिस्ट पार्टी की परिषद् में गांधीजी'*। समाजवादी पक्ष के प्रति सहानुभूति होने के कारण ही शायद गांधीजी ने बै॰ पुरुषोत्तम त्रिकमदास से कहा होगा कि थोड़ा रुकिए। शायद मैं भी आपके पक्ष में शामिल हो सकता हूँ।

गांधीजी के विरोध के बावजूद पुलिस तैनात की गयी थी, ऐसा कहा जाता है। यह तैनाती कितनी सक्षम थी? दिसम्बर सन् १९४७ में केवल दरोगा और चार पुलिस हवलदार तैनात थे। २० जनवरी, १९४८ के विस्फोट के बाद अधिक सक्षम प्रबन्ध किया गया। एक असिस्टेण्ट इन्सपेक्टर, दो दरोगा और १६ पुलिस, इस तरह से कुल २६ लोग तैनात थे। ३० जनवरी १९४८ को एक अफसर ए॰ एन॰ भाटिया ड्यूटी पर आये ही नहीं। वे छुट्टी पर भी नहीं थे। सब-इन्सपेक्टर अमरनाथ झा देर से आये। बिड़ला हाउस का माली रघुनाथ नाइक अपनी गवाही में कहता है कि गोलियाँ दागनेवाले को पहले उसने पकड़ा। बाद में दो पुलिस सहायता के लिए आये। एक इन्सपेक्टर और एक सब-इन्सपेक्टर था, लेकिन उनमें से एक ने भी गोडसे को नहीं पकड़ा। २० जनवरी के बाद तैनाती बढ़ायी गयी। संख्या २६ हुई। उनमें से एक अफसर ३० जनवरी को आये नहीं थे। एक हत्या के बाद पहुँचे। माली ने गोडसे को पहले पकड़ा। बाद में सहायता के लिए पुलिस दौड़ी। यह था तैनाती का स्वरूप। गांधी-हत्या के अभियुक्त १८ जनवरी की शाम को प्रार्थना-सभा के स्थान पर गये थे। १९ जनवरी की शाम को ४ बजे मदनलाल के साथ सबने फिर

से जाकर प्रार्थना-सभा को बारीकी से देखा था। पुलिस तैनाती की जानकारी प्राप्त की थी। उस दिन सुबह १० बजे भी ये लोग प्रार्थना-सभा पर हो आये थे। दिन में तीन-तीन, चार-चार बार ये लोग वहाँ हो आये थे। ये लोग बार-बार क्यों आते हैं, ऐसा शक भी बिड़ला हाउस पर तैनात किसी पुलिस के मन में नहीं पैदा हुआ।

२० जनवरी को गोडसे बीमार था। वह हिन्दू महासभा के भवन में ही रुका। अन्य चार लोग फिर प्रार्थना-स्थान पर गये थे। २० जनवरी को विस्फोट हुआ। मदनलाल पकड़ा गया। तब उसके पास हथगोला भी मिला। उसी दिन नाथूराम गोडसे और नारायण आपटे कानपुर-इलाहाबाद मार्ग से मुम्बई पहुँचे। सन् १९३४ से हिन्दुत्ववादी गांधीजी पर बम फेंक रहे थे। बाद में पूना और नगर में कई विस्फोट हुए। इसके लिए मदनलाल और करकरे को गिरफ्तार करने के आदेश स्वयं मोरारजी देसाई ने दिये थे। पर पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया। २० जनवरी के पहले ही सरदार पटेल को गांधी-हत्या की साजिश का पता चल गया था। २२ जनवरी को मोरारजी देसाई ने खुद इस सम्बन्ध में जानकारी सरदार पटेल को दी थी। हत्यारे १८ जनवरी से बार-बार बिड़ला हाउस जाकर उस स्थान को देखते रहे थे। हिन्दू महासभा के दफ्तर के पीछे वे निशानेबाजी का अभ्यास करते थे। फिर भी दिल्ली-पुलिस साजिश करनेवालों का पता नहीं लगा सकी। यह सब देखने पर ही प्यारेलाल इस निष्कर्ष तक पहुँचे होंगे कि दिल्ली-पुलिस में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघवाले तथा अन्य गांधी-विरोधी लोग इन्फिल्ट्रेट' किए हुए हैं। २० जनवरी के विस्फोट की खबर देते हुए स्टेट्समैन लिखता है कि यह गांधी को जान से मारने की साजिश थी। बॉम्बे क्रानिकल ने भी इसी तरह की खबर दी थी। पकड़े जाने पर मदनलाल ने करकरे का नाम, उसका दिल्ली में ठहरने का स्थान, उसके साथ और कौन हैं, यह सारी जानकारी पुलिस को दी थी। २१ जनवरी को मदनलाल को रिमाण्ड मिला, उस दिन पूना के *'हिन्दू-राष्ट्र'* नामक समाचार-पत्र के मालिक का नाम उसने बताया। (मालिक नाथूराम गोडसे था।) २३ जनवरी को मरीना होटल के होटल बॉय ने एन॰ वी॰ जी॰ आद्याक्षर लिखे हुए धोबी के पास के कपड़े पुलिस को दिये। इतने स्पष्ट प्रमाणों के बावजूद हिन्दू-राष्ट्र के मालिक को पुलिस खोज न पायी। यह है सक्षम गृहविभाग की कार्यक्षमता और उसकी सक्षम पुलिस! दिल्ली-पुलिस ने धोबी के कपड़ों के आध्याक्षर मुम्बई-पुलिस को बताये

नहीं थे। २९ और ३० जनवरी को इन लोगों ने बिड़ला हाउस के पीछे निशानेबाजी का अभ्यास किया था।

महात्मा गांधी के अन्तिम संस्कार के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर पाबन्दी लगाने का निर्णय लिया गया। प्रान्तों की सरकारों को रात में इसकी गुप्त सूचनाएँ देने का निर्णय हुआ। इस निर्णय की कार्यवाही में गोपनीयता रखी जायेगी, यह निर्णय भी हुआ। परन्तु मंत्रिमण्डल का निर्णय कुछ घण्टों में ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघवालों तक पहुँच गया। वे भूमिगत (अण्डर ग्राउण्ड) हो गये। २० जनवरी के विस्फोट के बाद मदनलाल के बयान की जानकारी मंत्रिमण्डल की बैठक तक किसी को भी नहीं दी गयी। ऐसा केन्द्रीय गृहविभाग के सचिव आर॰ एन॰ बनर्जी ने कहा है।[३३] मंत्रिमण्डल की बैठक में शाम को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर पाबन्दी लगाने का निर्णय लिया गया। देर रात यह निर्णय सब राज्य सरकारों तक पहुँचाने का तय हुआ। परन्तु शाम और रात के बीच के कुछ ही घण्टों में यह निर्णय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों तक कैसे पहुँच गया? यह निर्णय किसने पहुँचाया? यह गोपनीय निर्णय संघ के लोगों तक तुरन्त पहुँच गया। पर मदनलाल का बयान गृहसचिव से भी छिपाकर रखा गया। मंत्रिमण्डल को भी बयान की जानकारी नहीं दी गयी। मंत्रिमण्डल का गोपनीय निर्णय संघवालों तक पहुँच जाता है, पर मदनलाल का बयान मंत्रिमण्डल तक नहीं पहुँचता। यह कैसा अँधेर? १५ फरवरी, १९४८ को जयप्रकाश नारायण का पटना में भाषण हुआ। १८ फरवरी १९४८ के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में भाषण का वृत्तान्त छपा। भाषण में वे कहते हैं "कुछ प्रमुख मंत्री अगर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को बढ़ावा न देते, उनके सम्मेलनों में उपस्थित न रहते तो गांधीजी इतनी जल्दी हमारे बीच से बिदा न होते।" जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया तथा कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने एक संयुक्त संवाददाता सम्मेलन बुलाया। *'बॉम्बे क्रानिकल'* में ४ फरवरी को उसकी खबर छपी, मंत्रिमण्डल में जातिवादी मंत्रियों को स्थान न दिया जाय, ऐसी माँग कुछ नेताओं ने की थी। गांधीजी की हत्या के बाद सरदार पटेल ने यह प्रस्ताव कांग्रेस कार्यकारिणी में मंजूर करवा लिया था कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को कांग्रेस की युवा शाखा माना जाय। इस प्रस्ताव पर अमल न किया जाय, इसके लिए जिन नेताओं ने

प्रयत्न किये, उनमें महाराष्ट्र कांग्रेस के तत्कालीन मुख्य सचिव यशवंतराव चौहान का योगदान महत्त्वपूर्ण था।"

गांधीजी के प्राण बचाना सहज सम्भव था। कारण कुछ भी हो, पर उनके प्राण बचाने के प्रामाणिक प्रयास नहीं हुए। गांधीजी का राजनैतिक क्षेत्र में उदय हुआ, तभी से उनके प्रति हिन्दुत्ववादियों की भूमिका विरोधी रही। गांधी के विषय में आम आदमी के मन में द्वेष-भावना का निर्माण हो, इस तरह का जहरीला प्रचार किया जाता रहा। बम का उपयोग किया जाता रहा। २० जनवरी के बम-विस्फोट के बाद मदनलाल ने गांधी-हत्या की साजिश से सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम बताये थे। भारत के लौहपुरुष, गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल को २० जनवरी से पहले ही गांधी-हत्या की साजिश का पता चल गया था। फिर भी ३० जनवरी की प्रलयकारी शाम रोकी नहीं जा सकी। साजिश की गोपनीयता के कारण साजिश का पता नहीं चला, ऐसी परिस्थिति नहीं थी। कम-से-कम १५ दिन पहले साजिश का पता लग गया था। फिर भी पुलिस समय पर तलाश का काम नहीं कर सकी। क्या यह सब पुलिस की अक्षमता की वजह से हुआ? पुलिस अक्षम थी, सरकार चलानेवाले नेता तो अक्षम नहीं थे! पुलिस पूरी क्षमता से तलाशी का काम करे, इसके लिए तत्परता से पुलिस पर कड़ी नजर रखना सरकार चलानेवालों का काम था। हैदराबाद की कार्यवाही के समय यह सक्षम तत्परता दिखायी गयी थी। रियासतों के विलीनीकरण के समय दृढ़ता दिखायी गयी थी। फिर गांधी-हत्या के समय कार्यक्षमता ढीली या शिथिल क्यों हुई?

बम-विस्फोट के बाद साजिश करनेवालों को पकड़ने के लिए पुलिस द्वारा दिखायी 'तत्परता' सारी दुनिया की पुलिस के लिए शर्मनाक है। २५ जनवरी को डी॰ आई॰ जी॰, सी॰ आई॰ डी॰, यू॰ एच॰ राणा को मदनलाल का बयान आगे की कार्यवाही के लिए दिया गया था। उसके बाद तुरन्त मुम्बई जाकर तलाशी का काम शीघ्रता से शुरू करना उनका कर्तव्य था। पर राणा इलाहाबाद होकर आनेवाली ट्रेन से दिल्ली से मुम्बई पहुँचे। राणा को हवाई जहाज के प्रवास से तकलीफ होती थी, इसलिए वे ट्रेन से प्रवास करते थे। लेकिन खुद हवाई जहाज से जा नहीं सकते थे, तो किसी अन्य सक्षम अफसर को तो हवाई जहाज से भेज सकते थे। राणा का रिजर्वेशन सीधे

मुम्बई का था। इलाहाबाद होकर जाने में मुम्बई पहुँचने में इसकी अपेक्षा देर लगती है। सीधे जाने पर वे कुछ जल्दी पहुँच पाते। परन्तु रिजर्वेशन होने के बावजूद राणा सीधे न जाकर इलाहाबाद होकर जानेवाली ट्रेन से मुम्बई गये। कबूतर द्वारा भेजे गये निर्णय भी मुम्बई जल्दी पहुँचते! २४ जनवरी को दिल्ली के कुछ पुलिस अधिकारी मुम्बई गये थे। मुम्बई पुलिस ने उनका उचित आतिथ्य नहीं किया, इसलिए गृहविभाग के ये दामाद रूठकर वापस लौट गये। गांधी-हत्या से सम्बन्धित लोगों की खोज करने की अपेक्षा अपने आदरातिथ्य को वे अधिक महत्त्व दे रहे थे। डी॰ आई॰ जी॰, सी॰ आई॰ डी॰ राणा दिल्ली से इलाहाबाद होकर २७ तारीख को मुम्बई पहुँचे। मुम्बई के पुलिस उपायुक्त जे॰ डी॰ नगरवाला, राणा और दिल्ली गुप्तचर विभाग के वरिष्ठ अफसर संजीवी के बीच चर्चा शुरू हुई। राणा ने नगरवाला को मदनलाल का बयान पढ़ने के लिए दिया। नगरवाला दो ही पृष्ठ पढ़ पाये थे कि राणा ने नगरवाला के हाथ से बयान वापस ले लिया और कहा कि बयान काफी बड़ा है। पढ़ने में काफी समय लगेगा। मैं पूना से वह भेज दूँगा। पर मदनलाल के बयान के कागजात (आज तक) भेजे नहीं गये। '*अग्रणी*' नाथूराम गोडसे का समाचार-पत्र था। २० तारीख के बयान में उसकी भी जानकारी दी गयी थी। ये सारी बातें न्या॰ कपूर आयोग की रिपोर्ट में तफसील से आयी हैं। संविधान-सभा में अनन्तशयनम् आयंगार ने ६ फरवरी, १९४८ को गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल से प्रश्न पूछा था कि २० जनवरी के बम-विस्फोट के बाद से गांधी-हत्या तक गांधीजी के प्राण बचाने के लिए कौन-से उपाय किये गये? सरदार पटेल ने हमेशा का ही उत्तर दुहराया कि गांधीजी ने सुरक्षा-व्यवस्था नकारी थी। उसके बाद उपप्रश्नों की बौछार शुरू हुई। उत्तर क्रोध उभारनेवाले थे। आज तो उन उत्तरों को देखकर हँसी ही आती है। उत्तरों का नमूना पेश है : 'पर्याप्त उपाय किये थे।....मदनलाल का बयान मुम्बई भेजा गया था।.... बयान के आधार पर अगर नाथूराम को पकड़ा जाता या पकड़ने की जल्दी की जाती तो साजिश में शामिल अन्य लोग भूमिगत (अण्डर ग्राउण्ड) हो जाते।– इसलिए अभी किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया जाय, ऐसा निर्णय मुम्बई-पुलिस से विचार-विनिमय कर दिलली-पुलिस ने लिया।'

उपप्रश्न : जिनपर सन्देह है उन्हें पकड़ना आसान हो, इस दृष्टि से उनकी तस्वीरें प्राप्त करने का प्रयास हुआ था क्या?

उत्तर : सब सन्देहास्पद व्यक्ति इकट्ठा नहीं थे, इसलिए उनकी तस्वीरें प्राप्त नहीं की जा सकीं।

सन्देहास्पद व्यक्तियों की शादी की तस्वीरें छपवानी नहीं थीं। उनकी इकट्ठा तस्वीरों का औचित्य क्या था? मदनलाल के बयान से साजिश का प्रमुख सूत्रधार नाथूराम गोडसे है, यह स्पष्ट हो गया था। उसे न पकड़ने का कारण दिया गया कि उसे पकड़ते तो उसके अन्य साथी भाग जाते। जो भी मिलते, उन्हें पकड़कर उनसे अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती थी। दिल्ली-पुलिस के दो वरिष्ठ अफसर मुम्बई के उपायुक्त नगरवाला से मिलने २१ जनवरी को हवाई जहाज से मुम्बई आये थे। पर मदनलाल का बयान और विस्फोट की विस्तृत जानकारी की डायरी दिल्ली ही भूल आये थे। कागजात के बिना ही सिपाही साजिश से सम्बन्धित लोगों का पता लगाने मुम्बई में दाखिल हुए।[३४] साजिश में शामिल व्यक्तियों के वर्णन लिखने में दिल्ली-पुलिस ने खूब गोलमाल किया था। खूब उल्टा-सीधा बयान लिखा था। उस बयान से कोई भी उनका पता नहीं लगा पाता। वरिष्ठ स्तर पर गांधीजी के प्रति क्रोध, घृणा और उदासीनता की भावना के बिना पूरा पुलिस-विभाग इतनी लापरवाही नहीं दिखा सकता था। बच्चे भी अगर पुलिस-पुलिसवाला खेल खेलते तो इससे अधिक होशियारी दिखाते।

प्रो॰ जे॰ सी॰ जैन ने मोरारजी देसाई को गांधी-हत्या की जानकारी पहले ही दे दी थी, यह न्या॰ कपूर आयोग ने स्वीकार किया है। मनोहर मालगावकर ने इस सम्बन्ध में गांधी-हत्या पर लिखी अपनी पुस्तक में शंका व्यक्त की है। परन्तु न्या॰ कपूर आयोग द्वारा इस बात को मानने के बाद मालगावकर के शक का आधार किसी राजनैतिक विचार का प्रभाव हो सकता है। मुम्बई के गृहमंत्री मोरारजी देसाई का यह मत कि, 'पुणे में गांधीजी की जान को खतरा है, ऐसा मुझे नहीं लगा।' इसे न्या॰ कपूर आयोग ने अमान्य किया है तथा लिखा है कि मुम्बई सरकार अपनी जिम्मेदारी टाल नहीं सकती थी।

महात्मा गांधी के अन्तिम संस्कार के बाद ३१ जनवरी, १९४८ को सरदार पटेल के निवास-स्थान पर गृहविभाग के वरिष्ठ अफसरों की बैठक हुई। इस बैठक में पहली बार यह बताया गया कि विस्फोट के दूसरे दिन २१ जनवरी को दिल्ली पुलिस के पास मदनलाल का पूरा बयान था।

गांधी-हत्या की साजिश की सारी योजना इस बयान में थी। इस बयान के आधार पर २३ जनवरी को गोडसे और आपटे को पकड़ना सहज सम्भव था। पर किसी ने भी उस दिशा में कोई कार्यवाही नहीं की। गृहविभाग को इस बयान की कोई जानकारी पुलिस-विभाग ने नहीं दी थी। ३१ जनवरी को सरदार पटेल के निवास-स्थान पर हुई बैठक में पहली बार यह जानकारी दी गयी।[३५] इस बैठक में पहली बार बयान दिखाया गया। बयान से मिली जानकारी के आधार पर नाथूराम गोडसे और नारायण आपटे को उसी दिन पकड़ा जा सकता था। २१ जनवरी की सुबह गोडसे और आपटे दिल्ली में ही थे, यह गृहसचिव बनर्जी ने अपनी गवाही में बताया था। दिल्ली के वरिष्ठ पुलिस अफसर संजीवी से जब आयोग ने पूछा कि आपने तुरन्त कार्यवाही क्यों नहीं की? तब उनका उत्तर 'सॉरी', इस एक ही शब्द में था। यह सब देखने पर यह प्रश्न उठता है कि देश की राजधानी का यह पुलिस-विभाग निकम्मा था या लौहपुरुष का भी पुलिस-विभाग पर कोई काबू नहीं था? गृहविभाग का यह रवैया देखकर ही अच्युतराव पटवर्धन ने माँग की थी कि सरदार पटेल को मंत्रिमण्डल से हटाया जाय। गांधीजी के रहते ही सरदार पटेल और पण्डित नेहरू के बीच विवाद होते थे। पटेल की पुत्री मणिबेन पटेल ने अपनी डायरी में यह लिखा है कि दोनों के बीच के मतभेदों की जानकारी सरदार पटेल ने गांधीजी को दी थी। सरदार पटेल को गांधी-हत्या के सम्बन्ध में पश्चात्ताप हुआ होगा, ऐसा मणीबेन की डायरी से लगता है। वे लिखती हैं : 'मैंने गांधीजी को अकेले ही जाने दिया, उनके साथ मुझे भी जाना चाहिए था।' ऐसा वे कहा करते थे।

मदनलाल को बम-विस्फोट के बाद पकड़ा गया। उसने पुलिस को बयान दिया। वह मुम्बई का है, साजिश के सूत्रधार पूना के हैं। यह जानकारी मिलने के बाद मुम्बई और पूना की पुलिस उन लोगों को पहचान सकेगी, ऐसा सोचकर उनकी सहायता लेना जरूरी था। लेकिन इस तरह की सहायता लेने में दिल्ली-पुलिस ने टालमटोल की। दिल्ली-पुलिस को महाराष्ट्र की पुलिस दिल्ली बुलाकर गांधीजी के निवास-स्थान की निगरानी का काम सौंपना चाहिए था। गृह सचिव बनर्जी का कहना है कि इस तरह की निगरानी नहीं रखी गयी। मदनलाल को पकड़ा गया है, यह मुम्बई पुलिस को पता चला। हम जिसे खोज रहे हैं वही यह मदनलाल पहवा है, इस बात पर ध्यान देकर मुम्बई पुलिस का काम था कि वह अपने आदमी को दिल्ली भेजे। अभियुक्त को पकड़ने के लिए

अन्य राज्यों में जाना, वहाँ की पुलिस की सहायता लेना, ऐसा तो होता ही रहता है। पर वैसा नहीं किया गया। ३१ जनवरी को गांधीजी की अन्त्येष्टि होने तक केन्द्रीय गृह सचिव बनर्जी को २०-२१ तारीख को लिया गया मदनलाल का बयान दिखाया ही नहीं गया था। उसी बयान में मदनलाल ने गांधी-हत्या की साजिश की जानकारी दी थी। २२ जनवरी को मोरारजी देसाई ने सरदार पटेल को हत्या की साजिश के सम्बन्ध में जानकारी दे दी थी। स्वयं पटेल को भी पहले से इन बातों की जानकारी थी। पर पटेल ने बनर्जी को कुछ नहीं बताया। मदनलाल को गिरफ्तार करने पर पटेल का यह काम था कि वे पुलिस या गृह-विभाग के वरिष्ठ अफसरों से पूछते कि साजिश करनेवालों को खोजने की दिशा में क्या कार्यवाही कर रहे हैं? परन्तु पटेल ने कोई पूछताछ नहीं की। अगर वे पूछते तो गृह सचिव बनर्जी या वरिष्ठ पुलिस अफसर आयोग के सामने दी गयी गवाही में यह बात कहते। परन्तु ऐसी कोई बात दोनों में से किसी ने भी नहीं कही। गृह सचिव बनर्जी तो कहते हैं कि, "२० जनवरी की रात को और २१ जनवरी की सुबह मदनलाल ने जो बयान दिये उस जानकारी के आधार पर साजिश करनेवालों को पकड़ने की दिशा में कोई प्रयास नहीं हुआ। अगर होता तो गोडसे और आपटे को पकड़ना सहज सम्भव था।" इस सन्दर्भ में न्या॰ कपूर आयोग ने भी अपने अहवाल में गृह-विभाग की कड़े शब्दों में आलोचना की है। मदनलाल पहवा ने सन् १९८८-८९ के दरमियान मुझसे कहा था कि पण्डित नेहरू को मारने की भी हमारी साजिश थी। प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की सुरक्षा-व्यवस्था देखनेवाले जी॰ के॰ खंडू ने अपनी गवाही में इसका जिक्र किया है। गांधी के बाद नेहरू को मारना हमारा लक्ष्य था, यह गोडसे ने खंडू से कहा था। इस गवाही के बाद न्या॰ कपूर आयोग अपने निष्कर्ष में कहता है कि "राजनैतिक और जातीय उद्देश्य साधने के लिए राजनैतिक नेताओं की हत्या की विचारधारावाला यह गुट था। गोडसे के साथी और उनकी करतूतें बड़ी खतरनाक थीं। मदनलाल के बयान के बाद उस गुट के लोगों को पहचानने के लिए मुम्बई की पुलिस को दिल्ली भेजना आवश्यक था। मुम्बई की पुलिस दिल्ली जाती या दिल्ली की पुलिस उनसे सहायता मांगती तो रेलवे स्टेशनों, होटलों, धर्मशालाओं, राजनैतिक दलों के कार्यालयों, बिड़ला हाउस के प्रवेश द्वार तथा प्रार्थना-सभा के स्थान पर उन्हें तैनात किया जा सकता था और गांधी-हत्या रोकी जा सकती थी। यह सच है कि प्रार्थना स्थल

पर गांधीजी पुलिस नहीं रखने देते। पर बिड़ला हाउस की देखभाल करनेवाले, माली या इसी तरह के नौकरों के रूप में वर्दीरहित पुलिस की तैनाती आसानी से की जा सकती थी।[३६] प्रार्थना-सभा में आनेवालों की तलाशी लेने का गांधीजी विरोध करते। परन्तु आयोग कहता है गांधीजी को बिना बताये महत्त्वपूर्ण स्थानों पर पुलिस की निगरानी रखी जा सकती थी। इस गुट का पता लगाना महाराष्ट्र की पुलिस के लिए असम्भव नहीं था। गांधीजी के अलावा पण्डित नेहरू, मौलाना आजाद, रफी अहमद किदवई को भी मारने की योजना थी। यह षड्यंत्र गांधी-हत्या के बाद प्रकट हुआ। गांधी-हत्या को सही ठहराने के लिए गांधीजी के कारण विभाजन हुआ, गांधीजी के आग्रह के कारण पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को दिये गये—ये कारण गिनाये जाते हैं। अन्य नेताओं की हत्या की साजिश के पीछे कौन-से कारण थे? विभाजन के लिए सबसे पहले पटेल ने सम्मति दी थी। बाद में नेहरू ने सम्मति दी। विभाजन को स्वीकृति न दी जाती तो देशभर में गृह-युद्ध छिड़ता। तब ब्रिटिश सेना निष्पक्ष न रहती। परिणामत: विभाजन की अपेक्षा भयानक परिस्थिति पैदा होती, ऐसा नेहरूजी को लगा। इसलिए उन्होंने विभाजन को स्वीकार किया, ऐसा कहा जाता है।

गांधी-हत्या के कारण गांधीजी के अपहरण की साजिश पर तथा ग्वालियर की एक घटना पर ध्यान नहीं दिया गया। गांधी-हत्या से करीब दो महीने पहले ग्वालियर के हिन्दू महासभा के अखबार में एक लेख छपा था कि 'महात्मा गांधी और पण्डित नेहरू की हत्या करनी चाहिए।' गांधी-हत्या के लिए पिस्तौल आदि के खर्च के वास्ते ६५ हजार रुपयों का चेक ग्वालियर की रियासत ने दिया है, यह जानकारी भी उस लेख में थी। गोपीकृष्ण कात्रे नामक राजनैतिक कार्यकर्ता ने प्रतिज्ञापूर्वक न्या॰ कपूर आयोग से कहा था कि हत्यारों को अग्रिम पैसे देने और शस्त्र खरीदने आदि कामों के लिए ६५ हजार रुपये दिये गये थे। असली साजिश करनेवालों को सजा हुई ही नहीं, ऐसा कात्रे का कहना है। कात्रे स्वातंत्र्य सैनिक थे। ६५ हजार रुपये का चेक मैंने परचुरे नामक आदमी को दिया, ऐसा कात्रे कहते हैं। लीलाधर जोशी के ग्वालियर राज के प्रधानमंत्री बनने पर कात्रे ने यह जानकारी उन्हें दी। तब उन्होंने कहा कि किसी तरह की कार्यवाही करने से पहले मैं सरदार पटेल से बात करूँगा। इसी बीच ग्वालियर रियासत ने विलिनीकरण को

सम्मति दी। अत: ग्वालियर के बारे में कोई कार्यवाही नहीं हुई। न्या॰ कपूर आयोग ने कात्रे की गवाही झूठी है, ऐसा नहीं कहा है। आयोग कहता है, "आयोग के मार्गदर्शक तत्त्वों के अनुसार हत्या के पहले हत्या सम्बन्धी जानकारी थी या नहीं और जानकारी रखनेवालों ने वह सरकार तक पहुँचायी या नहीं, इसकी छानबीन करना ही आयोग का काम है। मार्गदर्शक तत्त्वों के अनुसार कात्रे की गवाही का यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है।" कात्रे की गवाही झूठी है, ऐसी कोई घटना नहीं हुई, ऐसा मत आयोग ने नहीं किया। न्या॰ कपूर आयोग आगे कहता है, "ग्वालियर के महाराजा का गांधी-हत्या में हाथ था या नहीं, यह प्रश्न आयोग के सामने नहीं है। गांधी-हत्या की जानकारी हत्या के पहले थी या नहीं, इसी की जाँच का काम आयोग को सौंपा गया है।" इस मामले की अलग से जाँच होती तो ६५ हजार रुपये हिन्दू महासभा को दिये या नहीं, इस बारे में सत्य सामने आता। ग्वालियर का मामला छिपा ही रह गया। कात्रे ने आयोग के सामने कोई सबूत पेश नहीं किया था। अत: आयोग उसकी गवाही नजरअन्दाज कर सकता था। पर आयोग ने ऐसा नहीं किया। कात्रे की गवाही में डॉ॰ परचुरे का जिक्र है। उन्हें गांधी-हत्या के सिलसिले में सजा हुई थी, पर वे अपील में छूट गये।

गांधी-हत्या की साजिश की जानकारी प्रो॰ जैन ने मोरारजी देसाई को दी। उसके ९ दिन बाद ही गांधी-हत्या हुई। इसी बीच गांधी के अपहरण की साजिश का भी पता चला। हत्या के बाद इस जानकारी का कोई महत्त्व नहीं रहा। अत: कोई उस विषय में सोचता भी नहीं है। पर महाराष्ट्र में प्रमुखत: हिन्दुत्ववादियों का आतंकवादी हिंसा में विश्वास रखनेवाला गुट किस हद तक कार्यरत था, इस विषय का अध्ययन करनेवालों को गांधीजी के अपहरणवाली साजिश का पता होना आवश्यक है। हत्या हो ही चुकी थी। अत: इस साजिश की जानकारी का कोई उपयोग नहीं था। मोरारजी देसाई ने मुम्बई के पुलिस उपायुक्त नगरवाला को साजिश सम्बन्धी जानकारी देकर उन्हें जाँच का काम सौंपा। पुलिस आयुक्त पर यह काम न सौंपकर उपायुक्त को क्यों सौंपा गया? प्रो॰ जैन से मिली जानकारी के बाद मोरारजी ने पुलिस आयुक्त से कोई चर्चा नहीं की। ऐसा क्यों? नगरवाला पारसी थे। उनकी हिन्दुत्ववादियों से सहानुभूति का कोई कारण नहीं था। वे जाँच की जिम्मेदारी अधिक उचित ढंग से निभायेंगे, ऐसा विश्वास मोरारजी देसाई को था। इसलिए यह

जिम्मेदारी आयुक्त को न सौंपकर उपायुक्त को सौंपी गयी। नगरवाला ने आयोग के सामने दी गयी अपनी गवाही में कहा कि गांधी-हत्या की साजिश का पता लगाते समय गांधीजी के अपहरणवाली साजिश का मुझे पता लगा। नगरवाला ने हत्या की साजिश की खोज के साथ अपहरण की साजिश की खोज पर ध्यान दिया। गृहमंत्री देसाई ने नगरवाला को केवल गांधी-हत्या की योजना के विषय में कहा था। मंत्रियों के आदेशानुसार काम करने की अफसरों की वृत्ति होती है। ऐसा करने से किसी घटना के अनिष्ट परिणामों का दोषारोपण अधिकारियों पर कम ही आता है। अगर दोषारोपण हुआ भी तो मंत्री के आदेशानुसार मैं काम कर रहा था, ऐसा कहकर अफसर अपना बचाव कर सकता है। अगर गांधी-हत्या के बजाय गांधीजी का अपहरण हो जाता तो नगरवाला कह सकते थे कि मुझे केवल हत्या की साजिश का पता लगाने का काम सौंपा गया है, अत: मैंने केवल उसी दिशा में काम किया। ऐसे समय अपहरण की साजिश का पता नहीं लगाया, यह दोषारोपण उनपर नहीं होता। परन्तु यहाँ तो कुछ दूसरा ही हुआ था। नगरवाला गांधीजी का अपहरण करके ले जाने की साजिश की भी गम्भीरता से खोज कर रहे थे। अर्थात् इस साजिश का पता उन्हें अपने विश्वसनीय सूत्रों से लगा होगा। मुसलमानों को जबरन भारत के बाहर निकालने की योजना बन रही थी। उसी समय गांधी का अपहरण करने की साजिश थी, ऐसा नगरवाला कहते हैं।

न्या॰ कपूर ने नगरवाला से पूछा कि गांधी के अपहरण के 'सिद्धान्त' के पीछे आप क्यों पड़े? तब नगरवाला ने उत्तर दिया था कि, “यह मेरा सिद्धान्त या कल्पना नहीं थी। वह मेरी जानकारी थी। मेरे अत्यधिक विश्वसनीय सूत्रों से मुझे वह जानकारी मिली थी। गांधीजी के अपहरण की साजिश सम्बन्धी मिली जानकारी सही है, इस बात की पुष्टि डायरेक्टर इंटेलिजेन्स ब्यूरो, मुम्बई के आयुक्त, पुणे विभाग के डी॰ आई॰ जी॰, सी॰ आई॰ डी॰ और गृहमंत्री ने भी की थी।” लेकिन गृहमंत्री मोरारजी देसाई कहते हैं कि गांधीजी के अपहरण की साजिश की जानकारी नगरवाला ने मुझे नहीं दी थी। उस समय यू॰ ए॰ राणा पुणे के डी॰ आई॰ जी॰, सी॰ आई॰ डी॰ थे। राणा और नगरवाला दोनों ने ३० जनवरी की सुबह दिल्ली के वरिष्ठ पुलिस अफसर संजीवी को ट्रंक कॉल करके गांधीजी के अपहरण की साजिश की जानकारी दी थी। फोन पर हुई बातें पत्र

द्वारा फिर से सूचित करने की नगरवाला की पद्धति थी। अत: नगरवाला ने यह जानकारी संजीवी को ३० जनवरी को पत्र द्वारा भी दी। मोरारजी देसाई के कथनानुसार नगरवाला हत्या की साजिश का पता लगाने में असफल रहे। पर इस कारण से गांधीजी के अपहरण के सम्बन्ध में मिली जानकारी अविश्वसनीय नहीं मानी जा सकती।

अपहरण के षड्यंत्र की जानकारी मिलने पर उसका भी पता लगाना मेरा कर्तव्य था। नगरवाला का यह कहना सही है। मेरा उस जानकारी पर भरोसा था, मेरा पूरा विश्वास था, यह नगरवाला बार-बार कहते हैं। न्या॰ कपूर आयोग के सामने महाराष्ट्र सरकार के वकील आर॰ बी॰ कोतवाल ने भी नगरवाला की बात का समर्थन किया है। कोतवाल कहते हैं कि गांधीजी की हिन्दू-विरोधी भूमिका को नियंत्रित रखना हिन्दुत्ववादियों का उद्देश्य था। ऐसी स्थिति में अपहरण की साजिश की जानकारी को गलत मानकर उस पर ध्यान न देना उचित नहीं होता। पचपन करोड़ रुपये देने के निर्णय से सरकार को रोकने के लिए, हत्या की अपेक्षा इसमें कम क्रूरता थी। अत: अपहरण की साजिश की जानकारी पर विश्वास होना स्वाभाविक था। २० जनवरी के बम-विस्फोट का हेतु यही था। विस्फोट के कारण प्रार्थना में गड़बड़ी मचेगी। उसका लाभ उठाकर गांधीजी का अपहरण कर ले जाने की योजना थी। ऐसा भी कोतवाल ने न्या॰ कपूर आयोग के सामने कहा। दिल्ली के वरिष्ठ पुलिस अफसर संजीवी ने आयोग के सामने गवाही में कहा कि २७ जनवरी की शाम को राणा ने मुझे अपहरण की साजिश के सम्बन्ध में बताया कि, "यह एक बड़ा संगठन है। २०-२० लोगों के २० गुट उन्होंने बनाये हैं। उनके पास बड़े पैमाने पर शस्त्रास्त्र, बम और घातक हथियार हैं।" गांधी-हत्या के बाद अपने आप ही अपहरण का मामला ध्यान से हट गया। न्या॰ कपूर आयोग ने भी इस सम्बन्ध में नगरवाला से पूछकर अधिक जानकारी लेने की कोशिश नहीं की। हत्या के बाद शायद उन्होंने वैसी आवश्यकता न समझी हो या यह बात आयोग की कार्यसीमा में न आती हो। राणा ने संजीवी को संख्या के साथ विस्तृत जानकारी दी थी। उनमें से एक को भी पुलिस क्यों नहीं पकड़ पायी? यह भी एक प्रश्न ही है।

कोई अमरता का पट्टा लेकर पैदा नहीं होता है। मृत्यु अटल है। पर ३० जनवरी, १९४८ को गांधीजी की मृत्यु टालना सहज सम्भव था। राष्ट्रपिता की हत्या के सम्बन्ध में कम-से-कम १५

दिन पहले जानकारी मिल गयी थी। और मृत्यु के दस दिन पहले हत्यारे कौन हैं, इसकी विस्तृत जानकारी और कुछ नाम ज्ञात हो गये थे। मदनलाल का २०-२१ जनवरी का बयान पुलिस के हाथ में था। साजिश सचनेवालों के नाम उसमें थे। गोडसे और करकरे के नाम और *'हिन्दूराष्ट्र'* के मालिक के नाते पुणे का उनका पता मदनलाल ने बताया था। हत्या से पहले ही देश के गृहमंत्री तथा मुम्बई प्रदेश के गृहमंत्री को हत्या के सम्बन्ध में जानकारी थी। फिर भी गांधी को बचाया न जा सका। तत्कालीन सरकार, खासकर गृह-विभाग के माथे पर हर सूरत में हत्या का दोष लगता है। नाथूराम गोडसे ने तो पिस्तौल की गोलियों से गांधीजी की हत्या की, परन्तु गृह-विभाग की लापरवाही ने हत्यारों के लिए रास्ता खुला छोड़ दिया था। १५ दिन पहले गांधी-हत्या का पता लगाने की अपेक्षा राज करनेवाले चैन की नींद कैसे सोते रहे, यह समझ से परे की बात है !

२९. *न्या॰ कपूर आयोग:* खण्ड २।

३०. *गांधीजीज टीचिंग एण्ड फिलॉसफी* : राजाजी।

३१. *न्या॰ कपूर आयोग अहवाल:* खण्ड २।

३२. *न्या॰ कपूर आयोग अहवाल:* खण्ड २।

३३. *न्या॰ कपूर आयोग के सामने दी हुई गहसचिव आर॰ एन॰ बनर्जी की गवाही।*

३४. *न्या॰ कपूर आयोग अहवाल* : खण्ड १।

३५. *सिविल सर्वेण्ट इन इण्डिया: के॰ एल॰ पंजाबी और न्या॰ कपूर अहवाल*: खण्ड १।

३६. *न्या॰ कपूर अहवाल* : खण्ड १।

विभाजन : विरोध और आन्दोलन

महात्मा गांधी का विभाजन के प्रति कितना और कैसा विरोध था, विभाजन टालने के लिए समय-समय पर कितने प्रकार के विकल्प उन्होंने सुझाये, इसका लेखा-जोखा हम प्रारम्भ में कर चुके हैं। विभाजन सम्बन्धी जानकारी के बाद हिन्दुत्ववादियों के इस दावे का खोखलापन कि विभाजन के कारण गांधी-हत्या हुई, सहज ही स्पष्ट हो जाता है। विभाजन की अनिवार्यता तो समझ में आ रही थी, पर विभाजन को मंजूरी देने की मानसिकता न गांधीजी की थी, न कांग्रेस के नेताओं की। विभाजन के विरोध में स्पष्ट भूमिका लेकर उनके परिणामों का सामना करने के लिए भी वे तैयार नहीं थे। महाराष्ट्र के एक विद्वान् सम्पादक ने सवाल किया था कि गांधीजी विभाजन के विरोध में क्यों खड़े नहीं हुए? गांधीजी के सिवा कांग्रेस ने विभाजन की अपरिहार्यता स्वीकार की थी। अन्तरिम सरकार के काल में अर्थमंत्री लियाकत अली द्वारा पेश किये गये बजट के कारण कांग्रेस के सामने दिक्कतें खड़ी हो गयी थीं। इस अनुभव के बाद किसी से सलाह-मशविरा किये बिना सरदार पटेल ने माउण्टबेटन से कह दिया कि मुझे विभाजन मंजूर है। उसके बाद नेहरूजी ने भी विभाजन को स्वीकृति दे दी। विभाजन की अनिवार्यता जानकर ही दोनों ने स्वीकृति दी थी। कांग्रेस ने अगर विभाजन की मंजूरी दी हो तो मेरे विरोध का विचार किये बगैर केवल कांग्रेस की बात रखने के लिए विभाजन को मंजूरी देने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं है, इस विवशता में गांधीजी ने विभाजन की मंजूरी दी। इसके पीछे उनका जो विचार है वह उनके उच्चतम व्यक्तित्व का परिचायक है। विभाजन के विरोध में ठोस भूमिका निभाने का अर्थ क्या होता है? 'विभाजन मंजूर नहीं है' ये शब्द निरर्थक हैं। विभाजन के विरोध का अर्थ था पूरे देश को विभाजन के विरोध में जान की बाजी लगाने की प्रेरणा देना और उनका नेतृत्व करना। गांधीजी ने २८ वर्ष कांग्रेस का नेतृत्व किया था। कांग्रेस के बल पर स्वाधीनता संग्राम में लोगों का सहयोग प्राप्त किया था। यह सब एक दिन में नहीं हो जाता। गांधीजी ने नेतृत्व किया और अलग-अलग क्षेत्रों में बिखरे लोगों को साथ लेकर उन्हें नेता बनाया। इन नेताओं को साथ लेकर ही गांधीजी ने आन्दोलन छेड़े। आन्दोलन के छोटे-बड़े सेनापति तैयार किये। अहिंसक सत्याग्रह के मार्ग से आन्दोलन तेज करते चले गये। इस सबके पीछे उनकी २८ वर्षों की तपस्या-साधना थी। गांधीजी

के वे ही सहयोगी गांधीजी को अलग रखकर माउण्ट बेटन से मिल रहे थे। विभाजन को मंजूरी दे रहे थे। गांधीजी अकेले पड़ गये थे। विभाजन-विरोधी आन्दोलन छेड़ने के लिए संगठन आवश्यक था। कांग्रेस विभाजन को मंजूरी दे चुकी थी। अत: नये सिरे से नया संगठन खड़ा करना आवश्यक था। अब तक के साथियों के विरोध में यह संगठन खड़ा होता। उसके लिए कांग्रेस में ही फूट डालकर वहीं से लोगों को इस नये संगठन में लाना पड़ता। गांधीजी कांग्रेस में फूट डालने की भूमिका स्वीकार नहीं सकते थे। विभाजन के विरोध में गांधीजी का साथ कौन देता? सरहदी गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान, मौलाना आजाद, जयप्रकाश नारायण और लोहिया, ऐसे ही इने-गिने कुछ नेता। जयप्रकाश और लोहिया को छोड़ अन्य सब वृद्ध हो चुके थे। विभाजन ही सही, पर आजादी तो मिल रही है, इस बात से जनता में उत्साह था। देश के कुछ हिस्सों में हत्याएँ हो रही थीं। फिर भी जनता, आजादी मिल रही है, इस खुशी में मदहोश थी। ऐसी हालत में गांधीजी अगर विभाजन के विरोध में आन्दोलन छेड़ते भी तो जनता स्वाधीनता आन्दोलन की तरह उसमें शामिल नहीं होती। अखण्ड भारत की बात करनेवाले भी गांधीजी के पीछे खड़े होने के लिए तैयार नहीं थे। विभाजन रोकने के लिए अपना अलग आन्दोलन छेड़ने की हिम्मत हिन्दुत्ववादियों में नहीं थी। किसके बल पर गांधीजी आन्दोलन खड़ा करते? अगर गांधीजी जीवित रहते तो निश्चय ही लोगों को अपने साथ लेने का प्रयास करते। पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायूँ, इस भूमिका के पीछे उनकी नैतिकता तो थी ही। पर अड़ंगा डाले बिना दे दिये जाते तो दिल्ली के उपवास के बाद गांधीजी के पाकिस्तान जाने की सम्भावना थी। अगर पाकिस्तान अनुमति देगा तो मैं पाकिस्तान का दौरा करूँगा, ऐसा वे कहते थे। लोगों की सद्भावनाएँ प्राप्त करनी हों तो दाव-पेंच और रुकावट डालने की भूमिका काम नहीं देती। इस दृष्टि से भी ५५ करोड़ रुपये पाकिस्तान को देने की उनकी भूमिका रही होगी। लोगों की सद्भावना के बगैर किसी विचार को जनता का अनुमोदन नहीं मिलता। पाकिस्तान जाकर गांधीजी क्या करते? क्या उनके प्रयास सफल होते? इतने वर्ष एक साथ रहकर जो नहीं हो सका वह पाकिस्तान के निर्माण के बाद गांधीजी क्या कर पाते? इस तरह के अनेक प्रश्न खड़े हो सकते हैं। पर इतना निश्चित है कि गांधीजी खाली नहीं बैठते। लोगों को अपने साथ खड़ा करने का प्रयत्न अवश्य करते। डॉ॰ राममनोहर लोहिया ने भी

यह प्रश्न खड़ा किया है कि गांधीजी अगर विभाजन का सक्रिय विरोध करते तो क्या होता? उत्तर भी वे ही देते हैं : "गांधीजी को मारकर या जेल में डालकर नेहरू भारत में या जिन्ना पाकिस्तान में राज कर सकते थे? विभाजन-पूर्व के अपने रोज के प्रार्थना-प्रवचनों से भी गांधीजी जनता के मन में विभाजन के विरुद्ध असन्तोष पैदा नहीं कर सके। प्रवचन में गांधीजी विभाजन के विरोध में बोलते थे। पर उन्होंने असन्तोष नहीं जगाया। कांग्रेस के युवा नेताओं में भी कमियाँ थीं, यह मुझे मंजूर है। अपनी पद्धति से गांधीजी ने बार-बार हमें टटोला और हम लायक नहीं हैं यह वे समझ गये।" गांधीजी ने विभाजन का विरोध क्यों नहीं किया, इसका उत्तर लोहिया की उक्त बातों में मिल जाता है। गांधीजी ने युवा नेताओं को टटोला और वे आन्दोलन के लिए तैयार नहीं होंगे, ऐसा देखकर शायद आन्दोलन का विचार छोड़ दिया होगा। अखण्ड भारत की माला फेरने से भारत अखण्ड नहीं हो जाता। हिन्दुत्ववादियों ने उसके लिए क्या प्रयास किये? दाव-पेंच का एक तरीका अपनाकर ही सही, हिन्दुत्ववादियों ने गांधीजी से कभी कहा था कि आप विभाजन के विरोध में आन्दोलन छेड़िए, हम अपनी सारी ताकत आपके पीछे खड़ी करेंगे। अगर हिन्दुत्ववादी ऐसा कहते और गांधीजी उनका सहयोग नकारते तो हिन्दुत्ववादियों के इस आक्षेप में, कि गांधीजी विभाजन के लिए जिम्मेदार हैं, कुछ तथ्य होता। अखण्ड भारत के लिए किसी ने गांधीजी के पीछे अपनी ताकत खड़ी तो की ही नहीं। वैसा विचार भी नहीं रखा। आजादी के दिन मातम मनाकर 'अखण्ड हिन्दुस्तान' बननेवाला नहीं था। इसीलिए डॉ॰ राममनोहर लोहिया कहते हैं, अखण्ड हिन्दुस्तान का ऊँचे स्वर में नारा लगानेवाले जनसंघ ने और संकीर्ण हिन्दुत्व का समर्थन करनेवाले हिन्दुत्ववादियों ने अंग्रेजों की और मुस्लिम लीग की, विभाजन के लिए सहायता ही की थी, चाहे उनके मन में कुछ भी रहा हो। मुसलमान हिन्दुओं के साथ एक राष्ट्र में रहें, इस दिशा में हिन्दुत्ववादियों ने कोई प्रयास नहीं किये, बल्कि दोनों के सम्बन्धों में दरारें पड़ी, ऐसे ही प्रयास किये। इन दोनों धर्मावलम्बियों में पड़ी दरारें ही विभाजन का मूल कारण हैं। दरारें पैदा करनेवाले सब लोग प्रामाणिक थे, यह मानने पर भी हिन्दू-मुस्लिमों में अलगाव फैलाने का तत्त्वज्ञान और उसी के साथ अखण्ड भारत का नारा, ये आत्मप्रवंचना है। अखण्ड हिन्दुस्तान का नारा लगाना और उसी समय हिन्दू-मुसलमानों में वैर-भावना बढ़ाने का प्रयास करते रहना, इससे पाकिस्तान

की माँग को बल और बढ़ावा मिलता गया। "भारत के मुस्लिमों का विरोध करनेवाले पाकिस्तान के मित्र ही थे। जनसंघ के लोग और अखण्ड हिन्दुस्तानवादी हिन्दुत्वनिष्ठ वस्तुत: पाकिस्तान के मित्र ही हैं।" डॉ॰ लोहिया का यह विचार अत्यन्त मूलग्राही है। गांधी ही कुछ चमत्कार कर सकेंगे, ऐसा लोहिया को लगता था। वे कहते थे, "भारत के हिन्दू-मुसलमानों में मानसिक और सांस्कृतिक मेल-मिलाप बढ़ने के बाद ही भारत और पाकिस्तान, दोनों देश अधिक समीप आयेंगे और परिणामत: फिर से पहलेवाला भारत बनेगा। यह एक इच्छा है, प्रार्थना है, और सम्भावना भी है।"

हिन्दुत्ववादी अखण्ड हिन्दुस्तान के लिए गांधीजी के नेतृत्व में आन्दोलन करना नहीं चाहते थे। फिर उन्होंने खुद आन्दोलन क्यों नहीं किया? आन्दोलन के लिए जनशक्ति खड़ी करना आवश्यक है। तभी आन्दोलन का विचार किया जा सकता है। हिन्दुत्ववादियों के पीछे जनता नहीं थी। इसी कारण आन्दोलन छेड़ने का विचार भी हिन्दुत्ववादी नहीं कर सकते थे। उनकी वृत्ति भी लड़ाकू नहीं थी। हिन्दुत्ववादियों के पीछे जनता क्यों नहीं थी? जनता की धारणा थी कि हिन्दुत्ववादियों की विचार-प्रणाली में हमारा हित नहीं है, यह धारणा गांधीजी के कारण थी। इसलिए हिन्दुत्ववादी गांधीजी से द्वेष करते थे। हिन्दुत्ववादियों के विचार का आधार ही द्वेष था! कभी मुस्लिम-द्वेष, कभी गांधी-द्वेष—द्वेष की राजनीति समाज को बाँधकर नहीं रख सकती। अगर समाज एक सूत्र में बँधा हुआ नहीं रहा, तो स्वतंत्रता और अखण्डता टिक नहीं सकती। यह यथार्थ हिन्दुत्ववादी कभी समझ नहीं पाये।

गांधीजी विभाजन का विरोध क्यों नहीं कर सके, और उन्होंने विभाजन के विरोध में आन्दोलन क्यों नहीं छेड़ा? स्वयं गांधीजी ने इसका स्पष्टीकरण किया है। विभाजन के प्रस्ताव को कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा स्वीकृत करने के पश्चात् गांधीजी के पास कई पत्र आये। उनमें से कई महत्त्वपूर्ण पत्रों के गांधीजी द्वारा दिये गये उत्तर प्यारेलाल के *लास्ट फेज* के दूसरे खण्ड में है। "मुझे नहीं लगता कि भारत के विभाजन से मेरे जितना किसी का मन दु:खी हुआ होगा। लेकिन मैं आन्दोलन का आश्वासन नहीं दे सकता। विभाजन अनुचित है, यही मेरा मत है। मैं विभाजन के पाप का भागी नहीं होना चाहता। परन्तु कांग्रेस ने विभाजन को स्वीकृति दी है, अत: मैं विवशता से स्वीकृति दे रहा हूँ। कांग्रेस के विरोध में मैं आन्दोलन नहीं कर सकता। किसी भी हालत में

कांग्रेस-विरोधी आन्दोलन का समर्थन नहीं किया जा सकता। विभाजन की योजना में कांग्रेस ने खुद को बाँध लिया है, तब मैं आन्दोलन कैसे करूँ?" डब्लिन से किसी ने गांधीजी को पत्र लिखकर बताया कि, 'आयरलैण्ड के भारतीय लोगों को विभाजन मंजूर नहीं है। हम आयरलैण्ड के भारतीय विभाजन का विरोध करते हैं।' आयरलैण्ड छोड़कर जाते समय अंग्रेजों ने भारत-जैसी ही आयरलैण्ड की हालत की थी। इस प्रश्न के उत्तर में गांधीजी ने कहा, "मैं अकेला हूँ। विवश हूँ। मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि आयरलैण्ड और भारत की अवस्था एक जैसी कैसे? पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने विभाजन को मंजूरी दी है। कांग्रेस ने अनिच्छा से स्वीकृति दी है, यह बात सच है।" दूसरे किसी पत्र के जवाब में वे लिखते हैं, "कांग्रेस ही विभाजन की सहयोगी बनी है, तब मेरे उपवास का क्या लाभ होगा? कांग्रेस के साथ मेरे मतभेदों के कारण मैं उपवास करूँ तो उसका कोई उपयोग नहीं होगा। कांग्रेस औद्योगीकरण का पक्ष लेती है। मेरा विरोध है। क्या इस कारण से मैं उपवास करूँ ?" देश के विभाजन से पहले मेरे शरीर का विभाजन होगा। ऐसा गांधीजी ने कहा था। इसकी याद एक ने दिलायी। ९ जून, १९४७ की प्रार्थना-सभा में गांधीजी ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि, "लोग मेरे साथ हैं, इस कल्पना से मैंने वैला कहा था। उस समय मैं समझ रहा था कि मैं लोकमत ही अभिव्यक्त कर रहा हूँ। आज लोकमत विभाजन सहित आजादी के पक्ष में है। ऐसी हालत में मैं क्या कर सकता हूँ।" गांधीजी द्वारा विभाजन का विरोध किया जाना चाहिए था, ऐसा कहा जाता है। गांधीजी का भी विभाजन के प्रति विरोध था। पर इन दो भूमिकाओं में क्या समानता थी? विभाजन का विरोध' –यही एक समानता थी। हिन्दू-मुस्लिमों में एकता स्थापित होने पर विभाजन टल सकता है, ऐसा गांधीजी मानते थे। विभाजन का विरोध करनेवालों में एक गुट हिन्दू-मुस्लिम एकता को मुस्लिमों का तुष्टिकरण मानता था। गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते हैं, इस कारण यह गुट गांधीजी को 'मौलाना गांधी' कहता था। गांधीजी विभाजन के विरोधी थे। यह गुट भी विभाजन का विरोध करता था। केवल इस एक समानता के अलावा दोनों में कोई समानता नहीं थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता के अभाव में अखण्ड भारत का निर्माण हो ही नहीं सकता था। स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक से लेकर गांधीजी तक सभी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया है। अगर यह बात हिन्दुत्ववादी मान लेते तो विभाजन की

नौबत ही न आती। 'गांधी-विचार' के सम्बन्ध में विद्वेष फैलाना, गांधीजी ने विभाजन को मंजूरी दी, ऐसा प्रचार करना और गांधीजी को विभाजन टालने के लिए प्रयत्न करना चाहिए था, ऐसा कहना न्यायोचित नहीं है।

हिन्दू महासभा के दो कार्यकर्ताओं ने गांधीजी से कहा, "आप महात्मा नहीं हैं, अहिंसा का तत्त्व बताकर आप भारतीयों को कमजोर बना रहे हैं।' तब गांधीजी ने कहा, "जब मुझे महात्मा कहा गया, उसी समय मैंने कहा था कि मैं कोई महात्मा नहीं हूँ। यह शायद आप नहीं जानते। पाकिस्तान में होनेवाले अत्याचारों का आप अगर बदला लेना चाहते हैं तो पाकिस्तान में जाकर लीजिए।" ऐसा कहते समय उन दो कार्यकर्ताओं को अहिंसा का महत्त्व भी गांधीजी ने समझाया था। और अत्याचारों का मुकाबला अहिंसा से ही हो सकता है, यह भी कहा था। कार्यकर्ताओं के जाने के पश्चात् गांधीजी ने डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद से कहा, "मुझे काम से फुरसत मिलते ही मैं पूरे देश का दौरा करूँगा। युवा-शक्ति को रचनात्मक काम में लगाने का आन्दोलन शुरू करूँगा।" न॰ र॰ फाटक ने कहा ही है कि हिन्दुओं के समाचार-पत्र गांधीजी के विषय में विद्वेष बढ़ाने का काम कर रहे थे। गांधीजी हिन्दू-हितों के महान् शत्रु हैं, उन्हें अगर जिन्दा रहने दिया गया तो हिन्दुओं की और हानि होगी। इस तरह का प्रचार किया जा रहा था। विभाजन न राजाजी की कोख से पैदा हुआ था, न गांधीजी की। वह तो सन् १९०९ से हो रही घटनाओं का परिणाम था। हिन्दू-मुसलमानों में अविश्वास का वातावरण निर्माण करने की राजनीति तथा कुछ नेताओं के चोट खाये अहंकार का परिणाम था। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में लखनऊ-समझौता हुआ। मुसलमानों को विधानसभा में साढ़े तैंतीस प्रतिशत स्थान दिया गया। हिन्दू और मुस्लिम इस तरह के भारतीय समाज के दो बड़े घटकों में एकता और समझदारी के सम्बन्ध नहीं रहे तो भारत को आजादी मिलना कठिन है, यह तिलकजी समझ चुके थे। दोनों में एकता रहे, इसके लिए ज्यादा सीटें देना ही पर्याप्त नहीं समझा। उन्होंने यहाँ तक कहा कि अंग्रेज मुसलमानों के हाथों सारी सत्ता सौंप दें। गोविन्द तलवलकर अपनी 'सत्तान्तर' पुस्तक में लिखते हैं कि, "जिन्ना को प्रधानमंत्री पद देने की गांधीजी की बात लोकमान्य के विचारों की ही प्रतिध्वनि थी। महात्मा गांधी की ही तरह तिलकजी भी हिन्दू-मुस्लिम एकता का पक्ष लेते थे। पर हिन्दुत्ववादियों को केवल गांधीजी ही

मुस्लिमों के समर्थक लगते हैं। तिलकजी की वैसी ही भूमिका के बारे में वे एक शब्द भी नहीं बोलते।"

गांधीजी की राजनीति नैतिकता की नींव पर खड़ी थी। अगर पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देना तय हुआ है, तो देना आवश्यक ही है। दूसरे के व्यवहारानुसार अपने व्यवहार का निर्णय करना उचित नहीं है। यह भूमिका उनकी नैतिक राजनीति की परिचायक है। शान्ति-स्थापना हेतु दिल्ली में किये गये उपवास के बाद पाकिस्तान जाने का विचार गांधीजी कर रहे थे। वहाँ जाकर हिन्दुओं को सान्त्वना देना तथा उनमें आत्मविश्वास जगाना और साथ-साथ मुसलमानों की विवेक-बुद्धि का आवाहन कर शान्ति स्थापित करने की उनकी योजना थी। मुझे अगर आने दिया, तो मैं पाकिस्तान जाऊँगा, ऐसा उन्होंने कहा भी था। भारत अगर पचपन करोड़ रुपये न देता, तो पाकिस्तान जाने का कोई लाभ न होता। हम अगर नैतिक आचरण न करें और दूसरों से नैतिक आचरण की अपेक्षा रखें, तब उसका कोई अर्थ नहीं होता। पाकिस्तान जाकर समझाने के लिए नैतिक बुनियाद बनी रहे, इसी दृष्टि से शायद गांधीजी पचपन करोड़ रुपये देने का आग्रह रखते थे। भारत अगर पहले पहल किये हुए अन्तर्राष्ट्रीय समझौते को भंग करेगा, तो दुनिया में उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। इस दृष्टि से भी गांधीजी ने पचपन करोड़ रुपये देने की भूमिका ली होगी। गांधीजी ने मुसलमानों का तुष्टिकरण किया, यह आरोप हिन्दुत्ववादी लगाते हैं। इस तुष्टिकरण से गांधीजी कौन-सा लाभ पाना चाहते थे? इसके आधार पर क्या वे सत्ता हथियाना चाहते थे? उन्हें आसानी से सत्ता मिल सकती थी, फिर भी वे सत्ता से दूर रहे। ऐसे उदाहरण दुनिया में बहुत कम मिलते हैं। सत्ता की इच्छा उनके मन में थी ही नहीं। जयप्रकाश नारायण का नाम भी इस सम्बन्ध में लिया जा सकता है। गांधीजी चुनाव की राजनीति करना नहीं चाहते थे। मतों के लिए वे मुसलमानों का पक्ष ले रहे थे, मतों के बल पर प्रधानमंत्री बनना चाहते थे, यह नहीं कहा जा सकता। वे मुसलमानों का तुष्टिकरण करते हैं, ऐसा कहनेवालों को तुष्टिकरण के कारण भी तो स्पष्ट करने चाहिए। हो सकता है कि गांधीजी ने कभी मुसलमानों को कुछ अधिक महत्त्व दिया हो या उनकी कुछ गलतियों की अनदेखी की हो। स्वयं गांधीजी ने अपनी गलतियों को 'हिमालय जैसी गलती' कहा है। राष्ट्र की स्वतंत्रता का आन्दोलन अधिक तेज, निर्णायक स्वरूप का हो,

इसीके लिए शायद उन्होंने यह भूमिका अपनायी होगी। जो आन्दोलन छेड़ता है उसी से गलतियाँ भी हो सकती हैं। जो आन्दोलन में नहीं उतरता, उसके हाथों गलतियाँ होने की सम्भावना भी नहीं रहती। स्वयं निष्क्रिय रह दूसरों की गलतियाँ खोजनेवालों पर लोग अधिक ध्यान नहीं देते। हिन्दुत्ववादियों को इस तरह का थोड़ा अनुभव भी है। उनका गांधी-द्वेष की राजनीति के पीछे यह भी एक कारण है। इस देश में एकता बनाये रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता आवश्यक है, यह गांधीजी की दृष्टि थी। वही दृष्टि लोकमान्य तिलक की भी थी। गांधीजी की राष्ट्रीयता धर्मनिरपेक्ष थी। उसी में देश का हित था। कांग्रेस की स्थापना से ही कांग्रेस ने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद को महत्त्व दिया था। वही कांग्रेस का आधार था। गांधीजी ने वही नींव मजबूत की। जो भारत में जनमा, भारत में ही बड़ा हुआ और जो किसी दूसरे देश की ओर आँखें लगाये नहीं बैठा है, ऐसे सब लोगों का यह देश है। जितना यह देश हिन्दुओं का है, उतना ही मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी आदि सबका है। स्वतंत्र भारत हिन्दू-राज्य नहीं, भारतीय राज्य होगा। किसी एक धर्म, पंथ या जमात के बहुमत का यह राज्य नहीं होगा। भारतीय राज्य के प्रतिनिधियों का भारतीय राज्य होगा। ऐसा गांधीजी चाहते थे। धर्मनिरपेक्ष नागरिकता, धर्मपालन की स्वतंत्रता, उपासना की स्वतंत्रता, विचार-प्रचार और आचार की स्वतंत्रता, धर्म और शासन का अलगाव, आधुनिक शासन-पद्धति के आधार स्तम्भ हैं। सन् १९३१ का कराची-कांग्रेस का प्रस्ताव ऐसा ही है। भारत का संविधान भी इसी पर आधारित है। गांधीजी स्वयं धार्मिक थे। पर हर व्यक्ति की ईश्वर-कल्पना भिन्न हो सकती है, वे इस बात में विश्वास रखते थे। इसलिए धर्म के सम्बन्ध में सरकार की तटस्थता का आग्रह रखते थे। गांधीजी की इस भूमिका के कारण हिन्दुत्ववादियों की धर्मराष्ट्र की नींव ही खिसक जाती है। इसलिए वे गांधी-विरोधी रहे हैं। गांधीजी ईश्वर पर श्रद्धा रखते थे। पर सोमनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार सरकारी पैसों से हो, इस बात का उन्होंने विरोध किया था। सरदार पटेल पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देने के विरोध में थे। अन्तरिम सरकार में अर्थमंत्री लियाकत अली ने कांग्रेस और सरदार पटेल को परेशान कर दिया था। उसी का बदला पटेल लेना चाहते थे। पाकिस्तान की स्थापना के बाद अपने भाषणों में सरदार पटेल, पं॰ नेहरू और आचार्य कृपालानी कहा करते थे कि पाकिस्तान टिकेगा नहीं। आर्थिक दृष्टि से पाकिस्तान व्यवहार्य नहीं होगा। पचपन करोड़ रुपये नहीं देने से

पाकिस्तान आर्थिक संकट में पड़ेगा और उसका दिवाला निकलेगा, इसी इच्छा से शायद पैसे नहीं देने की बात सोची गयी होगी।

गांधीजी ने आजादी के आन्दोलन के साथ सामाजिक सुधार के आन्दोलन चलाये। अस्पृश्यता निवारण का काम किया। आजादी के आन्दोलन को व्यापक बनाने का यह दृष्टिकोण था। समाज के सभी घटक अगर एक नहीं होते तो राष्ट्र बलवान नहीं बनता, आक्रमणों का मुकाबला नहीं कर सकता, यह सीख गांधीजी ने इतिहास से ली थी। सबको एक सूत्र में बाँधने का उनका प्रयास था। जबकि पुरानी परम्पराओं, रूढ़ियों, नीति-नियमों सहित हिन्दुत्ववाद की पुनर्स्थापना हिन्दुत्ववादी करना चाहते थे। गांधीजी के समाज-सुधार के कार्यों से हिन्दुत्ववादियों की धर्म-कल्पना की जड़ ही उखड़ रही थी। उसे रोकने की सामर्थ्य हिन्दुत्ववादियों की विचार-प्रणाली में नहीं थी और न अपनी तत्त्व-प्रणाली लोगों के गले उतारने के लिए प्रभावशाली नेतृत्व था। यह संघर्ष दो विचारों का था। नयी तत्त्व-प्रणाली का मुकाबला करने जैसी समर्थ तत्त्व-प्रणाली भी नहीं और नेतृत्व भी नहीं। ऐसी परिस्थिति में गांधी को मारकर ही अपना काम बनेगा, ऐसी धारणा उन लोगों की थी, इसी धारणा के कारण गांधी की हत्या हुई।

महात्मा गांधी समन्वयवादी थे। नैतिकता, सत्य और अहिंसा उनकी राजनीति की बुनियाद थी। इसीलिए समझौते के मुताबिक पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायूँ, यह उनका आग्रह था।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के अभाव में राष्ट्र सामर्थ्यशाली नहीं बनेगा, यह उनकी भूमिका थी। वह मुसलमानों का तुष्टिकरण नहीं था। देशहित की दृष्टि से वह इस पर बल देते थे। आचार्य शंकरराव जावडेकर ने द्विराष्ट्रवाद के सम्बन्ध में सटीक विश्लेषण किया है। वे अपनी पुस्तक 'हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य' में लिखते हैं; "इस देश में जो धार्मिक वर्ग पैदा हुआ, वह अंग्रेजों की सत्ता के आश्रय से पैदा हुआ और बढ़ा। लेकिन अंग्रेजों से सत्ता छीनकर अपने हाथों में लेने की सामर्थ्य इस वर्ग में पैदा नहीं हो सकती। हाँ, उनमें से थोड़े प्रगतिशील पूँजीपति राष्ट्रवादी बने। सत्ता के लिए अंग्रेजों से संघर्ष भी करने लगे। तब उनको प्रभावहीन करने के लिए अंग्रेजों ने आर्थिक स्पर्द्धा में पिछड़े मुस्लिम पूँजीपतियों के मन में उनके प्रति भय की भावना पैदा की। और, उनके

मन में पाकिस्तान का बीज बोया। औद्योगिक प्रगति में पिछड़े हुए मुस्लिम पूँजीपति इस बात के प्रति आकर्षित हुए। परन्तु सामान्य मुस्लिम जनता का भला करने की सामर्थ्य पाकिस्तान में नहीं।" जावडेकर के विचार आज कालबाह्य लगते हों, तब भी पाकिस्तान की माँग में सामान्य मुसलमानों की भलाई नहीं है, यह सामान्य मुसलमानों को समझाने के साथ हिन्दू-मुसलमानों के बीच प्रेम-सम्बन्ध प्रस्थापित न हुए तो आजादी सम्भव नहीं है, यह सोचकर गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता को महत्त्व देते थे। आचार्य जावडेकर कहते हैं : "शुरू से चले आ रहे हिन्दू-मुस्लिमों के झगड़े, अंग्रेजों के विरोध में हिन्दू जनता द्वारा चलाये आन्दोलन शक्तिशाली होकर ब्रिटिश साम्राज्य के नष्ट होने तक, किसी-न-किसी रूप में हमेशा चलते ही रहेंगे, इसका एहसास हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय नेताओं को हुआ था। फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने के लिए हिन्दू-मुसलमानों की एकता पर ध्यान देना भी जरूरी था।" गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता पर अधिक ध्यान क्यों देते थे, इसका सार इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है। हिन्दुत्ववादियों ने इस पर कभी ध्यान नहीं दिया। लोकमान्य तिलक ने भी इस पर ध्यान दिया था। लॉर्ड डफरिन ने द्विराष्ट्रवाद का बीज बोया। सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई। सन् १८८८ में उसे आन्दोलन करनेवाली संस्था का स्वरूप ग्राप्त होने लगा। कांग्रेस में हिन्दू और मुसलमान दोनों के प्रतिनिधि थे। यह प्रतिनिधित्व जनसंख्या के अनुपात में ही था। यह देखकर लॉर्ड डफरिन ने कहा कि हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुस्लिम दो राष्ट्र हैं। कांग्रेस में हिन्दू अधिक हैं। वह हिन्दुओं की संस्था है, मुसलमान उसमें शामिल न हों। सर सैय्यद अहमद इस प्रचार की चपेट में आ गये। वे भी कांग्रेस-विरोधी प्रचार करने लगे। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति डफरिन के बाद भी जारी रही। अंग्रेजों के हाथ की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कठपुतली बनकर उनकी इस कूटनीति का विरोध करना सम्भव नहीं था। धर्म के नाम पर राजनीति चलाना और धर्म के आधार पर राष्ट्र-निर्माण में भूमिकाएँ अंग्रेजों के हाथ ही मजबूत करनेवाली थी। सत्ता की रक्षा के लिए डफरिन यह प्रचार कर रहा था कि कांग्रेस हिन्दुओं का संगठन है। हिन्दू-मुस्लिम एकता ही इस दुष्प्रचार का उत्तर था। सन् १८९३-९४ में मुम्बई इलाके में हिन्दू-मुसलमानों के पहले दंगे हुए। सन् १८५७ की क्रान्ति में हिन्दू-मुस्लिम एक होकर लड़े थे। अतः दोनों में खिंचाव या दुराव बढ़े, यही बात अंग्रेज चाहते थे। उन दिनों मुम्बई इलाके में कांग्रेस

का जोर था। अत: हिन्दू-मुसलमानों के बीच फूट डालना अंग्रेज आवश्यक समझ रहे थे। जहाँ कांग्रेस का कार्य अधिक था, वहीं हिन्दू-मुसलमानों के बीच दंगे शुरू हुए। पूर्व बंगाल मुस्लिमों का प्रान्त हो, इस दृष्टि से बंगाल का विभाजन अंग्रेजों की कुटिल नीति थी। इससे भी कुटिल बातें मोर्ले-मिण्टो सुधार के नाम से स्वीकार की गयीं। इन सुधारों के तहत स्वतंत्र मतदाता क्षेत्र बनाकर उसे हिन्दुस्तान के संविधान में समाविष्ट किया गया। इस सम्बन्ध में सुलतान अहमद का कथन देखने लायक है : "मोर्ले-मिण्टो सुधारों के तहत स्वीकार किये गये सन् १९०९ के कानून के कारण भारतीय संविधान के इतिहास की एक गम्भीर स्थिति पैदा हुई। अलग मतदाता क्षेत्र बनाकर जाति के आधार पर प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गयी। यह कदम प्रजातंत्र के मूल सिद्धान्तों के प्रतिकूल था। अलग मतदाता क्षेत्र बनाकर फूट के बीज बोये गये।"[३७] इसके बाद माण्टेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधारों की चर्चा शुरू हुई। तब हिन्दू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से तथा कांग्रेस को मुस्लिम लीग अपना समर्थन दे, इस दृष्टि से अलग मतदाता क्षेत्र का आधार लेकर लोकमान्य तिलक ने लखनऊ-समझौता किया। इस समझौते के अनुसार मुसलमानों को पंजाब में ५०%, बंगाल में ४०%, बिहार में २५%, मध्य प्रान्त और मद्रास में १५% और मुम्बई में एक तिहाई सीटें दी गयी थीं। मुस्लिम लीग के समर्थन के लिए लोकमान्य तिलक ने यह समझौता किया था। मुसलमानों के तुष्टिकरण की यह शुरुआत है, ऐसा कह सकते हैं। समझौते का समर्थन करते हुए लोकमान्य तिलक ने कहा था, "हमें विदेशी सरकार से लड़ना है। इस लड़ाई को सफल बनाने के लिए आपस के झगड़े हर हालत में मिटाने होंगे। जातिभेद, धर्मभेद और मतभेद मिटाकर हमें एक स्वर से माँग करनी होगी। ऐसा करते हुए अगर मुसलमानों को अधिक अधिकार मिलते हैं या सारा देश ही अंग्रेज उन्हें या हिन्दुस्तान की किसी अन्य जमात के हाथों में सौंप देते हैं, तो भी कोई हर्ज नहीं। हमने तो इसी दृष्टि से समझौता किया है कि हमारे देश में विदेशी सत्ता समाप्त हो और हमारा राष्ट्र स्वतंत्र हो जाय।"

जिन्ना ही मंत्रिमण्डल बनायें, यह योजना गांधीजी ने जिन्ना के सामने रखी थी। गोविन्द तलवलकर अपनी 'सत्तान्तर' पुस्तक में लिखते हैं कि यह योजना लोकमान्य तिलक से ही प्रेरणा लेकर बनायी गयी थी। तब उसका आधार यही रहा होगा। तलवलकर की बात सही है। लखनऊ-

समझौते के बाद हिन्दू-मुसलमानों में एकता बढ़ी । राष्ट्र-भक्त मुसलमानों की संख्या लगातार बढ़ती गयी। सन् १९२० के आन्दोलन में मुसलमानों का त्याग अन्य भारतीयों जैसा ही था। सन् १९२५ के बाद असहयोग आन्दोलन के समय अंग्रेजों ने लोगों के असन्तोष को धर्मभेद का रूप दिया। इस सम्बन्ध में आचार्य जावडेकर का यह कथन महत्त्वपूर्ण है : "मलाबार प्रान्त में मोपलों के दंगों के समय मुसलमान गुण्डों ने हिन्दुओं पर काफी अन्याय किये। राष्ट्रभक्त मुसलमानों ने इसका तीव्र विरोध भी किया। पर आन्दोलन का जोर कम होने पर अन्य स्थानों पर भी हिन्दू-मुस्लिम दंगों का जोर बढ़ा। मोपलों का दंगा जमींदार और उनकी जमीन पर काम करनेवाले बटाईदारों के बीच का आर्थिक संघर्ष था। मलाबार में जमीनमालिक नम्बूदरी ब्राह्मण थे और उनके कर्जे के फंदे में गरीब मोपला पूरी तरह फँसे रहते थे। आर्थिक वर्ग-विरोध के कारण वर्ग-विग्रह की परिस्थिति हमेशा बनती ही है। पर इस आर्थिक वर्ग-विग्रह को, धर्मभेद और जातिभेद से पगलाये हिन्दू लोग धर्म-कलह या जाति-कलह का रूप देते हैं। हिन्दू जनता हर वर्ग-विरोध की ओर आर्थिक दृष्टि से न देख जातीय दृष्टि से देखती है। अज्ञानी जनता के आर्थिक या राजनैतिक आन्दोलन को धार्मिक विद्वेष की ओर मोड़ना आसान होता है।" आचार्य जावडेकर की यह मीमांसा आज भी लागू होती है। हिन्दू-मुसलमानों के बीच एकता स्थापित होते ही फूट डालने की कोई-न-कोई तरकीब अंग्रेज खोजते थे। इस काम में हिन्दू और मुस्लिम दोनों का अंग्रेजों ने उपयोग किया। सन् १९०५ में बंगाल का विभाजन करके और सन् १९०९ में अलग मतदाता क्षेत्र का निर्माण करके अंग्रेजों ने भेद के बीज बोये। सन् १९१६ का लोकमान्य तिलक का लखनऊ-समझौता, सन् १९३७ का स्वातंत्र्यवीर सावरकर का द्विराष्ट्रवाद का सिद्धान्त और पण्डित नेहरू का १० जुलाई, १९४६ का निवेदन इन सब कारणों से भेद के बीज अंकुरित हुए। और, फिर द्विराष्ट्रवाद का फल मिला। इसमें गांधीजी की राजनीति का कोई सम्बन्ध नहीं था। लखनऊ-समझौते के समर्थन में लोकमान्य तिलक ने जो भाषण दिया, उसे देखकर तिलकजी ही मुस्लिम-तुष्टिकरण के प्रणेता कहे जायेंगे। परन्तु तिलक या गांधी किसी पर भी इस तरह का दोषारोपण करना गलत माना जायेगा। देश की परिस्थिति और अंग्रेजों की कूटनीति को हिन्दुत्ववादियों ने नजरअन्दाज किया। मुस्लिम-द्वेष और गांधी-द्वेष ही उनकी राजनीति का आधार था। जब विचारों की पृष्ठभूमि तथा आर्थिक कार्यक्रमों

का अभाव होता है तब विद्वेष की राजनीति जन्म लेती है। कुछ मुस्लिम नेताओं ने द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त का विरोध किया था। यह बताने की प्रामाणिकता भी हिन्दुत्ववादियों में नहीं है। सन् १९०९ में विभक्त मतदाता क्षेत्र का निर्माण हुआ, तब भारत की राजनीति में महात्मा गांधी का उदय भी नहीं हुआ था। तिलकजी ने जिन्ना के साथ सन् १९१६ में समझौता किया, उससे ७ साल पहले अलग मतदाता क्षेत्र का निर्माण हुआ। लोकमान्य तिलक ने भी अलग मतदाता क्षेत्र का विरोध नहीं किया। परन्तु महात्मा गांधी ने बाद की राजनीति में हरिजनों के लिए अलग मतदाता क्षेत्र बनाने की योजना को उपवास करके रद्द करवाया। डॉ॰ अम्बेडकर ने गांधीजी के प्राण बचाने के लिए हरिजनों का अलग मतदाता क्षेत्र रद्द करने की मंजूरी दी। सन् १९०९ के अलग मतदाता क्षेत्रों का सर सुलतान अहमद ने विरोध किया था। उन्होंने कहा था, "सन् १९०९ का कानून (अलग मतदाता क्षेत्र का निर्माण करनेवाला) भारतीय संविधान के इतिहास को अनिष्ट मोड़ देनेवाला मामला है। जातीय तत्त्वों के आधार पर अलग मतदाता क्षेत्र का निर्माण करना लोकतंत्र के मौलिक सिद्धान्तों का विरोध है। अलग मतदाता क्षेत्र के कारण अलगाववाद के बीज बोये जा रहे हैं।'' ए॰ एम॰ ए॰ शुस्तरी ने अपनी 'आउट लाइन ऑफ इस्लामिक कल्चर' पुस्तक में द्विराष्ट्रवाद का ही विरोध किया था। वे कहते हैं, "सब धर्मों के लोगों का एक राष्ट्र बनाने की क्षमता अगर सब लोग विकसित करेंगे तभी इस देश के सवाल हल होंगे। धर्म और राष्ट्रीयता के संकरण से प्रश्न हल नहीं होंगे। हिन्दू-राष्ट्र और मुस्लिम-राष्ट्र की विशिष्ट धर्म-भावनाओं का बुद्धिपूर्वक एवं आग्रहपूर्वक त्याग करना होगा। इसीसे हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता का हम विकास कर सकेंगे।" रेझाउल करीम कहते हैं, "मुस्लिम-राष्ट्र बनाने की कल्पना अब छोड़ देनी चाहिए। धर्म के नाम पर राष्ट्रनिर्माण की कल्पना अब कालबाह्य हो गयी है। अब नये-नये प्रश्न खड़े हो रहे हैं, उन्हें हल करने के लिए नये उपाय ही आवश्यक हैं। मुस्लिम राष्ट्र-निर्माण किया जा सकेगा, यह कल्पना ही मूर्खतापूर्ण है। हजारों साल पुरानी नागरिकता की कल्पना एवं आज की कल्पना में काफी अन्तर आया है। इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। मुस्लिम और गैर-मुस्लिम, सबमें एकता स्थापित कर, उनका एक ही राष्ट्र बनाना होगा। दोनों को मिलकर सरकार का गठन करना होगा। धर्म और राजनीति का अपवित्र गठजोड़ राष्ट्रीयता के मार्ग में रोड़ा बनेगा।" रेझाउल करीम या सर सुलतान अहमद जैसों

का राजनीति में प्रभाव कायम नहीं रह सका, इसके लिए अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति जिम्मेदार है।

पाकिस्तान के निर्माण में मुस्लिमों का अहित है, यह बात सर सुलतान अहमद हमेशा कहते रहे। जिन क्षेत्रों में मुसलमानों की संख्या अधिक है वहाँ एक या दो स्वतंत्र राज्य बनाकर हिन्दू-मुस्लिम विवाद मिटाने का उपाय मुस्लिमों के लिए हानिकारक है। यह बताते हुए सर सुलतान अहमद ने अपनी पुस्तक 'ए ट्रीटी बिट्वीन इण्डिया एण्ड युनाइटेड किंगडम' में नीचे दिये मुद्दों का जिक्र किया है :

(१) पाकिस्तान की कल्पना मुसलमानों के स्व निर्णय पर आधारित होने से स्पष्ट समझ में आ सकती है। पर पाकिस्तान की चारों सीमाएँ अब तक कोई निर्धारित नहीं कर सका। ये सीमाएँ किसी भी तरह से निर्धारित की जायें, तब भी पाकिस्तान को नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर देना मुश्किल होगा :

(अ) स्व निर्णयानुसार सिक्ख अगर हिन्दू संयुक्त राज्य में शामिल होने का निर्णय लें, तब पाकिस्तानवाले क्या बवरमबाले हैं? सिक्खों को कौन-सा प्रदेश देंगे?

(आ) क्या अम्बाला और जालंधर किसी भी हालत में पाकिस्तान में ही शामिल करने हैं? अगर करने हैं, तो किन सिद्धान्तों का आधार लिया जायेगा?

(इ) क्या अमृतसर पाकिस्तान में शामिल होगा? (इस बात के लिए सिक्ख कभी राजी नहीं होंगे, ऐसा सुलतान अहमद का मत था)।

(ई) पूर्वी पाकिस्तान की राज्य-भाषा कौन-सी होगी?

(उ) पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को जोड़नेवाला कोई प्रदेश आवश्यक होगा क्या? अगर होगा, तो उसकी कया व्यवस्था की जायेगी?

(ऊ) कलकत्ता शहर पाकिस्तान में आयेगा या नहीं? (नहीं आयेगा, यह सुलतान अहमद का मत था।)

(ए) अगर सीमाप्रान्त के मुसलमान पाकिस्तान में शामिल नहीं होंगे, तो पाकिस्तान की क्या स्थिति होगी?

ये दिक्कतें सामने रखकर अहमद कहते हैं कि जो मुसलमान हिन्दू-प्रधान प्रान्तों में रहेंगे, उनकी स्थिति पाकिस्तान के बनने से सुधरेगी नहीं, बल्कि और बिगड़ेगी। इन प्रान्तों में मुसलमान अल्पसंख्यक हो जायेंगे। "कम्यूनल एवार्ड के तहत उन्हें मिले अधिकार खतम हो जायेंगे।" अगर पाकिस्तान का निर्माण करना हो तो अंग्रेजों के जाने के बाद करेंगे, ऐसा गांधीजी क्यों कहते थे, इसकी स्पष्टता अहमद द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रश्नों से की जा सकती है। पाकिस्तान का चित्र स्पष्ट कीजिए, ऐसा महात्मा गांधी जिन्ना से कहते थे। उसका कारण भी इन दिक्कतों को सामने लाना रहा होगा। अंग्रेजों से आजादी पाने के बाद अगर विभाजन होता, तो उसका स्वरूप ही अलग होता। जिन्ना भी इस बात को अच्छी तरह जानते थे। इसीलिए गांधीजी की बात पर जिन्ना ने ध्यान नहीं दिया।

जिन कारणों से भारत निरन्तर पराधीन रहा, उन कारणों को समूल नष्ट करने का मार्ग गांधीजी की विचारधारा में था। परन्तु यह मार्ग दिखानेवाले महात्मा को ही हिन्दुत्ववादी देशद्रोही कहने लगे। इस्लाम के आक्रमण के बाद से ही भारतीय संस्कृति अर्थात् हिन्दू संस्कृति दुर्बल होने लगी। इस्लाम के पहले आक्रमण में बौद्धधर्म समाप्त हुआ। श्रुति, स्मृति और पुराणों से प्रभावित हिन्दुओं की समाज-संस्था राजनैतिक दृष्टि से कमजोर है, यह बात इस्लाम के आक्रमण से स्पष्ट हो गयी। आक्रामक टोलियाँ ७००-८०० लोगों की थीं। बड़े-बड़े झुण्ड बनाकर भी वे नहीं आयी थीं। भारत की कमजोरी का मूल कारण जाति-व्यवस्था थी। ऊँच-नीच के भेदों के कारण समाज में समरसता नहीं थी। जाति-व्यवस्था के कारण हिन्दू-समाज कभी एकता के सूत्र में बँधा न रह सका। फलत: आक्रमण का मुकाबला एक होकर करने की भावना भारतीय समाज में कभी पैदा ही नहीं हुई। गांधीजी ने हिन्दू-समाज की त्रुटियाँ पहचानी थीं। देश को अगर एक राष्ट्र के रूप में खड़ा करना हो, तो समाज में पड़ी दरारें मिटानी पड़ेंगी, ऐसा सोचकर आजादी के आन्दोलन में सबको सहयोगी बनाने का मार्ग उन्होंने अपनाया। कुछ घटकों ने कुछ अधिक लाभ हो, तब भी चलेगा, यह लोकमान्य तिलक की इच्छा स्वीकार कर स्वाधीनता-आन्दोलन को अधिक प्रखर

बनाने का प्रयास गांधीजी को किया। भारतीय समाज की फूट अगर कायम रही तो आजादी का आन्दोलन कभी सफल नहीं होगा, यही गांधीजी का मत था। तिलकजी का भी यही मत था, इसीलिए उन्होंने लखनऊ-समझौता किया और गांधीजी ने मुस्लिमों के प्रति सहानुभूति की भूमिका अपनायी। हिन्दुत्ववादी ब्राह्मणों के वर्चस्ववाला राज्य स्थापित करना चाहते थे, इसलिए वे तिलकजी के मुस्लिम तुष्टिकरण की जहरीली आलोचना नहीं करते। पर गांधीजी के खिलाफ जहरीला प्रहार करते थे, गांधीजी और तिलकजी, दोनों की मुस्लिमों से सम्बन्धित भूमिका करीब-करीब एक जैसी थी। इस बात का रहस्य क्या है? मुस्लिम तुष्टिकरण के कारण देश का विभाजन हुआ है, ऐसा अगर माना जाय तो तिलकजी पहले दोषी होंगे। मुस्लिम तुष्टिकरण के विषय में पहले 'अपराधी' के सम्बन्ध में हिन्दुत्ववादी अलग दृष्टिकोण रखते हैं और दूसरे को अपराधी मानकर उसकी हत्या करते हैं। अर्थात् हिन्दुत्ववादी अप्रासंगिक हैं। लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी को वे एक माप से नहीं तौलते! अप्रामाणिकता से छुटकारा पाने के लिए वे कहते हैं कि पचपन करोड़ रुपये के कारण गांधीजी की हत्या की गयी। फिर वही प्रश्न खड़ा होता है कि जब सन् १९३४ और सन् १९४६ में पचपन करोड़ रुपये की कोई बात नहीं थी, तब हत्या के प्रयास क्यों हुए? मुसलमानों के विषय में तिलकजी और गांधीजी की भूमिका में कोई फर्क नहीं था। चाहे मुसलमानों के हाथों सत्ता सौंप दीजिए, पर आप भारत छोड़ दीजिए। यह बात तिलकजी और गांधीजी दोनों ने कही। पर हिन्दुत्ववादी गांधीजी को मुस्लिमों के हिमायती मानते हैं, तिलकजी को नहीं। स्वामी विवेकानन्द राजनीति में नहीं थे। वे तो आध्यात्मिक थे। पर वे भी हिन्दू-मुस्लिम एकता में ही भारत की भलाई मानते थे। वे कहते थे : "अपनी मातृभूमि की दृष्टि से विचार करें तो हिन्दू-धर्म और मुस्लिम-धर्म का समन्वय, यही एक आशा का बिन्दु है। वैदिक मस्तिष्क और इस्लामी देह धारण करके ही भावी भारत उदय होनेवाला है।" क्या उनका यह कथन हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थक नहीं है? पर विवेकानन्द मुस्लिमों के प्रति पक्षपात करते हैं, ऐसा नहीं माना जाता। न्या॰ महादेव गोविंन्द रानडे की मृत्यु सन् १९०१ में हुई। उन्होंने भी हिन्दू-मुस्लिम एकता का ही समर्थन किया था। वे कहते थे : "हिन्दू-मुसलमान दोनों, एक हुए बिना इस विस्तृत देश की प्रगति असम्भव है, यही सीख हमें इतिहास से लेनी होगी। अकबर तथा

उसे सलाह देनेवालों ने जो मार्ग दिखाया है उसी पर चलने का निश्चय हमें करना होगा। उसके पोते औरंगजेब ने जो गलतियाँ कीं, उनसे हमें प्रयत्नपूर्वक बचना होगा।" पर न्या॰ रानडे को कोई मुसलमानों का समर्थक नहीं कहता। केवल महात्मा गांधी को ही मुस्लिमों का तुष्टिकर्ता कहा जाता है। इसका मूल कारण यही था कि ऊँची जातियों के कुछ लोगों के हाथों से छिन गयी सत्ता, गांधीजी की राजनीति के कारण पुनः उनके हाथों में आती दिखायी नहीं देती थी। इसलिए केवल गांधीजी के प्रति हिन्दुओं के मन में द्वेष पैदा करने के लिए ही, गांधीजी मुस्लिमों का तुष्टिकरण करते हैं, ऐसा हिन्दुत्ववादी प्रचार करते रहते रहे। सर सुलतान अहमद ने जिस भविष्य का अन्दाजा लगाया था, वही हुआ। उन्होंने कहा था, "सन् १९०९ का कानून भारतीय संविधान के इतिहास को एक अनिष्ट मोड़ देनेवाला मामला है। जाति के आधार पर अलग मतदाता क्षेत्र के अलगाव के बीज बोये जा रहे हैं।" मुस्लिम नेताओं के इस तरह के विचार हिन्दू और मुसलमानों तक पहुँचाने के बजाय हिन्दुत्ववादी मुस्लिमों के प्रति द्वेष फैलाने की राजनीति ही करते रहे। अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिमों में फूट डाली। यही कार्य अपनी इस भूमिका के कारण हिन्दुत्ववादियों ने किया। स्वतंत्र मतदाता क्षेत्र के कारण अलगाव बढ़ेगा, ऐसा संकेत कुछ मुस्लिम नेताओं ने कर दिया था, फिर भी सन् १९१६ में लोकमान्य तिलक ने जिन्ना के साथ लखनऊ-समझौता किया, क्योंकि हिन्दू-मुस्लिम एकता के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था। महात्मा गांधी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते ही उन्हें मौलाना गांधी कहनेवाले हिन्दुत्ववादी तिलकजी के विषय में चुप्पी साधे रहते हैं। ऐसा क्यों हुआ? स्वामी विवेकानन्द राजनैतिक नेता न थे। वे आध्यात्मिक थे। उनकी बातों का राजनीति पर परिणाम होने की सम्भावना ही नहीं थी। न्या० रानडे और लोकमान्य तिलक ब्राह्मण थे। न्या॰ रानडे के विचारों का प्रभाव सीमित था। वे सामाजिक सुधारों का पक्ष लेते थे, पर सुधारों को जीवन में उतारने के लिए तत्पर नहीं थे। अत: न्या॰ रानडे के कारण कोई मूलभूत परिवर्तन की आशा नहीं थी। सन् १९१६ में लखनऊ-समझौता किया, पर सन् १९१७ में अथणी में तिलकजी ने अपने भाषण में किसान, दर्जी, वैश्य आदि के सम्बन्ध में जिस तरह का उल्लेख किया, उसे देखते हुए, तिलकजी भी ब्राह्मणों की श्रेष्ठता माननेवाले ही हैं, ऐसी धारणा हिन्दुत्ववादी लोगों की दृढ़ हुई। इसीलिए उन लोगों ने तिलकजी के विषय में कुछ नहीं कहा। सिर्फ गांधीजी ही एकमात्र

ऐसे नेता थे जो सामाजिक सुधारों का आग्रह रखते थे और बहुजन समाज के हाथों में सत्ता रहे, यह भी चाहते थे। उनके पीछे सारा जनसमाज खड़ा था। यही हिन्दुत्ववादियों का सिरदर्द था।

३७. ए *ट्रीटी बिट्वीन इण्डिया एण्ड युनाइटेड किंगडम :* सर सुलतान अहमद।

हिंसा की राजनीति

हिन्दुत्ववादियों की राजनीति को बिलकुल प्रारम्भ से देखें तो इस विचारधारा के लोगों द्वारा गांधीजी की हत्या किया जाना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं लगती। हिन्दुत्ववादी राजनीति का ही वह एक हिस्सा था। लोकमान्य तिलक के समय से राजनीति में चित्पावन ब्राह्मणों का काफी सहयोग रहा। अंग्रेजों के आने से ब्राह्मणों के प्रभाव को ठेस पहुँची। परन्तु अंग्रेजी शासनकाल में इसी वर्ग के कुछ लोगों को शासन में ऊँचे ओहदे भी मिले। जिन्हें ऐसा स्थान नहीं मिला, वे असन्तुष्ट थे। यही असन्तुष्ट वर्ग प्रमुखतः तिलकजी के आन्दोलन की ओर मुड़ा। न्या॰ रानडे का मतानुयायी वर्ग कानून द्वारा सुधारों की माँग करनेवाला था, तो तिलकजी, असन्तोष निर्माण कर अपने अधिकार छीन लेने चाहिए, ऐसा मानते थे। न्या॰ रानडे और लोकमान्य तिलक ने कुछ समय तक साथ-साथ काम किया। आगे जाकर दोनों के मार्ग भिन्न हो गये। तिलकजी के साथ आक्रामक विचारों के ब्राह्मण रहे। इस वर्ग ने न तिलकजी की राजनीति समझी, न ही उसे समझने की क्षमता उनमें थी। अतः वे तिलकजी की राजनीति का गलत अर्थ लगाते रहे। सन् १८९३ के जातीय दंगों के बाद लोकमान्य तिलक ने मुसलमानों की आलोचना की थी। यह आलोचना ही तिलकजी की राजनीति है, ऐसा अर्थ इस वर्ग ने लगाया। तिलकजी ने किस भावना से लखनऊ-समझौता किया, इस बात को समझने का प्रयास भी इस वर्ग ने नहीं किया। यहीं लोकमान्य तिलक और उनकी राजनीति तथा हिन्दुत्ववादी अलग हो जाते हैं। सन् १८९३ के जातीय दंगों के बाद अंग्रेजों ने मस्जिदों के सामने से बाजा बजाते हुए जाने पर पाबन्दी लगा दी। यह लोगों के मूलभूत अधिकारों का हनन है, ऐसी भूमिका तिलकजी ने अपनयी। हिन्दुत्ववादियों ने मुस्लिम-द्वेष फैलाने के लिए इसका उपयोग किया। हिन्दुत्ववादियों के पास किसी तरह की राजनैतिक विचारधारा नहीं थी, पर उनके विचार और मार्ग हमेशा आक्रामक या भड़काऊ रहे। इसी में क्रान्तिकारिता है, ऐसी उनकी धारणा थी। क्रान्ति के लिए किसी विचारधारा का आधार आवश्यक होता है। उसी आधार पर कोई आर्थिक कार्यक्रम बनाना और उस कार्यक्रम को अमल में लाने के लिए, हिंसा के मार्ग से, सत्ता हासिल करने के उद्देश्य से कार्यकर्ताओं की एक बड़ी सेना आवश्यक होती है।

हिन्दुत्ववादियों के पास हिंसा के अलावा और कुछ भी नहीं था। अत: वे क्रान्तिकारी नहीं थे। व्यक्तिगत हिंसा का समर्थन करना उनकी राजनीति का

एक प्रमुख हिस्सा था। इस विचारधारा के तहत जब तक अंग्रेजों की हत्या होती रही, तब तक उसके भयावह परिणाम भारतीय समझ नहीं पाये। व्यक्ति की हिंसा से जो आतंक फैलता है, उससे आजादी नहीं मिल सकती, क्योंकि वह क्रान्ति नहीं होती। यह अन्तर समझने की दृष्टि भारतीयों में नहीं आ पायी थी। हिन्दुत्ववादी अपने आन्दोलन में किस बात को अधिक महत्त्व देते थे, यह वेलेनटाइन चिरोल ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन अनरेस्ट' में उल्लेख किया है। यह पुस्तक सन् १९१० में लिखी गयी है। वे लिखते हैं, "हिन्दुत्व अर्थात् हिन्दू-धर्म के असंख्य रूप हैं, प्रकार हैं। परन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब राजकीय आन्दोलन विषाक्त रूप धारण करता है, तब अपने उपद्रवों के लिए हिन्दुत्ववादी किसी-न-किसी लोकप्रिय देवता का आधार लेते हैं।" हिन्दुत्ववादियों के सम्बन्ध में किया हुआ चिरोल का यह विवेचन आज भी पूरा-पूरा सही सिद्ध होता है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्य में काफी गुप्तता रखी जाती है। हिन्दू महासभा का कार्य भी प्रजातंत्र के समान खुले रूप में नहीं चलता। सरदार पटेल ने ११ सितम्बर, १९४८ को सर संघ चालक मा॰ स॰ गोलवलकरजी को लिखा था कि, "राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लोगों ने व्यक्ति-द्वेष फैलाकर तथा सभ्यता और शिष्टाचार का उल्लंघन करके जहरीले भाषणों से देश का वातावरण विस्फोटक बना दिया और उनके जातीय भाषणों के कारण गांधीजी की हत्या हुई। हत्या के बाद राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने मिठाइयाँ बाँटकर खुशियाँ मनायीं। इससे लोग क्षुब्ध हो उठे। लोग कभी आपके पक्ष में थे ही नहीं।" १८ जुलाई, १९४८ को श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नाम एक पत्र में सरदार पटेल लिखते हैं कि, 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की करतूतों से सरकार का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।" ४ फरवरी, १९४८ के निवेदन में सरदार पटेल लिखते हैं कि, "राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की करतूतों से व्यक्तिगत हत्या और हिंसा का वातावरण निर्माण हुआ। और उसी के कारण गांधीजी की हत्या हुई।" हिन्दुत्ववादियों के सम्बन्ध में चिरोल का विश्लेषण और आजाद भारत के पहले गृहमंत्री सरदार पटेल के पत्रों में किया गया विश्लेषण एक जैसा ही है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कारण सरकार का अस्तित्व ही खतरे में पड़ा है, ऐसा सरदार पटेल लिखते हैं, पर उसका

विस्तृत विवरण उनके पत्रों में नहीं मिलता। कपूर आयोग के सामने दी गयी गवाहियों में अफसरों ने जो जानकारी दी, उससे यह स्पष्ट होता है कि पटेल ऐसा क्यों कहे थे। जे॰ एन॰ साहनी ने अपनी गवाही में कहा था कि, "२० जनवरी, १९४८ के दिन गांधीजी की प्रार्थना-सभा में विस्फोट हुआ, उसी दरम्यान छह लाख स्वयं सेवकों का एक गुप्त संगठन सरकार उखाड़ने की साजिश की योजना बना रहा था। पूरे देश में उस संगठन के केन्द्र थे। ऐसा भी कहा जाता था कि गोलवलकर, भोपटकर या डॉ॰ खरे इस संगठन के नेता हैं। संगठन के स्वयं सेवकों को अलवर तथा भरतपुर में प्रशिक्षण दिया जाता था। इस संगठन का उद्देश्य था श्रेष्ठ नेताओं की हत्याएँ कर सत्ता हस्तगत करना। गांधीजी की हत्या के बाद ऐसा माना जाने लगा कि यह हत्या भी उस साजिश का ही एक हिस्सा था। अंग्रेज इस देश से चले गये, तब सत्ता हासिल करने के उद्देश्य से यह गुप्त संगठन काम करता था। कुछ रियासतें भी इस काम में उनकी मदद कर रही थीं।"[३८] साहनी ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का नाम तो नहीं लिया था, पर उसके प्रमुख नेताओं के नाम लिये थे। सरदार पटेल के पत्र में जिस बगावत का उल्लेख है वह इसी सन्दर्भ में होगा। सन् १९४३ में श्यामाप्रसाद मुखर्जी हिन्दू महासभा के अध्यक्ष थे। तब उन्होंने सलाह दी थी कि महासभा जाति पर आधारित राजनीति का त्याग करे और एक सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन बनकर काम करे। परन्तु हिन्दू महासभा ने यह सलाह नहीं मानी। तब डॉ॰ मुखर्जी ने महासभा से त्यागपत्र दे दिया। हिन्दू महासभा की जातीय, पक्षीय और धार्मिक विद्वेष की राजनीति के परिणाम का एहसास गांधीजी की हत्या के बाद, डॉ॰ मुखर्जी को हुआ। हिन्दुत्ववादी संगठनों के विचार, उनकी कार्यप्रणाली और उनकी गोपनीयता को देखें तो इन संगठनों के विषय में चिरोल की बातों की पुष्टि ही होती है। डॉ॰ हेडगेवार के समय से हिन्दुत्ववादी यही प्रचार करते रहे कि गांधीजी मुस्लिमों के समर्थक हैं। महात्मा गांधी राजनीति छोड़ दें, यह माँग हिन्दुत्ववादी करते थे। पर गांधीजी ने यह जाहिर किया था कि प्राण रहते मैं अपना कार्यक्षेत्र नहीं छोड़ूँगा। इतिहास शोधक न॰ र॰ फाटक कहते हैं कि, "गांधीजी द्वारा राजनीति न छोड़ने की बात करते ही उनके विषय में वैर की भावना रखनेवालों के सामने समस्या खड़ी हो गयी। न वे राजनीति छोड़ते हैं, न जल्दी मरने की बात करते हैं। ऐसी हालत में उनकी जान लेना, यही एकमात्र उपाय है, ऐसा विचार महाराष्ट्र के अनेक लोगों के दिमाग

में आया। महाराष्ट्र में तिलकजी के अनुयायियों ने गांधीजी का कभी सहयोग नहीं किया। पर इसी समय कुछ लोगों के मन में 'गांधी को खत्म' करने की बात बैठ गयी।"[३९] स्वामी श्रद्धानन्दजी ने मुस्लिम-धर्म को स्वीकार किये हिन्दुओं को फिर से हिन्दू-धर्म में लेने का आन्दोलन हिन्दू महासभा के कार्यक्रम के रूप में शुरू किया। न॰ र॰ फाटक की राय में इस आन्दोलन का स्वरूप 'शुद्धि और संगठन' था। मुसलमानों के 'ताफिम तबलिघ' शब्द का यह अनुवाद था। अत: हिन्दू महासभा को मुस्लिम लीग का हिन्दू प्रतिरूप मानना गलत न होगा। न॰ र॰ फाटक ने हिन्दू महासभा की राजनीति पर तीखा प्रहार करते हुए लिखा, "मुस्लिम लीग की सन्तान की तरह लगनेवाली हिन्दू महासभा ने पाकिस्तान की कल्पना को बल देने में सदा सहायता ही की।" पाकिस्तान का निर्माण गांधी की वजह से नहीं हुआ, बल्कि लीग और हिन्दू महासभा दोनों ने जो परस्परपूरक राजनीति चलायी, उससे पाकिस्तान बना। यह सत्य छिपाये रख हिन्दुत्ववादी विभाजन का पाप गांधीजी के मत्थे मढ़ते हैं। हिन्दू महासभा की राजनीति पर फाटक का मत जानने लायक है। 'भारतीय राष्ट्रवादाचा विकास' पुस्तक में वे लिखते हैं, "हिन्दू महासभा की राजनीति सीधी-सादी और सरल थी। कांग्रेस मुसलमानों को सिर चढ़ाकर हिन्दुओं को क्षति पहुँचा रही है, यह विचार बार-बार हिन्दुओं के कानों में उड़ेलना और उसकी पुष्टि के लिए हमेशा गांधीजी को गलियाँ देना। गांधीजी और कांग्रेस की कड़े शब्दों में निन्दा, उस तुलना में मुसलमानों की घोर भत्सर्ना, आजादी के अन्तिम लक्ष्य के विषय में उदासीनता। साधारणतया हिन्दू महासभा की यही नीति रही है।" मुसलमानों से भी ज्यादा वे गांधीजी की कड़े शब्दों में निन्दा करते थे। उन्हें तो गांधी-द्वेष का पीलिया ही हो गया था। आज भी उसमें कोई फर्क नहीं आया है। डॉ॰ लोहिया भी हिन्दुत्ववादियों की भूमिका को विभाजन के लिए जिम्मेदार मानते थे। मुस्लिमों के प्रति द्वेष की राजनीति जितनी फैलती गयी, उतनी ही पाकिस्तानवादी मुसलमानों की संख्या बढ़ती गयी। मुस्लिमों के पाकिस्तानवादी बनने से हिन्दुत्ववादी राजनीति को बढ़ावा मिलता था। आर्थिक-सामाजिक सुधार और रचनात्मक कार्यक्रम से हिन्दुत्ववादियों को कोई लेना-देना नहीं था। उनके अस्तित्व के लिए विद्वेष का वातावरण ही उपयोगी था। वही उनकी राजनीति का आधार था। विद्वेष बढ़ाने के लिए हिन्दुत्ववादियों को मुस्लिम लीग की जरूरत थी और मुस्लिम लीग को हिन्दुत्ववादियों की

राजनीति की। परस्पर द्वेष के आधार पर हिन्दू और मुस्लिम धर्मवादियों की राजनीति की इमारत खड़ी हुई थी। पाकिस्तान न बनता, तो पचपन करोड़ रुपये का प्रश्न भी प्रस्तुत नहीं होता। तब हिन्दुत्ववादी किस आधार पर अपनी राजनीति चलाते? शायद पाकिस्तान न होने से लीग की राजनीति अधिक आक्रामक बनती और इसी आक्रामकता के खिलाफ हिन्दुत्ववादी अपनी राजनीति चलाते। अन्ततः इन सबका यही अर्थ निकलता है कि मुस्लिम-द्वेष के साथ-साथ, जिस विचारधारा के कारण हिन्दुत्ववादियों की राजनीति में रुकावट आती है, उस कांग्रेस और उसके नेता गांधीजी के द्वेष के सिवाय हिन्दुत्ववादियों के पास कोई राजनीतिक आधार नहीं था। डॉ॰ श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने इस बात को समझा था। वैर-भाव और द्वेष की राजनीति की नींव स्थायी नहीं हो सकती, यह समझने के बाद उन्होंने सुझाव दिया था कि जाति-धर्मभेद की राजनीति का त्याग करें या सब जाति-धर्म और पंथ के लोगों को प्रवेश दें। ऐसा करने से ही हिन्दू महासभा राष्ट्रीय संगठन बन सकेगा। किसी नये पक्ष में विलीन होकर हिन्दू महासभा अपनी राजनीति व्यापक करे, यह डॉ॰ मुखर्जी का प्रयास था। पर हिन्दू महासभा इसके लिए राजी नहीं हुई। आखिर डॉ॰ मुखर्जी ने हिन्दू महासभा के अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र दे दिया। सन् १९५१ में डॉ॰ मुखर्जी के बाद एन॰ सी॰ चटर्जी हिन्दू महासभा के अध्यक्ष बने। चटर्जी ने भी व्यापक राजनीति की सलाह दी, पर वे भी सफल न हो सके। आगे चलकर मुखर्जी ने जनसंघ की स्थापना की। कश्मीर के कारागार में डॉ॰ मुखर्जी की मृत्यु हुई। जनसंघ के पहले तीन अध्यक्षों की मृत्यु सन्देहास्पद ही रही। डॉ॰ रघुवीर दुर्घटना में मरे। दीनदयाल उपाध्याय की हत्या हुई। पक्ष की नींव मजबूत बनाने का प्रयास इन तीनों ने किया था। यह अजीब संयोग है। डॉ॰ श्यामाप्रसाद मुखर्जी की सलाह भी हिन्दुत्ववादियों को ठीक नहीं लगी। ऐसी हालत में महात्मा गांधी की विचारधारा वे कैसे स्वीकार करते? डॉ॰ मुखर्जी ने धार्मिक राजनीति का पूरी तरह त्याग किया था, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की मदद से जनसंघ की स्थापना की थी। परन्तु धर्मवादी राजनीति को थोड़ा शिथिल करने की सलाह भी हिन्दुत्ववादियों को ठीक नहीं लगी। महात्मा गांधी का द्वेष हिन्दुत्ववादियों की राजनीति थी। इसका कारण पहले बताये अनुसार यही था कि पेशवा के शासन का अन्त होने पर अंग्रेजी राज्य में ब्राह्मणों को कुछ ऊँचे ओहदे जरूर मिले,

परन्तु समाज-जीवन और राजनीति में उनका नियंत्रण या प्रभाव नहीं रहा था। तिलक की राजनीति के कारण नियंत्रण फिर अपने हाथों आयेगा, ऐसी उन्हें आशा थी। परन्तु गांधीजी की सर्वसमावेशक नीति के कारण उनकी आशाएँ मिट्टी में मिल गयीं। जिन ब्राह्मणों ने परिवर्तन की अनिवार्यता समझी, बिना परिवर्तन के अपनी प्रगति असम्भव है, यह पहचाना और परिवर्तन को मान्यता दी, वह ब्राह्मण समाज निष्ठापूर्वक गांधीजी के आन्दोलन में शरीक हुआ। उनमें से कइयों ने प्रगति के आन्दोलन को गति देने में महत्त्वपूर्ण काम किया। हिन्दुत्ववादी इस प्रवाह से दूर या अछूते ही रहे। अगर हिन्दुत्ववादियों की कल्पना का राष्ट्र साकार होता, तो आम जनता के प्रश्नों को तो छोड़िए, पर हिन्दुत्व को समर्थन देनेवाले लोगों के ही दैनन्दिन सवाल हल करने के लिए हिन्दुत्ववादियों के पास कौन-सा कार्यक्रम था? जब इस तरह का कोई कार्यक्रम नहीं रहता है तब द्वेष फैलाकर ही संगठन जीवित रखना होता है। सच कहकर तो द्वेष नहीं बढ़ाया जा सकता। फिर सत्य-असत्य की कोई परवाह नहीं की जाती। सत्य ही धर्माध लोगों का असली शत्रु होता है— चाहे वे हिन्दू धर्मांध हों या मुस्लिम धर्मांध हों। सत्य कहने से अपना असली रूप प्रकट हो जाता है, फिर लोग साथ नहीं देते। इसलिए असत्य को ही अधिक भड़कीला रूप देने का आग्रह रखा जाता है। इसीलिए तो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लोगों को भी असत्य-प्रचार का सहाय लेना पड़ता है। भाजपा भी यही करती है और हिन्दू महासभावाले भी यही करते हैं। मुस्लिम धर्मवादी संगठन भी, मुस्लिमों का समर्थन पाने के लिए, झूठा प्रचार करते हैं। 'इस्लाम खतरे में है' यह नारा इसी तरह का है। और 'हिन्दू इस देश में अल्पसंख्यंक हो जायेंगे' यह हिन्दुत्ववादियों का कथन भी इसी तरह का है। जब प्रगति की गति धीमी हो जाती है तब धर्मवादी शक्तियाँ अपना सिर उठाती हैं। किन परिस्थितियों में जर्मनी में हिटलर का उदय हुआ, यह अगर देखें, तो इस बात को ठीक से समझ सकेंगे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी की आर्थिक स्थिति संकट में आ गयी। इस संकट से उबरने के लिए जिस तरह का नेतृत्व आवश्यक था वैसा नेतृत्व जर्मन लोगों को प्रजातंत्र में नहीं मिल सका। क्रिश्चियन प्रजातंत्र और समाजवादी प्रजातंत्र, ये दो प्रमुख पक्ष थे। वे अर्थ-व्यवस्था को सुधार नहीं सके। दूसरी ओर एक कम्यूनिस्ट गुट दूसरे कम्यूनिस्ट गुट को शत्रु समझता था। एक समाजवादी गुट दूसरे समाजवादी गुट को समाप्त करने में लगा था। दो प्रजातंत्रवादी गुट

एक-दूसरे को समाप्त करना ही महत्त्वपूर्ण कार्य मानते थे। ऐसी हालत में जर्मन लोगों में प्रजातंत्र के बारे में सन्देह पैदा हुआ था। इसी पृष्ठभूमि में हिटलर के नाजी पक्ष का उदय हुआ। जर्मन लोगों के मन की सन्देहावस्था, निराशा दूर करने के लिए हिटलर ने महान् असत्य का जोर-शोर से प्रचार शुरू किया। वह असत्य था, "जर्मन नस्ल दुनिया की सर्वश्रेष्ठ नस्ल है। सर्वगुणसम्पन्न नस्ल है। जर्मन नस्ल का राज्य स्थापित करना सभी जर्मनों का पवित्र कर्तव्य है।" अगर जर्मन नस्ल सर्वगुणसम्पन्न थी तो जर्मनी की ऐसी हालत क्यों हुई? ऐसा प्रश्न करने पर हिटलर जवाब देता— जर्मन नस्ल शुद्ध नहीं रही, इसलिए यह हालत हुई। जर्मन संस्कृति टिक नहीं सकी, उसमें मिलावट हुई, आदि आदि। युद्ध के समय एक ही सभा में हिटलर कई असंगत बातें करता था। कीमतें बढ़ने नहीं दूँगा, यह भी कहता और तुरन्त, कीमतें कम नहीं होने दूँगा, यह भी कहता। उसने नस्लवाद एवं आर्य रक्त की शुद्धता के विचार से ज्यू लोगों को जर्मनी से खदेड़ने की, उन्हें मारकर उनकी नस्ल नष्ट करने की नीति अपनायी। आज के भारत की परिस्थिति और हिटलर के जर्मनी की परिस्थिति किस तरह समान है, यह दर्शाने के लिए यह उल्लेख आवश्यक था। भारत की आर्थिक स्थिति बिगड़ी हुई है। आज का नेतृत्व बिगड़ी हालत सुधारने में किस हद तक सफल होगा, इसमें सन्देह है। सत्ताधारियों की अकर्मण्यता के कारण लोगों की समस्याएँ गम्भीर रूप धारण कर रही हैं। इसीलिए लोगों के मन में प्रजातंत्र के विषय में सन्देह पैदा हो रहा है। प्रजातंत्र की अपेक्षा तानाशाही अच्छी है, ऐसा कुछ लोगों का मत बन रहा है। मुम्बई और मद्रास के ७०% और दिल्ली के ४०% लोगों ने प्रजातंत्र की अपेक्षा तानाशाही से अपने प्रश्न हल हो सकेंगे, ऐसा मत व्यक्त किया है। (टाइम्स ऑफ इण्डिया : २८ दिसम्बर, १९९३) इस तरह का मत व्यक्त करनेवालों में ७.४% शिक्षित, ७% डॉक्टर्स, ६.२% संवाददाता, ४.१% पुलिस और ४.५% दूरदर्शन कर्मचारी हैं। परन्तु तानाशाही से लोगों की समस्याएँ हल नहीं हो पाती हैं। तानाशाही में भ्रष्टाचार नहीं होता, यह केवल एक भ्रम है।

कांग्रेस में दो से अधिक गुट हैं। उनमें खींचातानी चलती है। जनता दल अलग-अलग दलों के दलदल में फँसा हुआ है। एक दल पर दूसरे दल को परास्त करने की धुन सवार है। दक्षिणपंथी और वामपंथी कम्यूनिस्ट एक-दूसरे को खतम करने में ही पराक्रम समझते हैं। हिन्दुत्ववादी भारत

को फिर से वैभव के शिखर पर ले जाने का सब्जबाग लोगों को दिखा रहे हैं। हिन्दू-धर्म और उसकी संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है। उसे बचाने के लिए हिन्दू-राष्ट्र का निर्माण आवश्यक है, ऐसा वे कहते हैं। नस्ल को शुद्ध रखने की बात कहते हुए, हम आर्य हैं, यह अभिमान पैदा करने की कोशिश करते हैं। मुसलमानों के कारण हमारी सर्वश्रेष्ठ संस्कृति नष्ट हो रही है, इसलिए मुसलमानों को इस देश से निकालना होगा, दोयम दर्जे का नागरिक बनकर जीवन बिताना होगा, ऐसा कहते हैं। मुस्लिम-द्वेष फैलाने के लिए मन्दिर-मस्जिद विवाद खड़ा कर रहे हैं। धर्मवाद को बढ़ावा मिले, इस उद्देश्य से द्वेष का वातावरण निर्माण करना, उनकी यह नीति आज की नहीं है। आजादी के आन्दोलन के समय से इस तरह का वातावरण बनाने का प्रयास वे करते रहे हैं। महात्मा गांधी के प्रति द्वेष इसी नीति की उपज है। आजादी के आन्दोलन में प्रगतिशील विचारों का प्रभाव था। अत: हिन्दुत्ववादियों की द्वेष की राजनीति को समर्थन नहीं मिल पाया। आज प्रगतिशील विचारों में ही अलग-अलग दल खड़े हो गये हैं। आर्थिक आन्दोलन निष्प्राण हो गये हैं। अर्थव्यवस्था चरमरा गयी है। इसलिए हिन्दुत्ववादी विचार बढ़ रहा है। पर यह अनिष्टकारी है।

गांधीजी का आन्दोलन हिन्दुत्ववादी विचारों के प्रसार में रुकावट डालता था। इसीलिए गांधी-द्वेष का भूत हिन्दुत्ववादियों के सिर पर सवार था। हिन्दू महासभा की स्थापना करनेवाले बड़े नेता सन् १९२७ में ही महासभा से अलग हो गये। गांधीजी को दोष देना उनकी पूँजी थी। गांधीजी हिन्दू-हितों के महान् शत्रु हैं। उन्हें जीवित रखने से हिन्दुओं का नुकसान बढ़ता जायेगा। हिन्दुत्ववादियों की यह विचारधारा जोर पकड़ती गयी । इसी कारण गांधीजी की हत्या हुई। यह मत न॰ र॰ फाटक व्यक्त करते हैं। गांधीजी को मारने से हिन्दुत्ववादियों की राह का रोड़ा दूर होगा, ऐसा विचार हिन्दुत्ववादी हमेशा करते रहे। ना॰ ग॰ गोरे लिखते हैं, “सन् १९१८ से गांधीजी के प्रत्यक्ष नेतृत्व में आन्दोलन शुरू हुआ। उसी समय से महाराष्ट्र के बुद्धिजीवी ब्राह्मणों का एक विशिष्ट समूह देश के मुख्य प्रवाह से अलग पड़ता गया। उसे स्पष्ट हो गया कि राजनीति की नाव अगर जनता के संगठन और जनता के आन्दोलन के प्रवाह में बहती रही, तो आन्दोलन का सूत्र-संचालन अपने हाथों में आना असम्भव है। अपनी सामाजिक और धार्मिक प्रतिष्ठा गांधी-प्रणीत आन्दोलन की आँधी में धूलधूसरित हो जायेगी, यह मानकर वे सदा गांधी के विरोध में ही रहे।”[४०]

मतपेटी द्वारा सत्ता हासिल करना सम्भव नहीं है। उसके लिए जो आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम आवश्यक होता है, उसका हिन्दुत्ववादियों में अभाव रहा। तो फिर सभी दायें-बायें पक्षों को अपने व्यक्तित्व के कारण एक सूत्र में बाँधनेवाले महापुरुष को ही समाप्त किया जाय, ताकि अपना रास्ता साफ हो। इसी विचार से हिन्दुत्ववादियों ने गांधीजी की हत्या कर दी। महात्मा गांधी की हत्या के बाद ना॰ ग॰ गोरे ने लिखा था, "फिर से नेतृत्व मिलने की आशा समाप्त होने पर महाराष्ट्र के बेहद अहंकारी, अधिकार लोलुप, प्रतिगामी, वर्गनिष्ठ और स्वभाव से ही जनता-विरोधी मध्यम वर्ग के ब्राह्मणों ने अपनी स्थिति स्थिर करने के लिए, हिन्दुस्तान की प्रतिक्रान्ति का नेतृत्व पाने के लिए किया गया यह (गांधी-हत्या) अन्तिम प्रहार था।" (ना॰ ग॰ गोरे : जनवाणी : ८ फरवरी, १९४८)। गांधी-विचार के प्रभाव से हो रहे परिवर्तनों के कारण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक नियंत्रण अपने हाथ में नहीं रहता है, इस तरह की द्वेषमूलक विचारधारा ने महात्मा का अन्त किया। यह केवल वैचारिक और सैद्धान्तिक प्रस्थापना नहीं है, इसके पीछे गांधी-हत्या के लिए सन् १९४७ तक किये गये प्रयासों का इतिहास है, जिससे साबित होता है कि विभाजन और पचपन करोड़ रुपये के कारण गांधीजी की हत्या नहीं हुई।

३८. *न्या॰ कपूर आयोग अहवाल:* खण्ड २, परि॰ १९.५६।

३९. *भारतीय राष्ट्रवादाचा विकास:* इतिहास संशोधक न॰ र॰ फाटक।

४०. *ना॰ ग॰ गोरे:* ८ फरवरी, १९४८।

विचारधारा

अनेक प्रमाणों और साक्ष्यों के आधार पर साबित हो चुका है कि देश के विभाजन और पचपन करोड़ रुपयों के कारण गांधीजी की हत्या नहीं हुई। गांधी-हत्या के कारणों का विवेचन पूर्व के अध्यायों में किया गया है। मैं गांधीवादी नहीं हूँ। पर दिन-ब-दिन गांधी मुझे महान् लगने लगे हैं। कल की अपेक्षा आज और बड़े लगते हैं। ऐसा क्यों हुआ? गांधीजी की राजनीति का नैतिक आधार ही उसका मुख्य कारण है। परन्तु देश की आज की राजनीति को देखते हुए, और एक पत्रकार के नाते नजदीक से उसे देखने का अवसर मिलता रहा है, ऐसा लगता है कि हम गांधीजी को भूलते जा रहे हैं। इसलिए आज ऐसी हालत हुई है। नैतिकता का, साधन-शुचिता का, सत्यासत्य का विचार किये बिना आज की राजनीति खेली जा रही है। इसलिए भी गांधीजी दिन-ब-दिन ऊँचे लगते जा रहे हैं। दुनिया के विचारक आज कह रहे हैं कि गांधी-विचार ही उपयोगी सिद्ध होंगे। इसलिए गांधीजी की राजनीति को ठीक से देखना भी प्रसंगानुरूप होगा।

भारत की राजनीति में गांधीजी के उदय से राजनीति में नया चैतन्य आया। और देश प्रतिकार की भावना से उठ खड़ा हुआ। गांधी की लोकप्रियता में उतार-चढ़ाव आये। उन्हें समझने की क्षमता न होने से उनकी राजनीति के विषय में गलतफहमियाँ भी हुईं। मेरी राजनीति १०० फीसदी सही होगी, ऐसा विचार गांधीजी ने कभी नहीं किया होगा। पर उस समय की परिस्थिति का विचार करें, तो गांधीजी की राजनीति से अधिक अच्छा विकल्प उपलब्ध नहीं था, और अगर था भी, तो लोगों ने उसका साथ नहीं दिया। इसीलिए पुरोगामी कार्यक्रमों को लेकर आन्दोलन चलानेवाले यश हासिल न कर सके। आजादी का आन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व में ही सफल हुआ। गांधीजी के आन्दोलन के काल में कई सशक्त, समर्थ नेता थे। राजाजी, पण्डित नेहरू, वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना आजाद आदि कई नाम गिनाये जा सकते हैं। ये सारे नेता सन् १९४२ तक २०-२२ वर्ष निष्ठा और श्रद्धा से गांधीजी के साथ खड़े रहे। परन्तु सत्य और अहिंसा को कांग्रेस ध्येय तथा नीति के आधार पर स्वीकार करे, ऐसा जब गांधीजी कहने लगे, तब इन नेताओं की कसौटी का क्षण आया। इन नेताओं और कांग्रेस ने ध्येय तथा नीति के तौर पर सत्य और अहिंसा को स्वीकार नहीं किया। क्योंकि इन तत्त्वों पर उनकी श्रद्धा और निष्ठा नहीं थी। केवल अन्य कोई

उपाय न रहने से आजादी के आन्दोलन में अहिंसा को मान्य किया गया। वैसा करने में सहूलियत थी। इसी प्रश्न पर गांधीजी और कांग्रेस के नेताओं में मतभेद बढ़ता गया। विभाजन के प्रश्न को लेकर मतभिन्नता और अधिक बढ़ी। कांग्रेस के अन्य नेताओं और गांधीजी में दरार पड़ गयी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच की चर्चा के समय गांधीजी के सुझावों पर ध्यान नहीं देने की भूमिका कांग्रेस के नेताओं ने की थी। विभाजन तो गांधीजी को आँधेरे में रखकर ही मंजूर किया गया था। विभाजन के विषय में सही भूमिका अपनाने में गांधीजी ने जिसे अपना दाहिना-बायाँ हाथ माना था, अपना शिष्य या वारिस माना था, वही गांधीजी के साथ नहीं रहा। तब विभाजन को मंजूरी देने के अलावा गांधीजी के पास कोई उपाय ही नहीं था। इसीलिए गांधीजी को ऐसा कहना पड़ा कि एक समय ऐसा था जब वल्लभभाई अपने आपको मेरा 'यस सर' कहा जाने में गौरव अनुभव करते थे। वे भी अब मेरी सुनते नहीं हैं। मुझे 'राष्ट्रपिता' कहा गया, इसका कारण यह था कि मैं अफ्रीका से लौटा तब कांग्रेस को व्यापक बनाने में मेरा बड़ा हिस्सा था। पर अब कांग्रेस पर मेरा प्रभाव है, यह मैं नहीं कह सकता। गांधीजी का प्रभाव कम होने का कारण यह नहीं था कि गांधीजी की नीतियों में परिवर्तन आया था, बल्कि गांधीजी के साथियों की भूमिका में परिवर्तन आया था। कुछ लोग सत्ता के सपने देखने लगे थे, इसलिए शायद यह परिवर्तन आया होगा या कुछ लोगों में गांधी-विचारों को स्वीकारने की क्षमता नहीं होने से ऐसा हुआ होगा।

गांधीजी ने राजनैतिक कार्यकर्ताओं को तैयार किया। साथ ही रचनात्मक कार्यों में सर्वस्व अर्पण करनेवाले कार्यकर्ताओं की भी सेना खड़ी की। समन्वय, समझौता, मत-परितर्वन इस तरह की भूमिकाएँ सामने रखते हुए प्रत्यक्ष प्रतिकार के लिए आम आदमी को भी मन से तैयार किया। अंग्रेजों की लाठियाँ ही नहीं, बन्दूक की गोलियाँ झेलते हुए भी मारनेवाले पर हाथ न उठाने का मनोबल कार्यकर्ताओं में पैदा किया। रचनात्मक कार्यक्रमों को बढ़ावा मिले, इस उद्देश्य से अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन जब स्थगित रहे, तब कार्यकर्ताओं को रचनात्मक कार्यो में लगाये रखा। युद्ध नहीं होता है तब सेना को बैरक में रखा जाता है। सेना प्रमुख के आदेशानुसार उसे युद्ध-भूमि पर लाया जाता है। सेना प्रमुख को अपने पद के कारण कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। उसके आदेश का उल्लंघन करनेवाले का कोर्ट मार्शल किया जाता है या उसी तरह की कोई कड़ी सजा दी जाती

है। इस अधिकार के कारण वह सेना को किसी भी समय बैरक में भेज सकता है। गांधीजी के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं था। फिर भी, वे उचित समय पर कार्यकर्ताओं को लड़ाई में उतारते और लड़ाई खतम होने पर उन्हें रचनात्मक कार्यक्रमों की 'बैरकों' में भेज देते थे। यह हुकूमत गांधीजी के अपने सत्यनिष्ठ विचार और नेतृत्व से चलती थी। गांधीजी को सजा हुई, तब अपना कार्य चलाने के लिए उन्होंने 'गांधी सेवा संघ' नामक संस्था खड़ी की। कांग्रेस ने खादी की शर्त नामंजूर की, तब रचनात्मक कार्य के लिए और कार्यकर्ताओं को काम में लगाये रखने के लिए गांधीजी ने अखिल भारतीय चरखा संघ संस्था स्थापित किया। जिनके पास गांधी की व्यूह-रचना समझने की क्षमता नहीं थी, वे गांधी की खिल्ली उड़ाते हुए पूछते थे, 'चरखा चला चलाकर' स्वराज्य कैसे मिलेगा? गांधीजी की विचारधारा और आन्दोलनों के कारण हाथ से छूटा ब्राह्मण वर्चस्व फिर वापस प्रस्थापित नहीं हो सकता, यह समझकर सनातनी विचारधारा के लोग यह बात फैलाते थे कि युद्ध के बिना आजादी नहीं मिल सकती। हिन्दू महासभा की नीति केवल कांग्रेस का विरोध करने की ही नहीं थी, बल्कि अंग्रेजों का प्रत्यक्ष सहयोग करने की भी थी। हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के नाते बोलते हुए सावरकरजी ने कहा था, "आज की परिस्थिति में मुझे तफसील या तत्त्व का ऐसा कोई मुद्दा नहीं दीखता, जिसके कारण सेना में भरती होकर हिन्दू समाज के सैनिकीकरण का जो अवसर आज आया है, उसे छोड़ दिया जाय और कानून-भंग का आन्दोलन चलाया जाय।" (कांग्रेस कथा : गो॰ आ॰ देशपाण्डे)। गांधीजी के हाथों में सत्ता आनेवाली नहीं थी। सत्ता अपने हाथों में नहीं आती है, तब वह आजादी, आजादी ही नहीं है, ऐसा मत स्थापित करने की दयनीय कोशिश इन हिन्दुत्ववादियों ने शुरू की थी। विचारों से कांग्रेस से जुड़े हुए, पर कार्य के सम्बन्ध में स्वतंत्र ग्रामोद्योग संघ, हरिजन सेवक संघ इत्यादि संघ गांधीजी ने स्थापित किये। आजादी का आन्दोलन छिड़ता था, तब इन संस्थाओं के कार्यकर्ता संस्थाएँ बन्द कर आन्दोलन में कूद पड़ते। गांधीजी के ही कारण इन कार्यकर्ताओं में ध्येयनिष्ठा, स्वार्थ-त्याग, कष्ट सहने की तत्परता आदि गुणों का विकास हुआ। इसका आम लोगों पर काफी प्रभाव पड़ता था। देहात के लोगों को कांग्रेस कार्यकर्ता अपना, अपने परिवार का लगता था। आज कांग्रेस-कार्यकर्ता के साथ तिकड़मबाजी, धोखाधड़ी, बदमाशी और भ्रष्टाचार आदि दोष जुड़ गये हैं। ऐसा

क्यों हुआ? आज गांधी विचारवाले निष्ठावान् कार्यकर्ता नहीं रहे, इसलिए ऐसा हो रहा है। अच्छे कार्यकर्ता ही गांधी की सामर्थ्य के आधार थे। 'गांधीबाबा' का शब्द प्रमाण माना जाता था। वह मंत्र बन जाता था।

आज पूरी दुनिया में गांधीजी की अहिंसा को मान्यता मिल रही है। अभी का उदाहरण दें, तो सोवियत यूनियन के पतन के समय बख्तरबन्द गाड़ियाँ सड़कों पर आ गयीं। बोरिस येल्तसीन उनपर चढ़ गये। बख्तरबन्द गाड़ियों से गोले न बरस सके। यह सच है कि येल्तसीन गांधी का नाम लेकर उनपर नहीं चढ़े थे, पर लोकशक्ति के सामने सैन्यशक्ति भी शक्तिहीन हो जाती है, यह गांधी का ही सिद्धान्त येल्तसीन ने अमल में लाया। गांधीजी के सिद्धान्त की श्रेष्ठता स्पष्ट करते हुए वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने कहा था कि कुछ सालों बाद लोग इस बात पर विश्वास नहीं करेंगे कि गांधी जैसा कोई देहधारी मनुष्य इस पृथ्वी पर कभी पैदा हुआ था। गांधीजी की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए इससे अच्छे शब्द क्या हो सकते हैं? मार्टिन लूथर किंग ने गांधी के मार्ग से अपना आन्दोलन चलाया था। मार्टिन लूथर किंग के निवास में गांधीजी के सिवाय और किसी की फोटो नहीं थी। गांधीजी की अहिंसा कायरों की अहिंसा नहीं थी। एक गाल पर थप्पड़ मारने पर दूसरा गाल सामने करूँगा, यह गांधी का वाक्य सन्दर्भ छोड़कर सामने रखा जाता है, इसलिए उसका गलत अर्थ लगाया जाता है। हरिजिनों पर हमने इतने अत्याचार किये हैं कि इस कारण से वे अगर मेरे एक गाल पर थप्पड़ मारें, तो मैं दूसरा गाल सामने करूँगा, यह उस वाक्य का पूरा सन्दर्भ है। क्रोध पर काबू पाने में ही अहिंसा की कसौटी है, यह सन्दर्भ भी था। उनकी इन बातों को समझना होगा। गांधी हर बात का दूरदृष्टि से विचार करते थे। उसकी उपयुक्तता तथा मर्यादाओं का भी विचार करते थे। कांग्रेस एक महासागर था। इस महासागर में अनेक विचारों के प्रवाह थे। सभी प्रवाह एकत्रित हुए बगैर आजादी का आन्दोलन परिणामकारीं नहीं हो सकता। किसी वर्ग के आधार पर संगठन खड़ा किया जाता तो वर्गीय हितों के लिए लोग संगठित होते। किसानों के संगठन में किसान, मजदूरों के संगठन में मजदूर, इस तरह से लोगों की शक्ति बिखर जाती। कांग्रेस का स्वरूप सर्वसमावेशक था। सारी शक्ति ब्रिटिशों के विरोध में केन्द्रित की गयी थी। शक्ति के विभाजन से आजादी के आन्दोलन की शक्ति ही बँटती। मुसलमानों को कुछ ज्यादा अधिकार

मिल जायँ, तब भी हर्ज नहीं, पर उनका भी सहयोग लेकर आजादी का आन्दोलन अधिक शक्तिशाली बनाने का लोकमान्य तिलक जैसा ही विचार गांधीजी का था। कांग्रेस विसर्जित कर उसका रूपान्तर लोक सेवक संघ में किया जाय, यह गांधीजी चाहते थे। यह उनकी दूरदृष्टि थी। कांग्रेस विभिन्न विचारों के लोगों का समूह था। अंग्रेजों के खिलाफ आजादी की लड़ाई जीतने के लिए ऐसा समूह आवश्यक था। पर आजादी के बाद परस्पर विरोधी लोगों के समूह की अपेक्षा एक ही विचार के लोगों का संगठन बनाना अधिक उचित होगा। इसी उद्देश्य से गांधीजी ने कांग्रेस को विसर्जित करने का सुझाव दिया था। रचनात्मक कार्य में विश्वास रखनेवाले लोक सेवक संघ में काम करें और वर्गीय हितों की सुरक्षा की राजनीति में जिन्हें रस है वे अपने-अपने संगठन बनायें, यह गांधीजी की सोच थी। ऐसा होता तो शायद आजादी के बाद जिन लोगों ने सत्ता सम्भाली, उन लोगों के हाथ में सत्ता की बागडोर नहीं आती, इसलिए उन्हें कांग्रेस को विसर्जित करने का सुझाव जँचा नहीं। अगर कांग्रेस विसर्जित नहीं करनी हो तो समाजवादी नेता जयप्रकाश या आचार्य नरेन्द्रदेव को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाय, गांधीजी का यह सुझाव, इन दोनों के प्रति गांधीजी का बहुत स्नेह था, इसलिए नहीं दिया था, बल्कि समाजवादी नेता कांग्रेस के अध्यक्ष बनने पर कार्यकारिणी में अध्यक्ष का बहुमत रहेगा और किसान, मजदूर और गरीबों के हितों की रक्षा करनेवाला संगठन है, यह स्वरूप कांग्रेस को प्राप्त होगा। भिन्न विचार के लोग अपना अलग संगठन बनायें यह दूरदृष्टि गांधीजी की रही होगी। समाजवादी पक्ष के नेता बै॰ पुरुषोत्तमदास त्रिकमदास से गांधीजी ने कहा था कि 'मेरा अनशन समाप्त होने तक कांग्रेस मत छोड़िए। मेश अनशन (१३ जनवरी, १९४८ को शुरू हुआ।) समाप्त होने पर शायद मैं भी आपके पक्ष में आऊँगा।' गांधीजी का यह कथन सतही नहीं था। वास्तव में गांधी अगर समाजवादी पक्ष में जाते, तो क्या पण्डित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद कांग्रेस में रहते? उन्हें भी समाजवादी पक्ष में जाना पड़ता। और, तब लोक सेवक संघ स्थापित किये बिना भी गांधीजी अपेक्षित परिवर्तन ला सकते थे, यह मेरा विचार है। इसके समर्थन में गांधीजी के विधान एवं उस पर आधारित तर्क मैंने पेश किये हैं। अत: मेरा विचार अगर सही लगे तो स्वीकार किया जाय अन्यथा छोड़ दिया जाय।

गांधीजी ने अपनी 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक में ब्रिटेन के संसदीय प्रजातंत्र का विरोध किया है। परन्तु साथ ही व्यक्ति-स्वातंत्र्य का भी आग्रह रखा है। सत्ता के केन्द्रीकरण का विरोध किया है। ब्रिटेन के संसदीय प्रजातंत्र के विषय में 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक में वे लिखते हैं : "इंग्लैण्ड की आज की स्थिति दयनीय है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वैसी स्थिति भारत की कभी न हो। आप जिसे संसद की जननी मानते हैं, वह इंग्लैण्ड की संसद बाँझ और वेश्या है। ये दोनों शब्द कठोर हैं, पर संसद की स्थिति पर लागू होते हैं। मैं उसे बाँझ इसलिए कह रहा हूँ कि आज तक उसने खुद एक भी अच्छा काम नहीं किया है। अगर बाहर से दबाव न डाला जाय, तो वह कुछ भी नहीं करेगी। यही उसकी वास्तविकता है। और वह वेश्या है, क्योंकि जिस पक्ष का मंत्रिमण्डल रहता है उसके अधिकार में वह रहती है।" व्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार वे नकारते नहीं थे। यह बात सही है कि बाहरी दबाव न हो तो संसद खुद सुधारों की पुष्टिवाला कोई कानून नहीं बनाती। परन्तु आज की परिस्थिति में प्रजातंत्र की अपेक्षा अधिक अच्छी कौन-सी पद्धति है? प्रजातंत्र के विषय में गांधीजी प्रजातंत्र की अपेक्षा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' तंत्र अधिक अच्छा है, ऐसा माननेवाले नहीं थे। उन विचारों से इतना ही प्रकट होता है कि ब्रिटेन की पद्धति वे भारत के लिए सही नहीं मानते थे। उसकी अपेक्षा भारत का ग्रामस्वराज्य गांधीजी को अधिक प्रजातंत्रात्मक लगता था। पूँजीवादी समाज में सत्ता का केन्द्रीकरण होता है जो सामाजिक न्याय और उपयोगिता दोनों दृष्टियों से वह हानिकारक है। इसलिए उन्हें केन्द्रीकरण मंजूर नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार आचरण करेगा तो दूसरे की आन्तरिक प्रेरणा से टकरायेगा, अराजक स्थिति पैदा होगी। इसलिए व्यक्ति की स्वतंत्रता पर सामाजिक नियंत्रण आवश्यक है। यह नियंत्रण कम-से-कम हो, न्यायोचित हो और सबके लिए समान हो। समाज की आवश्यकतानुसार बहुमत से उसमें आवश्यक परिवर्तन किया जाय, ऐसा वे कहते हैं। गांधीजी की दृष्टि से राजनैतिक आन्दोलन का अन्तिम उद्देश्य था स्वयंशासित समाज। सशस्त्र क्रान्ति से एक शासन हटकर दूसरा शासन आयेगा। पर उसका आधार हिंसा ही रहेगा। हिंसा पर आधारित शासन अत्याचारी ही रहेगा। हिंसा से हिंसा बढ़ती है और विपक्षी अपनी बात माने, इसीमें सारी शक्ति खर्च होती है। इससे सहयोग की भावना नहीं पैदा होती। इसीलिए गांधीजी हिंसा और जोर-जबरदस्ती का मार्ग

अस्वीकारते हैं। उनकी तत्त्व-प्रणाली ऐसे मार्गों का त्याग करनेवाली थी। सुधारों के लिए लोगों की अनुकूलता पैदा कर समाज-जीवन के प्रवाह को उचित गति देना, यही सामाजिक सुधारों का राजमार्ग है, ऐसा वे मानते थे। साधन-शुद्धि को स्वीकार कर सत्य की दिशा में हम एक कदम भी बढ़ सकें, तो सन्तोष मानना चाहिए, इस बात पर वे बल देते थे। समाज प्राचीन परम्पराओं से संस्कारित है; ऐसा समाज सामाजिक सुधारों का विरोध ही करेगा। तब तर्क के आधार पर सुधारों की आवश्यकता समझाते हुए लोगों का मत-परिवर्तन करना ही उचित है।

राष्ट्रीयता की भावना बढ़ाने के विषय में गांधीजी कहते थे, "हिन्दुस्तान में अनेक धर्म के लोग रहते हैं। इससे उनका राष्ट्रीयत्व नष्ट होता है, ऐसा नहीं है। नये लोग घुलमिल जाने पर भी वे राष्ट्रीय एकता नष्ट नहीं करते। वे घुलमिल जाते हैं। ऐसा होने पर ही कोई देश राष्ट्र कहा जा सकेगा। ऐसे देश में अन्य लोगों को शामिल करने का गुण होना चाहिए। यह गुण हिन्दुस्तान में था, और है। एक राष्ट्र बनकर रहनेवाले लोग एक-दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करते। दुनिया के किसी भी हिस्से में एक राष्ट्र का अर्थ एक धर्म, ऐसा नहीं किया जाता।" गांधीजी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता का पक्ष क्यों लेते थे। गांधीजी अपने को सनातनी हिन्दू मानते थे, पर उनकी विचारधारा हिन्दुत्ववादियों से भिन्न थी। हिन्दुत्ववादी पुरातनपंथी थे। अपनी पुरातनपंथी विचारधारा के कारण ही वे हर मानव के नैसर्गिक अधिकार और मानवमात्र की समानता को स्वीकार नहीं करते। इसीलिए शूद्र एवं स्त्रियों को समान अधिकार दिलानेवाले आर्थिक और सामाजिक व्यवहार पर हिन्दुओं का ही वर्चस्व हो, ऐसी हिन्दुत्ववादियों की निष्ठा है। इसीलिए वे हिन्दू धर्मनिष्ठा का आह्वान कर हिन्दू लोगों को संगठित करना चाहते हैं। इसके लिए भिन्न धर्मावलम्बियों के प्रति द्वेष फैलाने का भरसक प्रयास करते हैं। गांधीजी के विचार इन मान्यताओं का उच्छेदन करते थे। किसी धर्म के प्रति उनके मन में अपना-परायापन नहीं था। वस्तुत: मुस्लिमों के कारण इस देश की अधोगति नहीं हुई। वह तो मुसलमानों के आने से पहले ही शुरू हो गयी थी। मध्ययुग में एक हिन्दू राजा दूसरे हिन्दू राजा पर आक्रमण करता था। उनमें लड़ाइयाँ होती रहती थीं। हिन्दू राजाओं ने हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े हैं, लूटे हैं। इसीलिए धर्म राष्ट्रीयता का आधार नहीं हो सकता। राष्ट्रीय एकात्मता के लिए सभी धर्म, पंथ, जातियों और

जमातों का सहयोग गांधीजी महत्त्वपूर्ण मानते थे। इसीलिए वे सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों के बारे में सर्वधर्म समभाव और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता की भूमिका रखते थे। हिन्दू-धर्म और आधुनिक मानवतावाद का समन्वय गांधीजी ने किया। यही उनकी लोकप्रियता का कारण था। गांधी की इस विचारधारा को जो समझ नहीं सके, वे गांधीजी को अपने हितों में बाधक मानने लगे। अपने हाथों से छूटी हुई सत्ता गांधीजी के कारण फिर अपने हाथों में नहीं आ पायेगी, ऐसा वे मानते थे। अत: गांधीजी को खतम करने के विचार ने उन्हें जकड़ लिया था। अपने विरोधियों की हत्या करना, यही उनकी विचारधारा थी। अपने विचार के विरोध में जानेवाले गांधी-विचार का सफाया करने के उद्देश्य से ही उन्होंने गांधीजी की हत्या की। वास्तविक कारण बताने का न तो उनके पास साहस है, न ही उतनी प्रामाणिकता। इसीलिए उन्होंने विभाजन तथा पचपन करोड़ रुपये के कारण हत्या की, ऐसा कहना शुरू किया। पर इससे पहले, कई बार मैं स्पष्ट कर चुका हूँ कि, सन् १९३४ में पूना में बम-विस्फोट, सन् १९४४ का पंचगनी में हत्या का प्रयास, सन् १९४४ में ही सेवाग्राम में हत्या के उद्देश्य से बनी योजना और सन् १९४६ के जून में ट्रेन को दुर्घटनाग्रस्त कर गांधीजी को मारने का प्रयास—ये सारे प्रयास विभाजन और पचपन करोड़ के मामले से पहले के हैं। जब सन् १९४६ में गांधीजी ने कहा था कि मैं १२५ वर्ष जीनेवाला हूँ, तब गोडसे ने यह टिप्पणी की थी कि 'पर जीवित कौन रहने देगा।' इस टिप्पणी द्वारा उसने अपना गांधी-हत्या का इरादा प्रकट किया ही था। उस समय विभाजन और पचपन करोड़ का मामला नहीं था, इसलिए गांधी-हत्या के समर्थन में दिये जानेवाले ये कारण सत्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। उसी तरह १३ जनवरी का गांधीजी का उपवास पचपन करोड़ रुपये के लिए नहीं था, यह बात उपवास सम्बन्धी शर्तों को देखने से स्पष्ट हो जाती है। गांधीजी की हत्या होनेवाली है, यह जानकारी केन्द्रीय गृहमंत्री, पुलिस विभाग और मुम्बई प्रदेश के गृहमंत्री को थी। फिर भी गांधीजी की जान बचायी नहीं जा सकी। गांधीजी को बचाना किस तरह सम्भव था, इसका भी सुबूतों के आधार पर विवेचन किया गया है। वास्तव में सरकार की लापरवाही, हिन्दुत्ववादियों से छिपी साँठ-गाँठ और निजी नाराजगी, इन कारणों से गांधीजी की हत्या सम्भव हुई। सरकार और पुलिस अगर अक्ल से काम लेती, तो महात्मा का अन्त इस प्रकार नहीं हो पाता। विभाजन के लिए गांधी

जिम्मेदार नहीं थे। राजनीति के विषय की गांधीजी की नैतिक भूमिका के कारण पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये दिये जायँ, यह गांधीजी का मत था। गांधीजी को मारने के प्रयास सन् १९३४ से हो रहे थे और वह सफल हुआ ३० जनवरी, १९४८ को। समता आधारित समाज-व्यवस्था के निर्माण का प्रयास करनेवाली और राष्ट्रीय एकात्मकता के लिए सर्वधर्म समभाव का आग्रह रखनेवाली विचारधारा के प्रणेता की हत्या इन विचारों के विरोधी लोगों ने की। पर ऐसी हत्या से परिवर्तन का चक्र रोका नहीं जा सकता। वह कुछ समय के लिए रुका हुआ भले दिखायी दे, पर परिवर्तन का चक्र गतिशील होता है। तात्कालिक विजय इस विचारधारा को शाश्वत समाधान नहीं देती।

*** * * * ***